G-2408

हिन्दी का भक्तिकालीन कृष्ण काव्य और संस्कृत का कृष्ण काव्य - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

HINDI KRISHNA KAVYAS OF BHAKTI PERIOD AND SANSKRIT KRISHNA KAVYAS: AN ANALYTICAL STUDY

Thesis submitted to

THE COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

for the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

POORNIMA R.

Supervising Teacher

Dr. L. SUNEETHA BAI

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

2000

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE & TECHNOLOGY
DEPARTMENT OF HINDI

Dr. L. SUNEETHA BAI
Professor

COCHIN - 682 022
Date: 20th July 2000

CERTIFICATE

This is to certify that this **THESIS** titled **HINDI KA BHAKTHIKALEEN KRISHNA KAVYA AUR SANSKRIT KA KRISHNA KAVYA: EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN**, is a bonafide record of work carried out by **POORNIMA. R**. under my supervision for **PhD** and no part of this work has hitherto been submitted for any degree in any University.

Dr. L. Suneetha Bai
(Supervising Teacher)

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **"Hindi Ke Bhakti Kaleen Krishna Kavya aur Sanskrit Ke Krishna Kavya - Ek Visleshanatmak Adhyayan"** has not been produced or formed the basis of any degree, diploma, associateship, fellowship or similar titled recognition.

POORNIMA R.
Research Scholar
Department of Hindi
Cochin University of Science and
Technology, Cochin - 22.

भूमिका

भारतीय समाज अनेक संस्कृतियों की अंतरंग भूमि है । इस देश में तैंतीस करोड देवी-देवताओं की मान्यता रही है । इनमें से राम और कृष्ण धर्म और समाज में सुदृढ रूप से प्रतिष्ठित हुए एवं आराध्य बने । भारतीय धार्मिक चेतना का ध्रुवीकरण राम और कृष्ण में हुआ । राम मर्यादा पुरुषोत्तम है तो कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम है जो भक्तों के इच्छानुसार प्रकट होते हैं और दिव्य प्रेम के आनन्द रस से भक्त जनों को आप्लावित करते हैं । समस्त कलाओं का अद्भुत विकास श्रीकृष्ण में हुआ है और उनका अवतार ही लीलाओं के विस्तार के लिए हुआ है ।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन कवियों ने कृष्ण को लेकर एक बहुत बडे काव्य संसार की रचना की है । कृष्ण तो चिर काल से भक्ति के आलंबन रहे हैं और हिन्दी की भक्तिकालीन रचनाओं में भक्ति से संबद्ध सभी विषयों की चर्चा कृष्ण को ही केन्द्रबिन्दु बनाकर हुई है । इन भक्तिकालीन कवियों ने अपनी कृतियों में कृष्ण कथा के प्रतिपादन के लिए संस्कृत के महान ग्रंथ श्रीमद्भागवत को आधार के रूप में स्वीकार किया है । भक्तिकाल के विभिन्न संप्रदायों का यह मान्य ग्रंथ रहा है । इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में मिलनेवाले नारायणीयम्, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, गीतगोविन्दम्, श्रीकृष्णविलासम् आदि काव्य भी कृष्ण कथा को लेकर चलनेवाले हैं । श्रीमद्भागवत के आधार पर लिखे गये हिन्दी एवं संस्कृत के ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन, इस शोध प्रबंध का विषय रहा है । श्रीमद् भागवत से सामग्री लेकर हिन्दी एवं संस्कृत के कवियों ने अपने अपने ढंग से अपने काव्यों को सजाया है । सगुण कृष्ण भक्ति साहित्य के अंतर्गत आनेवाले प्रतिनिधि के रूप में हम ने सूरदास को ग्रहण किया है ।

सूरदास वल्लभ संप्रदाय को माननेवाले, अष्टछाप के अंतर्गत आनेवाले प्रमुख कवि रहे हैं । संप्रदाय निरपेक्ष कवियों के अंतर्गत मीरा बाई एवं मुसलमान कवि रसखान को प्रतिनिधि कवियों के रूप में स्वीकार किया गया है । कृष्ण काव्य के अंतर्गत राम भक्त कवि तुलसीदास की कृष्णगीतावली भी आती है जिसे कृष्ण गाथा के आख्याता राम भक्त कवि के प्रतिनिधि के रूप में हमने स्वीकार किया है ।

यों तो हिन्दी शोध साहित्य के अंतर्गत भक्तिकाल से संबंधित विशेष कर कृष्ण काव्य को आधार बनाकर कई शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं । उदाहरण के लिए सूरदास - व्रजेश्वर वर्मा, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - डा॰दीनदयाल गुप्त, हरवंशलाल शर्मा का आलोचनात्मक ग्रंथ सूरदास, श्रीमद्भागवत और सूरसागर के वर्ण्य विषय का तुलनात्मक अध्ययन नामक वेद प्रकाश शास्त्री का शोध प्रबन्ध, मीरा का जीवन वृत्त एवं काव्य कल्याणसिंह शिखावत, देवेन्द्रसिंह उपाध्याय का शोध प्रबन्ध, रसखान का जीवन व कृतित्व आदि । हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों के उपजीव्य ग्रंथ भागवत को आधार बनाकर हिन्दी के कृष्ण काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन भी हो चुका है । लेकिन भागवत को छोडकर संस्कृत के कृष्ण काव्यों का अध्ययन किसी ने प्रस्तुत नहीं किया है । संस्कृत के ये ग्रंथ हिन्दी के कृष्ण काव्यों की तुलना में कुछ महत्व के अवश्य रहे हैं । इसलिए हम ने श्रीमद् भागवत के आधार पर रचित इन संस्कृत ग्रंथों एवं हिन्दी के कृष्ण भक्तिकालीन प्रमुख ग्रंथों को अध्ययन का विषय बनाया है ।

एम॰फिल॰लघु शोध प्रबंध के लिए श्रीकृष्ण गीतावली का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया था । इस पर काम करते समय मुझे हिन्दी और संस्कृत के काव्यों में कई विशेषताएँ मिली जिससे मुझे इस प्रकार के प्रबंध पर काम करने की प्रेरणा मिली ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में श्रीमद् भागवत को आधार बनाकर लिखे गये उपर्युक्त संस्कृत ग्रंथों एवं प्रमुख हिन्दी कृष्ण काव्यों का कृष्ण कथा प्रसंगों, भक्ति एवं दर्शन को आधार मानकर विशेष अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । श्रीमद् भागवत से कथा भाग को ग्रहण करते हुए इन कवियों ने जब अपनी मौलिक दृष्टि के आधार पर नये ग्रंथ प्रस्तुत किए तो वे ग्रंथ नये रंग-ढंग से सामने आये । कवियों ने अपनी इच्छा के अनुरूप अपने काव्य को सजाया । इस प्रकार कृष्ण कथा का एक बहुत बडा भंडार ही उपस्थित हुआ । संस्कृत में काव्य रचना इतनी नहीं विकसित हुई जितनी हिन्दी में हुई । संस्कृत में बिल्वमंगल का श्रीकृष्णकर्णामृत, जयदेव का गीतगोविन्द और नारायण भट्टत्तिरी का नारायणीयम्, सुकुमार कवि का कृष्ण विलास काव्य अपनी अपनी विशेषताएँ लेकर सामने आये ।

इस प्रबन्ध में हिन्दी के सूरसागर, मीरा की पदावली, रसखान रचनावली तथा कृष्णगीतावली को प्रतिनिधि पुस्तकों के रूप में लिया गया है । संस्कृत के नारायणीयम्, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, श्रीकृष्णविलासकाव्य तथा गीत गोविन्दम् को लिया गया है ।

पाठ मिलने की दुरूहता एवं हस्तलिखित प्रति पढ पाने की कठिनाई से हमने श्रीकृष्णविलास काव्य को छः अध्यायों तक सीमित रखा है ।

पूरा प्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त हैं । पहला अध्याय कृष्ण काव्य के उद्भव और विकास को लेकर है । इसमें कृष्ण शब्द की व्युत्पत्ति तथा विकास, वैदिक, पौराणिक, भक्तिकालीन तथा विभिन्न संप्रदायों में चित्रित कृष्ण चरित पर आधारित है ।

दूसरा अध्याय भक्तिकालीन हिन्दी तथा संस्कृत के कृष्ण काव्य का परिचयात्मक अध्ययन है ।

तीसरा और चौथा अध्याय भक्तिकालीन हिन्दी तथा संस्कृत के कृष्ण काव्यों के कृष्ण कथा प्रसंगों का विश्लेषण करता है । इसमें सूरसागर, मीरा की पदावली, रसखान रचनावली, कृष्णगीतावली, नारायणीयम्, कृष्ण कर्णामृतम् तथा गीत गोविन्द में मिलनेवाले प्रमुख कृष्ण कथा प्रसंगों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय भक्तिकालीन हिन्दी तथा संस्कृत के काव्य में चित्रित भक्ति एवं दर्शन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालता है ।

छठा अध्याय हिन्दी तथा संस्कृत की काव्य कला को दर्शाता है ।

उपसंहार के अंतर्गत इन सब ग्रंथों में मिलनेवाले प्रसंगों के साम्य और वैषम्य दर्शाये गए हैं । साथ ही इस में मिलनेवाली विशेषताएँ तथा उद्देश्य को व्यक्त किया गया है ।

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण भक्ति काव्य और संस्कृत के कृष्ण काव्य - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन नामक प्रबंध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्रोफेसर डॉ. एल सुनीता बा के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में संपन्न हुआ है । उनके आशीर्वाद, विशेष प्रोत्साहन, सतत प्रेरणा, प्रेम, सहयोग एवं बहुमूल्य सुझाव इस प्रबंध की प्रस्तुति में पग पग पर मुझे प्राप्त हुए हैं । मैं उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ ।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा. एम. ईश्वरी के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ ।

इनके अतिरिक्त मैं ने इस शोध कार्य में मुख्य रूप से विभाग के पुस्तकालय से काफी सहायता प्राप्त की है । पुस्तकालय के अध्यक्ष एवं विभाग के अन्य सभी प्राध्यापक जिन्होंने इस कार्य में मेरी सहायता की है, उन सब के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ । साथ ही महाराजास कालेज के संस्कृत अध्यापकों ने मुझे सहायता प्रदान की है, उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ । तृप्पूणित्तुरा के संस्कृत कालेज के पुस्तकालय से मुझे काफी हद तक सहायता मिली है । उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ । मुंबई के अनन्ताचार्य रिसर्च सेन्टर से मुझे सामग्री इकट्ठी करने में बहुत अधिक सहायता मिली है । उनके प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ अंत में अपने माता, पिता और पति के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने हर कदम पर मेरा उत्साह बढ़ाया और यह काम पूरा करने के लिए मेरी सहायता की ।

पूर्णिमा. आर

पूर्णिमा. आर

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय
कोच्चिन ।
तारीख : 20. 7. 2000

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय | 1 - 74

कृष्ण काव्य : उद्भव और विकास

कृष्ण शब्द की व्युत्पत्ति तथा विकास - वेदों में कृष्ण - उपनिषदों में कृष्ण - महाभारत में कृष्ण - पुराणों में कृष्ण - संस्कृत में कृष्ण काव्य - भक्तिकालीन साहित्य और कृष्ण - वल्लभ संप्रदाय - निम्बार्क संप्रदाय - चैतन्य संप्रदाय - हरिदासी संप्रदाय - श्री शुक संप्रदाय - प्राणनाथी संप्रदाय - राधावल्लभ संप्रदाय - संप्रदाय निरपेक्ष भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवि - मीरा - रसखान - निष्कर्ष ।

दूसरा अध्याय | 75 - 142

हिन्दी तथा संस्कृत का कृष्ण काव्य : एक परिचय

हिन्दी के प्रमुख रचनाकार और उनके ग्रंथ - सूरदास - मीरा - रसखान - तुलसीदास - संस्कृत के रचनाकार और उनके ग्रंथ - मेलपत्तूर नारायण भट्टत्तिरी - बिल्वमंगल स्वामी - जयदेव - सुकुमार कवि - निष्कर्ष ।

पृष्ठ संख्या

तीसरा अध्याय 143 - 217

हिन्दी तथा संस्कृत के कृष्ण काव्यों में कृष्ण कथा प्रसंग

हिन्दी के कृष्ण काव्यों में कृष्ण कथा वर्णन - संस्कृत के कृष्ण काव्यों में कृष्ण कथा वर्णन - हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्य और कृष्ण कथा प्रसंग - संस्कृत के कृष्ण काव्य और कृष्ण कथा प्रसंग - कृष्ण जन्म - पूतना वध - कृष्ण को पालने में झुलाना - श्रीधर अंग भंग - विविध असुरों का वध - शकटासुर वध - अघासुर वध - कृष्ण का अंगूठा चूसना - चन्द्रप्रस्ताव - घुटरुवों तथा पावों चलना - कृष्ण को राम की कहानी सुनाना - माटी भक्षण प्रसंग - माखन चोरी - उलूखल बंधन - कृष्ण की रोटी के लिए जिद्द - गोवर्द्धन धारण ।

चौथा अध्याय 218 - 277

हिन्दी तथा संस्कृत के कृष्ण काव्यों में कृष्ण कथा प्रसंग

कालिय दमन - वंशी वादन - गोपी प्रेम - राधा कृष्ण मिलन - श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाएँ - गोचारण लीला - रास लीला - पनघट लीला - मान लीला - दान लीला - भ्रमरगीत प्रसंग - कुब्जावरण प्रसंग - निष्कर्ष ।

पाँचवाँ अध्याय 278 - 328

हिन्दी तथा संस्कृत के कृष्ण काव्य में भक्ति तथा दर्शन

भक्ति क्या है ? - भक्ति के प्रकार - हिन्दी तथा संस्कृत के कृष्ण भक्त कवि - भक्ति का स्वरूप -

पृष्ठ संख्या

भक्ति के प्रकार - भारतीय दर्शन और भक्तिकाल - हिन्दी और संस्कृत कृष्ण काव्यों में दर्शन - ब्रह्म, जीव, ब्रह्म और जीव का संबंध - माया - मोक्ष - निष्कर्ष ।

छठा अध्याय — 329 - 380

हिन्दी तथा संस्कृत के कृष्ण काव्यों में कला

काव्य में कला का महत्व - काव्य कला के भेद - रस, छंद, अलंकार - वर्णन परंपरा - शैली - भाषा - निष्कर्ष ।

उपसंहार — 381 - 394

संदर्भ ग्रन्थ सूची — 395 - 412

पहला अध्याय

कृष्ण काव्य : उद्भव और विकास

कृष्ण शब्द की व्युत्पत्ति तथा विकास

"कृष्ण" शब्द की व्युत्पत्ति नित्यता बोधक "कृष्" धातु से आनन्दवाचक "ण" प्रत्यय लगाकर हुई है, जिसका अर्थ है "कर्षति मनः" जो मन को आकृष्ट करे। नित्यता और आनन्द दोनों का भाव रूप परब्रह्मा कृष्ण कहलाता है। प्रलयकाल में समस्त जीवों को अपनी कुक्षि में खींचनेवाले को कृष्ण कहते हैं। "कृष्णः" शब्द का "क्" ब्रह्मवाचक है, "ऋ" अनंत वाचक, "ष्" शिववाचक, "न्" धर्मवाचक "अ" विष्णु वाचक और विसर्ग नर-नारायण वाचक हैं।[1] महाभारत के अनुसार कृष्ण शब्द की व्युत्पत्ति "कृष्" धातु से हुई है जो सत्ता अर्थ का वाचक है और "ण" आनन्द का बोध कराता है। इन दोनों भावों से युक्त होने के कारण यदुकुल में अवतरित नित्य आनन्द स्वरूप श्रीविष्णु "कृष्ण" कहलाते हैं।[2] गोपालतापिनी उपनिषद् में भी महाभारत का यही भाव दिखाई देता है।[3] "कृष्ण" नाम को सब नामों से श्रेष्ठ माना गया है। दानवों से पीडित पृथ्वी को एक बार भगवान ने दानवों का विध्वंस करके सुख प्रदान किया था। पृथ्वी को सुख पहुँचाने के अर्थ में भी इसका व्यवहार होता आया है। श्रीकृष्ण नाम में उनकी प्रमादात्री शक्ति की प्रबलता है।

---

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण - 13/55-68
2. कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
   विष्णुस्तद्भावयोगश्च कृष्णो भवति सात्वतः ।।
   महाभारत - उद्योग पर्व - 70/5
3. ॐ कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः।
   तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ।।
   गोपालपूर्वतापिनी उपनिषद 1/1.

वैदिक साहित्य में कृष्ण

वैदिक साहित्य में कृष्ण का उल्लेख ऋग्वेद, आरण्यक, ब्राह्मण तथा उपनिषदों में प्राप्त होता है । ऋग्वेद के अष्टम मंडल के सूत्र 85, 86, 87 और दशम मण्डल के सूत्र 42, 43, 44 में कृष्ण नाम का उल्लेख है । इन मंत्रों में "कृष्ण" अश्विनीकुमारों को सोमपान केलिए आवाहन करते हैं - हे, अश्विनी कुमारों मधु सोमपान के लिए मैं कृष्ण ऋषि तुम्हें बुलाता हूँ ।[1] अष्टम मंडल में एक और मंत्र में ऋषि स्वयं अपने को कृष्ण नाम से पुकारते हैं ।[2] अंशुमति नदी के किनारे दस सहस्र सैनिकों से युक्त कृष्ण का इन्द्र के साथ युद्ध का वर्णन है ।[3]

वैदिककाल में काष्र्णायन नामक गोत्र था । माना जाता है कि इसके मूल पुरुष श्रीकृष्ण थे । वासुदेव उसी काष्र्णायन गोत्र के थे । अतः उनका नाम भी कृष्ण पड़ा होगा ।[4] इन्द्र के विरोधी के रूप में भी कृष्ण का

---

1. अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये ।
   ऋग्वेद आठवाँ मंडल सूक्त 85 मंत्र 3
2. शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा ।। - ऋग्वेद 8/85/4
3. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठादियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
   आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ।
   द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
   न भो न कृष्ण भवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ।।
   ऋ 8/96/13-14
4. वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर मैनर रिलिज्यस सेक्स - आर.जी.भण्डारकर - पृ. 11-12

नाम हमें ऋग्वेद में मिलता है । कृष्ण नामक असुर की हत्या इन्द्र ने की थी ।[1] श्रीकृष्ण यदुवंशी थे । ऋग्वेद में यदु का उल्लेख अनेक बार मिलता है ।[2] ऋग्वेद में यदु को प्रसिद्ध राजा बताया गया है और इन्द्र द्वारा उन्हें युद्ध में सहायता प्रदान करने की बात कही गयी है । एक और स्थान पर भी यदु का नामोल्लेख हुआ है ।[3] ऋग्वेद के अष्टम मंडल षष्ठ अध्याय सूक्त 74 में गोप शब्द का उल्लेख मिलता है । इसमें "गोपवन" शब्द भी प्रयुक्त है जो एक ऋषि के नाम के रूप में लिया गया है ।[4] ऋग्वेद में हरि की स्तुति शिशु के रूप में की गई है ।[5] वल्लभ संप्रदाय की भी यह खास विशेषता है ।

ऋग्वेद में एक स्थान पर भगवान को "पुष्टीनां सखा"[6] कहा गया है । वल्लभ संप्रदाय में भी भगवान कृष्ण की विशेषता इसी प्रकार व्यक्त की गयी है । सामवेद के एक मंत्र में कृष्ण कथा की ओर संकेत मिलता है । सामवेद में कहते हैं कि विद्वान लोग क्रीडाशील लीलामय हरि की साक्षात् स्तुति करते हैं और गौएँ दुग्ध से उसका अभिषेक करती हैं ।[7] अथर्ववेद में भगवान को सखा मान लिया गया है ।[8] यह कृष्ण भक्ति की

---

1. मनवे शासदव्रता न्त्वचं कृष्णा मरन्धयत् ।। ऋ 1/130/8
2. यद् दुह्य व्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम ।। ऋ 8/2/10
3. सत्यं तन्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् ।। ऋ 8/6/45
4. यं त्वां गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरा ।।
5. शिशुं ज ज्ञानं हरिं मृणन्ति । ऋ 9/109/12
6. ऋग्वेद - 10/267
7. हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदभि श्रयुः ।। - सामवेद मंत्र सं. 1153
8. युज्यो मे सप्तपदः सखासि ।। - अथर्ववेद - 5/11/9

एक विशेषता है । ब्राह्मण आरण्यक ग्रन्थों में भी कृष्ण का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है । कौशीतकी ब्राह्मण में अंगिरस के कृष्ण का उल्लेख है ।[1] यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में नारायण को कृष्ण का अवतार बताया गया है ।[2] उसी ब्राह्मण में एक स्थान पर यज्ञ को कृष्ण कहा गया है ।[3] तैत्तरीय आरण्यक में हमें श्रीकृष्ण के ही दूसरे रूप नारायण, वासुदेव और विष्णु की उपासना का उल्लेख मिलता है ।[4] वेदान्तों में भी श्रीकृष्ण से संबंधित बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है । छांदोग्य उपनिषद् में श्रीकृष्ण को देवकी पुत्र कहा गया है और उनके गुरु का नाम घोर अंगिरस बताया गया है ।[5] कृष्णोपनिषद् कृष्ण लीला संबंधी एक महत्वपूर्ण उपनिषद् है जिसमें कृष्ण को शाश्वत ब्रह्म कहा गया है ।[6] इसी उपनिषद् में कृष्ण को गोपरूप में माया विग्रह धारण करनेवाला साक्षात् परब्रह्म हरि कहा गया है ।[7] उसी में कृष्ण और बलराम को वेदार्थ बताया गया है ।[8] महानारायणोपनिषद् में श्रीकृष्ण को देवकीपुत्र,

---

1. कृष्णो हितदांगिरसो ब्राह्मणांछदसीय तृतीयं सवनं ददर्श । कौशीतगी ब्राह्मण - 30/9
2. शतपथ ब्राह्मण - 12/3/4
3. यज्ञो ही कृष्ण: । शतपथ ब्राह्मण 3/2/1।28
4. नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।
   तन्नो विष्णु: प्रचोदयात् ।। तैतरीय आरण्यक 10/1/6
5. तद्वैतद्घोर आङ्गिरस: कृष्णाय देवकी
   पुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव ।। छांदोग्य उपनिषद् 3/17/6
6. कृष्णो वै ब्रह्म शाश्वतम् ।। कृष्णोपनिषद् 12
7. गोपरूपो हरि: साक्षान्मायाविग्रह धारिण: । कृष्णोपनिषद् 10
8. वेदार्थ: कृष्णरामयो: ।। कृष्णोपनिषद् 6

मधुसूदन, पुण्डरीकाक्ष, विष्णु और अच्युत कहा गया है ।[1] गोपालतापिनी उपनिषद् में श्रीकृष्ण के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का समावेश किया गया है । इसमें कृष्ण के गोपाल रूप को प्रधानता दी गयी है । कृष्ण को इस में परम देव माना गया है ।[2] इसी उपनिषद् में कृष्ण को सच्चिदानन्द स्वरूप, वेदान्त द्वारा जानने योग्य, सब के बुद्धि के साक्षी तथा जगत् के गुरु कहा गया है ।[3] इस प्रकार भिन्न भिन्न उपनिषदों में भिन्न भिन्न रूप से कृष्ण कथा तथा लीला का संकेत मिलता है ।

ऊपर के संकेतों से यह माना जा सकता है कि कृष्ण के पिता का नाम वासुदेव तथा माता का नाम देवकी था । वे घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य थे । समस्त वेद और वेदान्तों के ज्ञाता थे । राजनीतिज्ञ तथा बलवान योद्धा थे । वे सच्चिदानन्द स्वरूप तथा जगत के गुरु थे । इस कृष्ण ने सात्वत संप्रदाय की स्थापना करके निवृत्ति मार्ग के स्थान पर प्रवृत्ति मार्ग को आगे बढ़ाया । देखने में वे सर्वाङ्गीण सुन्दर थे । संभवतः इसी सर्वाङ्गीण शारीरिक, सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति के कारण वे जनता के लिए समादरणीय एवं भक्ति भाजन बन गये थे ।[4]

---

1. ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः ।
   ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युतः ।। महानारायणोपनिषद् 4
2. कृष्ण एव परमो देव । गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद् - पृ. 353
3. ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्ट कारिणे ।
   नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धि साक्षिणे ।।
   गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद् ।/।
4. सूर सौरभः डॉ मुंशीराम शर्मा - पृ. 77.

:ाभारत में श्रीकृष्ण

महाभारत को पंचम वेद कहा गया है । महर्षि वेदव्यास चारों वेदों और समस्त वेदान्तों के सार तत्व को आख्यान रूप में इसमें तुत किया है । इसमें मुख्य प्रतिपाद्य कौरवों और पाण्डवों की कथा है । । तत्र कृष्णचरित का उल्लेख मिलता है । महाभारत के आदि पर्व में यह तिकार किया गया है कि भगवान नारायण ही वासुदेव कृष्ण के रूप में ातरित हुए हैं ।[1] श्रीकृष्ण का नाम सर्वप्रथम महाभारत में आदि पर्व में पदी स्वयंवर के समय आता है । आदि पर्व में यह उल्लेख आता है कि कृष्ण और अर्जुन पूर्व जन्म में नर-नारायण ऋषि थे ।[2] सुभद्रा हरण प्रसंग के र्गत कृष्ण की प्रेम प्रवणता का पता चलता है ।[3] सभा पर्व में श्रीकृष्ण धिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में ब्राह्मणों के पाव धोते हैं ।[4] इसमें कृष्ण की अग्रिम ा की जाती है । इसमें कृष्ण को विश्व की उत्पत्ति-स्थान एवं विश्रामभूमि ा गया है । उन्हीं को अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्ता और समस्त प्राणियों अधीश्वर भी कहा है ।[5] द्रौपदी चीर हरण प्रसंग में भक्तवत्सल भगवान

यस्तु नारायणो नाम देवदेवः सनातनः ।
तस्यांशोमानुषेष्वासीद् वासुदेवः प्रतापवान् ।। महाभारत आदि पर्व 67/151
आस्तां प्रियसखायौ तौ नर नारायणावृषी ।। महाभारत 1/217/5
महाभारत - 1/239/243
वही - 2/35/11
कृष्ण एव हो लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः ।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरं ।।
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः ।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमो हरिः ।। महाभारत - 2/38/23-24

अपनी भक्तवत्सलता का परिचय देते हैं ।[1] उसी पर्व में भीष्म द्वारा विष्णु के अवतार कृष्ण की स्तुति की गयी है ।[2] इसमें भीष्म श्रीकृष्ण को अव्यक्त प्रकृति एवं सनातन कर्ता कहते हैं ।[3] भीष्म द्वारा कृष्ण को सर्वश्रेष्ठ और पूज्य ठहराना उनके गौरव का संकेत करता है । सभी पर्व में अठतीसवें अध्याय में श्रीकृष्ण के प्राकट्य से लेकर संक्षिप्त रूप में समस्त कृष्ण लीला का गान किया गया है । पैंतालीसवें अध्याय में कृष्ण द्वारा शिशुपाल वध का वर्णन है ।

वन पर्व में श्रीकृष्ण निर्वासित पांडवों से मिलने आते हैं । इसी पर्व में अर्जुन द्वारा किया गया श्रीकृष्ण का माहात्म्य कथन प्राप्त होता है । इसमें श्रीकृष्ण को नारायण, हरि, ब्रह्मा, सोम, सूर्य, धर्म, धाता, यम, अनल, वायु, कुबेर, रुद्र, काल, आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ, चराचर गुरु तथा सृष्टिकर्ता एवं अजन्मा कहा गया है ।[4] वन पर्व में श्रीकृष्ण दुर्वासा मुनि से अपनी भक्ता द्रौपदी की रक्षा कर अपनी भक्तवत्सलता का परिचय देते हैं ।

विराट पर्व में श्रीकृष्ण की अनुमति से अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह संपन्न होता है ।

---

1. महाभारत, सभा पर्व - 68/48-49
2. वही - 52 वाँ अध्याय
3. एव प्रकृतिव्यक्ता कर्ताचैव सनातनः ।
   परश्च सर्व भूतेभ्यः तस्मात्पूज्य तमोऽच्युतः ।। महाभारत 2/28/25
4. सत्वं नारायणो भूत्वा हरिरासीः परंतप । ब्रह्मा, सोमश्च, सूर्यश्च
   धर्मो धाता यमोऽनलः ।।
   वायुर्वैश्रवणो रुद्रः कालः खं पृथिवी दिशः । अजश्चराचरगुरुः स्रष्टा त्वं
   पुरुषोत्तमः ।।

उद्योग पर्व में सत्तवें अध्याय में श्रीकृष्ण के नामों की व्युत्पत्ति का वर्णन है । संधि के लिए कृष्ण पाण्डवों की ओर से हस्तिनापुर जाते हैं । कौरव कृष्ण को बंधि बनाने के लिए उद्यत होते हैं तो श्रीकृष्ण अपने विराट रूप धारण करते हैं । विदुर दुर्योधन को श्रीकृष्ण का माहात्म्य सुनाते हैं ।

भीष्म पर्व में अठारह अध्यायों में श्रीमद् भगवत् गीता का उपाख्यान आता है जिसमें श्रीकृष्ण को पूर्ण परब्रह्म माना गया है । यदि गीता के आधार पर कृष्ण चरित का आकलन किया जाए, तो उनके दार्शनिक व्यक्तित्व का पूरी तरह उद्घाटन होता है । कृष्ण ने गीता में जो दर्शन प्रतिष्ठित किया है, उसके अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि कृष्ण को यहाँ परम देव के रूप में स्वीकार किया गया है । इसी पर्व के उनसठवें अध्याय में अपने भक्त भीष्म की प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोडकर कृष्ण शस्त्र उठाते हैं और एक बार फिर अपनी भक्तवत्सलता का परिचय देते हैं । इसके छाछठवें अध्याय में नारायणावतार श्रीकृष्ण की महिमा का प्रतिपादन किया गया है । सतसठवें अध्याय में भगवान कृष्ण की महिमा का वर्णन है ।

द्रोण पर्व के ग्यारहवें अध्याय में धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं और कृष्ण को ईश्वर मानते हैं । नीतिकुशल कृष्ण के नीति कौशल से जयद्रथ और द्रोणाचार्य मारे जाते हैं ।

कर्ण पर्व में कृष्ण की चतुर नीति से अर्जुन कर्ण का वध करने में सफल होता है । शल्यपर्व में श्रीकृष्ण दुर्योधन को मारने में भीम की सहायता करते हैं । सौप्तिक पर्व में श्रीकृष्ण अश्वत्थामा के षड्यंत्र से पांडवों को बचाते हैं । स्त्री पर्व में श्रीकृष्ण भीम को धृतराष्ट्र से बचाते हैं ।

शान्ति पर्व में श्रीकृष्ण की महानता का उल्लेख अनेक बार मिलता है । इसी पर्व में भीष्म का प्रसिद्ध स्तोत्र "कृष्णस्तवराज" मिलता है । इस में कृष्ण की महानता पर बल दिया गया है । इसी पर्व में नारायणीय उपाख्यान भी आता है ।

अश्वमेधिक पर्व में सभी जीवों के स्वामी श्रीकृष्ण द्वारा परीक्षित को जीवित करने की कथा है । मौसल पर्व में श्रीकृष्ण के पृथ्वी छोड़कर अपने धाम को प्रस्थान करने की कथा है ।

इस प्रकार महाभारत की कथा में अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण के दिव्य चरित का उल्लेख मिलता है । इसमें उनका मूल उद्देश्य धर्म की स्थापना रहा है । महाभारत में उन्हें विष्णु का अवतार तथा परम पुरुषोत्तम माना गया है । महाभारत में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से देवत्व की भावना से युक्त है ।[1] इस काल में कृष्ण चरित में अलौकिक उपाख्यानों का प्रस्फुटन होने लगा । कृष्ण चरित कृष्ण लीला में रूपान्तरित होने लगा । ऐतिहासिक कृष्ण अपने भावात्मक स्वरूप में लोकमानस में बसने लगे । यहीं से पुराणों और काव्यों में कृष्ण चरित का अंकन होने लगा । अवतारवाद और लीलावाद भी महाभारतकालीन देन है । इसी काल से भागवत धर्म का प्रचार और प्रसार होने लगा । वैष्णव भक्ति की सगुण धारा यहीं से फूटने लगी ।

पौराणिक साहित्य में कृष्ण

पौराणिक साहित्य प्राचीन भारत की अमूल्य निधि है इसमें हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की नींव दिखाई देती है ।

---

1. जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी 1915 - पृ. 548, उद्धृत हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - रामकुमार वर्मा - पृ.

पहले ही भूत भविष्यत् अर्थो का कथन करनेवाला साहित्य पुराण कहलाता है । भारतीय इतिहास, सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का बहुत बडा महत्व है । पुराणों में ऐतिहासिक घटनाओं को कथा रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

भारतीय समाज अनेक संस्कृतियों की अंतरंग भावभूमि है । इस जीवंत सामाजिक तथा सांस्कृतिक देश में जहाँ तैंतीस करोड देवी देवताओं की मान्यता रही है, उन प्राचीन देवताओं के स्थान पर राम और कृष्ण धर्म और समाज में प्रतिष्ठित हुए । भारतीय धार्मिक चेतना का ध्रुवीकरण राम और कृष्ण में हुआ । पुराणों ने राम और कृष्ण की लीलाओं को वर्णित कर एक नये आयाम के लिए अवसर प्रदान किया । राम का मर्यादापुरूषोत्तम रूप तो उतने विस्तार से पुराणों में स्थान न पा सका जितना पूर्ण पुरूषोत्तम कृष्ण ने पाया । कृष्ण के ऐश्वर्यपरक लीलाओं में असुरों के विनाश एवं धर्म संस्थापन के साथ साथ माधुर्य परक लीलाओं से पुराण साहित्य आपूर्ण है । श्रीकृष्ण सीमातीत हैं । वे भक्तों के प्रेमानुग्रह-वशात् प्रकट होते हैं और दिव्य प्रेम के आनन्द रस में भक्तों को आप्लावित करते हैं । उनका अवतार ही लीलाओं के विस्तार के लिए होता है । समस्त कलाओं का अद्भुत विकास श्रीकृष्ण में देखा जाता है । लीला परंपरा पुराणों से होकर हिन्दी साहित्य में प्रविष्ट हुई है । पुराणों ने लीला केलि में देवत्व को भी मानवत्व में रूपान्तरित किया । इसीलिए कृष्णावतार में उपनिषद् के रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्णलीलापुरूषोत्तम राधावल्लभ बन गये ।[1] यह लीला पौराणिक युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।

---

1. हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास - डॉ.तपेश्वरनाथ - पृ. 130

पुराणों की संख्या अठारह मानी जाती है । अठारह उपपुराण भी प्राप्त होते हैं । कृष्ण लीला वर्णन अधिक या कम मात्रा में सभी पुराणों में उपलब्ध होता है । कृष्ण चरित का विशद विवरण हरिवंश, भागवत, विष्णु, पद्म तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है । देवाधिदेव कृष्ण इन्हीं पुराणों में प्रतिष्ठित हुए हैं, भक्तों के आराध्य होने के साथ वे भक्तवत्सल भी है, लोकरक्षक होने के साथ लोकरंजक भी हैं ।

श्रीमद्भागवत

श्रीकृष्णलीला का आधार तथा उपजीव्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत् रहा है । इस एक ग्रंथ के आधार पर ही समस्त कृष्ण लीला का प्रणयन हुआ है । महर्षि वेदव्यास के अनुसार यह निगम कल्पतरु का स्वयं गलित फल है जिसे शुकदेव जी ने अपनी मधुर वाणी से संयुक्त कर अमृतमय बना डाला है ।[1] यह ग्रंथ भारत वर्ष के पुराण साहित्य के मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित है । इसे वेद महोदधि का अमृत माना गया है ।[2] किसी किसी ने भागवत को ही कृष्ण माना है ।[3] श्री शुकमुनि ने इसे "पुराणतिलक" कहकर संबोधित किया है ।[4]

श्रीमद्भागवत की श्लोक संख्या अठारह हजार कही गयी है ।[5] इसमें भगवान विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है । यह ग्रन्थ बारह स्कंधों में विभाजित है । दसवाँ स्कंध दो भागों में विभाजित

---

1. निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् - भागवत महात्म्य 6/80
2. वेदोपनिषदां साराज्जातां भागवती कथा ।
3. श्रीमद्भागवताख्यो यं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ।। भागवत महात्म्य 6/30
4. श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं - भागवत महात्म्य - 6/82
5. तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ।। - भागवत 12/13/9

है । इसमें संपूर्ण कृष्ण लीला वर्णन किया गया है । इसमें कृष्ण को हरि का पूर्णावतार माना गया है ।[1]

भागवत के दशमस्कंध के पूर्वार्द्ध में सैंतालीस अध्यायों में कृष्ण लीला का वर्णन है । उत्तरार्द्ध में चालीस अध्यायों में इसका वर्णन मिलता है । भागवत में वर्णित कृष्ण कथा प्रसंग निम्नलिखित है - भगवान का कृष्ण का प्राकट्य, जन्मोत्सव, पूतना उद्धार, शकट भंजन, तृणावर्त उद्धार, नामकरण, बाललीला, उलूखल बँधन, यमलार्जुन उद्धार, वृन्दावन गमन, वत्सासुर वध, बकासुर वध, अधासुर वध, ब्रह्मा का मोह, वत्सहरण, धेनुकासुर वध, कालिय मर्दन, दावानल पान, वेणुगीत, चीरहरण, यज्ञपत्नियों पर कृपा, इन्द्रयज्ञ निवारण, गोवर्धन धारण, नन्द को वरूणालय से लाना, रासलीला का आरंभ, गोपिका गीत, महारास, सुदर्शन और शंखचूड वध, युगल गीत, अरिष्टासुर वध, अक्रूर का व्रजागमन, केशी और व्योमासुर वध, मथुरा यात्रा, कुब्जा पर कृपा, धनुषभङ्ग, कुवलयापीड वध, चाणूर और मुष्टिक का वध, कंसवध, यज्ञोपवीत संस्कार, गुरुकुल जाना, उद्धव को व्रज भेजना, भ्रमरगीत, कुब्जा प्रसंग आदि पूर्वार्द्ध के अंतर्गत आते हैं । उत्तरार्द्ध में जरासन्ध युद्ध, द्वारका निर्माण, कालयवन और मुचुकुन्द कथा, रुक्मिणी हरण, प्रद्युम्न जन्म, शंबरासुर वध, स्यमन्तकोपाख्यान, सत्यभामा विवाह, शतधन्वा वध, कृष्ण के दूसरे विवाह, भौमासुर वध, उषा-अनिरुद्ध विवाह, नृग राज की कथा, पौण्ड्रक वध, द्विविद वध, साम्ब निग्रह, शिशुपाल वध, शाल्व वध, दन्तवक्त्र और विदूरथ वध, सुदामा चरित, सुभद्रा हरण, ब्राह्मण बालकों को वापस लाना और भगवान कृष्ण के लीला विहार का वर्णन आदि प्रसंग आते हैं ।

---

1. एते चांशकला: कृष्णस्तु भगवान स्वयं ।। - भागवत 1/3/28

महाभागवत पुराण ने अवांतरकालीन लगभग समस्त धार्मिक संप्रदायों को प्रभावित किया है विशेषकर वल्लभ, चैतन्य और माध्व संप्रदायों को । विष्णु परक होते हुए भी सभी देवताओं के प्रति यह पुराण उदार है । इसमें सांप्रदायिकता की भावना कतई नहीं है । महाभागवत पुराण ने सर्वप्रथम भगवान कृष्ण की प्रतिष्ठा में वृद्धि की और कृष्ण की नर लीलाओं तथा परामानवीय शक्तियों का सुन्दर चित्रण किया है । कृष्ण चरित की मानवीयता ही कृष्णाश्रयी भक्ति काव्य का मूल स्त्रोत है । भागवत की लीलाकथाएँ बहिरंग दृष्टि से जनोचित चरित कथाओं के सदृश हैं लेकिन उनका अंतरंग गूढार्थ है । विद्वानों ने इसी लिए भागवत को समाधि भाषा का ग्रंथ कहा है ।

विष्णु पुराण

वैष्णव पुराणों में श्रीमद्भागवत के बाद विष्णु पुराण की गणना होती है । इस पुराण को वैष्णव दर्शन का मूल अवलंब माना जाता है । इस पुराण के बारे में मत्स्य पुराण का कहना है - "वराह कल्प के आरंभ में जब भगवान अवतरित हुए थे, इस वृतांत को लक्ष्य कर पराशरात्मज ने जिन धर्मयुक्त उपदेशों को प्रस्तुत किया, उसे विष्णु पुराण कहते हैं । विद्वानों के अनुसार इसमें तेईस सहस्र श्लोक हैं ।[1] विष्णु पुराण को छः अंशों में विभाजित किया गया है । इसके एक सौ छब्बीस अध्याय हैं । पाँचवें अंश में श्रीकृष्ण का जीवन चरित्र और लीलाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है । इसमें वर्णित कृष्ण कथा प्रसंग इस प्रकार है - भगवान का आविर्भाव, पूतनावध, शकट भंजन, यमलार्जुन उद्धार, वृन्दावन गमन,

---

1. वाराह कल्पवृतान्तमधिकृत्य पराशरः ।
   यत्प्राह धर्मानिखिलान् तदुक्तं वैष्णवं विदुः ।
   त्रयो विंशति साहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः ।। मत्स्य पुराण अ - 53

कालिय दमन, धेनुकासुर वध, प्रलंब वध, गोवर्धन धारण, रासक्रीडा, वृषभासुर वध, केशी वध, अक्रूर आगमन, मथुरा गमन, रजक वध, माली पर कृपा, कुब्जा पर कृपा और कंस वध ।

साहित्यिक दृष्टि से यह पुराण बहुत ही सरस, सुन्दर तथा रमणीय है । इसके चतुर्थ अंश में प्राचीन स्पष्ट गद्य की झलक मिलती है । भक्ति और ज्ञान का सामंजस्य इस पुराण में अतीव सुन्दर रूप में मिलता है ।

पद्म पुराण

पद्म पुराण में कृष्ण-काव्य संबंधी प्रचुर सामग्री मिलती है । पद्मपुराण का परिचय देता हुआ मत्स्य पुराण कहता है -"जिस समय यह समस्त संसार एक स्वर्णमय पद्म के रूप में परिणत था, उस समय के वृत्तांत का जिसमें वर्णन किया गया है, पण्डित लोग उसे पद्म पुराण के नाम से जानते हैं । उस पद्मपुराण की कथा इस मर्त्यलोक में पचपन हज़ार श्लोकों में कही गयी है ।"[1]

नारद पुराण के अनुसार पद्म पुराण के पाँच खण्ड है । वे हैं सृष्टि खण्ड, भूमि खण्ड, स्वर्ग खण्ड, ब्रह्म खण्ड और पाताल खण्ड । सृष्टि खण्ड में कृष्ण के जन्म उनके वंशानुचरित का वर्णन है । पाताल खण्ड में अध्याय 69 से 83 तक कृष्ण और वृन्दावन का माहात्म्य वर्णन है । पद्म पुराण में वर्णित राधा कृष्ण के स्वरूप का वर्णन, सूर सागर के राधाकृष्ण के वर्णन से मिलता जुलता है ।[2]

---

1. मत्स्य पुराण - अ. 53/14

   तद्वृत्तन्ता श्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।

   पद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते ।।

ब्रह्मवैवर्त पुराण

हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य को प्रभावित करनेवाले पुराणों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है । इस पुराण के बारे में मत्स्य पुराण का कहना है -"रथन्तर नामक कल्प के वृत्तान्त को लक्ष्य कर सावर्णि मनु ने नारद महर्षि के लिए कृष्ण भगवान के श्रेष्ठ माहात्म्य को जिस पुराण में कहा है और जिसमें ब्रह्म वाराह के उपदेश बारंबार वर्णित है, वह अठारह सहस्र श्लोकों का ब्रह्मवैवर्त नामक पुराण कहा जाता है ।"[1] यह पुराण चार खंडों में विभक्त हैं -§1§ ब्रह्म खण्ड §2§ प्रकृति खण्ड §3§ गणपति खण्ड और §4§ श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ।

इस पुराण के प्रमुख प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण तथा उनकी प्राणाधिका शक्ति श्रीराधा है । संपूर्ण पुराण के दो तिहाई भाग में श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा का वर्णन है तथा बाकी में अन्य विषयों का विवेचन है । इसमें श्रीकृष्ण के रूप में परम सत्यतत्व भगवान का तथा श्री राधा के रूप में परम सत्यतत्वमयी भगवती का प्रतिपादन किया गया है ।

प्रकृति के भिन्न भिन्न परिणामों का जिसमें प्रतिपादन हो वह पुराण ब्रह्मवैवर्त है । एक दूसरी व्याख्या के अनुसार इस पुराण में श्रीकृष्ण ने अपनी पूर्ण ब्रह्मरूपता को विवृत कर दिया है, इसीलिए इसे ब्रह्मवैवर्त कहते हैं ।

---

1. रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य यत् ।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यसंयुतम् ।।
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः ।
तदष्टादश साहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ।। मत्स्य पुराण - अ. 53

विवृतं ब्रह्मकात्स्न्र्यं च कृष्णेन यत्र शौनक ।
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ॥[1]

अर्थात् यह सारा जगत् ब्रह्म का विवर्त है अर्थात् श्रीकृष्ण में भ्रम से इसका आरोप हुआ है । इस बात को बतानेवाला पुराण ब्रह्मवैवर्त है ।

इस पुराण में श्रीकृष्ण को परब्रह्म बताया गया है ।[2] खण्डचतुष्टयात्मक इस पुराण के प्रथम खण्ड में परब्रह्म परमात्मा के तत्व का निरूपण है, दूसरे में मूलप्रकृति राधा के शुभचरित्र का वर्णन है, तीसरे में गणेश जन्मादि का तथा चतुर्थ में श्रीकृष्ण के अवतार तथा उनकी लीलाओं का मनोहारी वर्णन है ।

यह पुराण कृष्णपरक है, इसलिए कृष्ण भक्त कवियों में इसकी बहुत अधिक मान्यता है ।

<u>हरिवंश पुराण</u>

हरिवंश पुराण महाभारत का खिल भाग है । हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा है । इसमें तीन पर्व हैं - §1§ हरिवंश पर्व §2§ विष्णु पर्व §3§ भविष्य पर्व । तीनों पर्वों में कृष्ण चरित का वर्णन मिलता है ।

हरिवंश पुराण का श्रीकृष्ण विष्णु का अवतार है । उन्हें सनातन, आदि देव आदि कहा गया है । डॉ॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

---

1. ब्रह्मवैवर्तपुराण - ब्रह्मखण्ड - 1/58-59
2. वन्दे कृष्ण गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः ब्रह्मवैवर्त पुराण - ब्रह्म खण्ड 1/4

के अनुसार हरिवंश की हल्लीसक क्रीडा ही भागवत की रासलीला का पूर्ण रूप है ।[1]

इस पुराण के पहले पर्व में यदुवंश तथा वृष्णिवंश का वर्णन मिलता है । विष्णु पर्व में श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं का विवरण है । भविष्य पर्व में भी कृष्ण की आराधना का महत्व प्रतिपादित किया गया है ।

इस पुराण ने अनेक हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों को प्रभावित किया है ।

इन पाँच पुराणों के अतिरिक्त अग्नि, वायु, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, वामन, मत्स्य, कूर्म, वाराह, लिंग, स्कंद आदि पुराणों में भी यत्र तत्र कृष्ण लीला विषयक उल्लेख मिलता है ।

अग्निपुराण के बारहवें अध्याय में कृष्ण की संक्षिप्त लीलाओं का वर्णन मिलता है । वायु पुराण में यदुवंश और वृष्णिवंश के वर्णन के साथ साथ कृष्ण के जन्म और उनकी महिमा का वर्णन है । ब्रह्माण्ड पुराण में कृष्ण की वंश परंपरा के साथ कृष्णावतार तथा कृष्ण लीलाएँ तथा उनकी महिमा का वर्णन मिलता है । ब्रह्म पुराण में बत्तीस अध्यायों में कृष्ण कथा वर्णन मिलता है । वामन पुराण में बारहवें अध्याय में कृष्ण का नामोल्लेख मात्र मिलता है । मत्स्य पुराण में वासुदेव, देवकी, यशोदा और नन्द के साथ साथ कृष्ण जन्म का वर्णन मिलता है । कूर्म पुराण में शिव और कृष्ण का अभेद बताया गया है । संक्षेप में कृष्ण का वंश वर्णन और मुख्य लीलाओं का उल्लेख मिलता है । वाराह पुराण में छियालीसवें

---

1. मध्यकालीन धर्म साधना - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी - पृ. 119

अध्याय में कृष्ण का उल्लेख मिलता है । इसमें दशावतारों का वर्णन भी मिलता है । सोलह अध्यायों में मथुरा माहात्म्य तथा उसके आसपास के तीर्थों का वर्णन है । लिंग पुराण के उनहत्तरवें अध्याय में संक्षिप्त रूप से श्रीकृष्ण लीलाओं का उल्लेख है । स्कंध पुराण में कृष्ण लीला संबंधी अनेक जानकारी मिलती है । इसके माहेश्वर, वैष्णव, आवंत्य, रेवा तथा प्रभास खण्ड में यत्र तत्र कृष्ण लीला का उल्लेख मिलता है ।

इस प्रकार मुख्य पुराणों में कृष्ण लीला संबंधी अनेक सामग्री मिलती है ।

कृष्ण भक्ति का विकास

वेद भारत के अति प्राचीन साहित्य है । कहते हैं सभी का मूल इसी में पाया जाता है । साधारण मनुष्य वैदिक भाषा, अलंकार आदि समझ नहीं पाते थे । इसलिए सूत गाथाओं द्वारा इसे समझाया करते थे । यह बात निरुक्त में स्पष्ट रूप से कही गयी है । ऋषियों को वेद धर्म साक्षात्कृत नितांत स्पष्ट था । जिनको स्पष्ट नहीं था, उनको उपदेश के द्वारा वेद धर्म का ज्ञान कराया गया । जब उपदेश द्वारा भी जनता उसे न समझ सकी तो वेदांगों का निर्माण किया गया । वेदांगों के साथ वैदिक वाङ्मय विस्तृत हुआ । प्रभु की वाणी के साथ महर्षियों की पवित्र वाणी भी मनुष्यों की जिह्वा पर खेलने लगी । यहीं से साहित्य सृजन प्रारंभ हुआ ।[1] महाभारत में लिखा है कि इतिहास

---

1. साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवुः । तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मेभ्यः उपदेशेन मंत्रान् सम्प्रादुः । उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे विल्म ग्रहणायेमं ग्रंथं समाम्नासिषु वेदंवेदांगानि च । - निरुक्त 1-6-5

और पुराण वेद का ही उपबृहण (व्याख्या) करनेवाले हैं ।[1] भागवत में कहा है कि महाभारत में इतिहास के बहाने वेदों के रहस्य को ही खोलकर समझाया गया है ।[2] साहित्य की यह विशेषता है कि इससे जनता का मनोरंजन भी होता है तथा शिक्षा भी मिलती है ।

वेदों में कृष्ण लीला संबंधित कई शब्द देखने को मिलते हैं । जैसे - कृष्ण, राधा, गौ, व्रज, रोहिणी, अर्जुन, गोप, अहि आदि । लेकिन माना जाता है कि ये शब्द कृष्ण लीला से संबंधित नहीं है । अर्थात् वेदों के कृष्ण महाभारत और पुराण के कृष्ण नहीं है न राधा पुराणों की गोपी है । गोप न ग्वाला है न रोहिणी बलराम की माता । कृष्ण को रात का प्रतीक माना जाता है और अर्जुन दिन का । राधा धन, अन्न और नक्षत्र का नाम है । गौ किरणें हैं और व्रज किरणों का स्थान है । ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं पदार्थों के नाम वेद के शब्दों को देखकर रखे गये हैं ।[3] वेद के शब्द पहले हैं, ऐतिहासिक व्यक्ति बाद में हुए हैं ।[4]

आर्य जाति को अवतारों की ज़रूरत महसूस हुई तो कृष्ण, विष्णु आदि वेदों के शब्दों को लेकर उनपर काव्योचित कल्पना का

---

1. इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृहयेत् । महाभारत
2. भारतव्यपदेशेन ह्मनाम्यनायार्थश्च दर्शितः । भागवत 1-4-28
3. सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
   वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।। मनुस्मृति 1-21
4. सूर सौरभ - डॉ. मुंशीराम शर्मा - पृ. 84

रंग चढ़ा दिया गया । फिर इसे अवतार कहकर प्रस्तुत किया गया । अपने व्यक्तित्व से मानवता का कल्याण करने के विशेष उद्देश्य से इस प्रकार किया जाता था । इस का अर्थ यह नहीं कि इन सब नामों से संबद्ध इतिहास सब का सब कल्पित है । इनमें केवल अवतार-भाव काल्पनिक है । राधा, कृष्ण; गोप आदि शब्दों का भी यही हाल है । वेदों में विष्णु का अर्थ है सर्वव्यापक ईश्वर । जब अवतार की कल्पना हुई तो ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों में वर्णित विष्णु का कृष्ण रूप में अवतार प्रदर्शित किया गया और नारायण तथा विष्णु को भी एक में मिलाया गया । वसुदेव के पुत्र होने के कारण कृष्ण वासुदेव कहलाते थे । अतः वासुदेव, कृष्ण, नारायण और विष्णु चारों शब्दों का एक में समाहार कर दिया गया । जो कृष्ण महाभारत में वेदवेदांगवेता और राजनीति निपुण योद्धा के रूप में चित्रित किये गये हैं, छान्दोग्य उपनिषद् में जो घोर आंगिरस ऋषि से आध्यात्म विद्या सीखते हैं, वे ही प्रथम सात्वत धर्म के उपदेष्टा एवं गुरु बनते हैं और बाद में भगवान का अवतार ही नहीं साक्षात् ईश्वर कहलाते हैं ।[1] संक्षेप में कहा जा सकता है कि वैदिक प्रतीकवाद, औपनिषदिक तत्ववाद एवं अभीर जातियों के लोकवाद से पुष्ट होकर कृष्ण विष्णु के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हुआ । गोपालतापिनी तथा कृष्ण उपनिषद् जैसे सांप्रदायिक उपनिषदों ने जहाँ कृष्णवार्ता के आधार पर ज्ञानमार्गीय प्रतीकवाद को पुष्ट किया वहाँ पुराणों ने कृष्ण की विविध लीलाओं का लौकिक धरातल पर अवतरण किया ।

पुराणों में गोप लीला का अत्यंत विस्तृत वर्णन मिलता है । वेद के गोप तथा व्रज शब्दों को लेकर गोपलीला का प्रारंभ होता है । सूतों की कल्पना इस गोप लीला का कृष्ण के बाल जीवन से संबंध स्थापित

---

1. सूर सौरभ - डा. मुंशीराम शर्मा - पृ. 85

करती है । आध्यात्म पक्ष में यह लीला मानव की चित्तरंजिनी वृत्ति का नाम है । कृष्ण का गोपियों के साथ रासलीला करना इस वृत्ति का विकास है । यही आगे बढ़कर हरिलीला में परिणित होती है ।

पौराणिक साहित्य में कृष्ण के ईश्वर रूप का और अधिक विकास होता गया । विष्णु पुराण में अतीव पुनीत भावना के साथ गोपलीला का चित्रण मिलता है । हरिवंश पुराण में कृष्ण चरित्र को सर्वप्रथम गोपियों के चरित्र के साथ सम्बद्ध किया गया है । यहाँ रासलीला हल्लीष क्रीडा के नाम से मिलती है । श्रीमद्भागवत पुराण में कृष्ण लीला के संयोजन की संपूर्णता है । ब्रह्मवैवर्त पुराण में गोपलीला का अधिक विकास देखने को मिलता है । वहाँ राधा अपने रासरंगानुरक्त केलिकलित रूप में खुलकर प्रकट होती है । पुरुष और प्रकृति का अनूठा अलौकिक सम्मेलन हो जाता है । इस प्रकार गोपीवल्लभ की कहानी राधाकृष्ण का चरित्र बन कर बालगोपाल की उपासना का रूप धारण करती है और इस बाल गोपाल का संबंध महाभारत के योगिराज श्रीकृष्ण के जीवन के साथ कर दिया जाता है ।

संस्कृत में कृष्ण काव्य

वेदों, उपनिषदों, महाभारत और पुराणों के बाद लौकिक संस्कृत में भी कृष्ण काव्य की रचना होने लगी । लौकिक संस्कृत में पहले पहल पाणिनी ने अपनी "अष्टाध्यायी" में वासुदेव शब्द का प्रयोग किया ।[1] दो सौ ई॰ पूर्व पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में वासुदेव और कंस के वध का उल्लेख किया है ।[2] पहली शताब्दी में अश्वघोष ने अपने बुद्ध चरित में कृष्ण की माधुर्य लीलाओं का संकेत किया है ।

---

1. वासुदेवार्जुनाभ्याम वुन - अष्टाध्यायी 4/2/86

महाकवि कालिदास के मेघदूत एवं रघुवंश महाकाव्य में श्रीकृष्ण की चर्चा की है ।[1] मेघदूत में उन्होंने "गोपवेषस्य विष्णोः[2] कहकर कृष्ण का उल्लेख किया है । रघुवंश में श्रीकृष्ण के साथ वृन्दावन, मथुरा, यमुना, गोवर्धन आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है । कुमारसंभव में भी कृष्ण का उल्लेख मिलता है ।[3]

छठी शताब्दी में काशीनाथ कवि ने यदु वंश की कथा यदुवंशकाव्यम् लिखा । उसी प्रकार एक अज्ञात कवि का लिखा पाणिनी सूत्रोद्धाहरणं नामक काव्य मिलता है, जिसमें पाणिनी के सूत्रों से भागवत कथा पिरोई गई है । उसी शताब्दी में केरल के एक नारायण कवि का लिखा सुभद्राहरण काव्य मिलता है जिसमें श्रीकृष्ण का उल्लेख मिलता है । एक वासुदेव कवि ने वासुदेव विजयम् काव्य लिखा जिसमें कृष्ण कथा का गान किया गया है । गुरु कृष्णलीला शुक और उनके शिष्य दुर्गाप्रसाद यति ने मिलकर बारह सर्गों में श्रीचिह्नकाव्य की रचना की जिसमें कृष्ण कथा का गान किया गया है ।

सातवीं शताब्दी में माघ ने अपने शिशुपाल वध महाकाव्य में कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन किया है । नौवीं शताब्दी में भारत गुरु के शिष्य वासुदेव कवि ने युधिष्ठिरविजय और शौरिकथोदय नामक काव्यों की रचना की । पहले में कृष्ण का स्थान स्थान पर उल्लेख मिलता है तो दूसरा कृष्ण के जीवन पर आधारित है । उसी शताब्दी में आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक में राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं का

---

1. मध्यकालीन धर्म साधना - डॉ॰हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - पृ॰ 118
2. मेघदूत - 1/15
3. कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः - कुमार संभव - 3/13

उल्लेख किया है । ग्यारहवीं शताब्दी में क्षेमेन्द्र कृत दशावतारचरितम् में कृष्ण लीलाओं का आलेख हुआ है ।

बारहवीं शताब्दी में आते आते श्रीकृष्ण संबंधी काव्यों का बहुमुखी विकास हो गया । पुरानी मान्यताओं से हटकर कवि स्वतंत्र भाव से कृष्ण लीला वर्णन करने में प्रवृत्त हो गये । श्रीकृष्ण के परम तत्व के साथ लालित्य और माधुर्य भाव भी विकसित होने लगे । महाकाव्यों के साथ साथ कृष्ण पर आधारित खण्डकाव्य और मुक्तक काव्य भी रचे जाने लगे । बारहवीं शताब्दी में ही जयदेव ने मुक्तक शैली में गीत गोविन्द नामक "खण्ड काव्य" की रचना की जिसमें कृष्ण की माधुर्य लीलाओं का गान किया है । बिल्वमंगल ने "कृष्ण कर्णामृत" की रचना की जिसमें कृष्ण लीला तथा कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम का चित्रण मिलता है । इसमें आत्मसमर्पण का भाव भक्ति भाव से आपूरित है । ईश्वरपुरी रचित "श्रीकृष्णलीलामृत" में माधुर्य भाव की भक्ति का निरूपण है । श्रीधर दास द्वारा संकलित "सदुक्तिकर्णामृत" में कृष्ण की व्रजलीला और राधाकृष्ण प्रेम का चित्रण मिलता है । इसी शताब्दी में कीर्तिनारायण के पुत्र कविराज ने पारिजातापहरण नामक महाकाव्य लिखा । इसमें भागवत के अनुसार कृष्ण द्वारा पारिजातवृक्ष को भूमि पर लाने की कथा वर्णित है । विद्या माधव ने पार्वती-रुक्मिणीया नामक काव्य की रचना की, वेंकटध्वरि ने यादव-राघवीया की रचना की । सोमेश्वर ने राघव-यादवीया की रचना की । विद्याचक्रवर्ती कवि ने रुक्मिणी कल्याण, अश्वराजा ने नरनारायणानन्द और माध्वाचार्य ने कृष्णस्तुति और कृष्णकर्णामृतमहाभाव की रचना की ।

तेरहवीं शताब्दी में वेंकटनाथ ने यादवाभ्युदय की रचना की जिसमें 21 सर्गों में यादवों और श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन है ।

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में बोपदेव ने हरिलीला और वेदान्तदर्शिक ने यादवाभ्युदय नामक काव्यों का प्रणयन किया ।

पन्द्रहवीं शताब्दी में श्रीधर स्वामी ने व्रजबिहारी, रामचन्द्र भट्ट ने गोपलीला, चतुर्भुज ने हरि लीला, पद्मनाभ ने हरिविलास काव्य, श्रीराम ने कंस निधन महाकाव्य की रचना की । केरल के शंकर कवि ने अत्यंत मधुर शैली में श्रीकृष्ण विजय की रचना की । सुकुमार कवि ने श्रीकृष्णविलास काव्य तथा वासुदेव कवि ने गोविन्द चरित नामक काव्य की रचना की । बंगाल के चैतन्य महाप्रभु ने गोपालचरित और संक्षेप भागवतामृत, रूप गोस्वामी ने उद्धवसन्देश, मुकुन्दमुक्तावली तथा लघु भागवतामृत नामक काव्यों की रचना की । सोलहवीं शताब्दी में कृष्ण चैतन्य के शिष्य रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ने कृष्ण भक्ति को शास्त्रीय आधार प्रदान किया । सनातन गोस्वामी ने हरिविलास काव्य तथा जीव गोस्वामी ने गोपालचंपू, माधवमहोत्सव, गोविन्द बिरुदावली आदि काव्यों की रचना की । रूप गोस्वामी कृत उज्जवल नीलमणि और भक्तिरसामृतसिंधु तथा सनातन गोस्वामी कृत षट्संदर्भ ने कृष्णभक्ति को शास्त्रीय आधार मिला । विट्ठल गोस्वामी ने कृष्ण प्रेमामृत, वल्लभाचार्य के भाई रामचन्द्र ने कृष्णकुतूहल तथा गोपाल लीला तथा चतुर्भुज कवि ने हरिचरित काव्य की रचना की ।

सोलहवीं शताब्दी में तंजावूर के राजचूडामणि दीक्षित ने रुक्मिणी कल्याण नामक काव्य रचना की । केरल के नारायण भट्टत्तिरी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ नारायणीयम् की रचना की । बंगाल के कृष्णदास कवि ने गोविन्दलीलामृत तथा कृष्णलीलास्तव की रचना की ।

सत्रहवीं शताब्दी में तंजावूर के भगवन्ता कवि ने दस सर्गों में मुकुन्दविलास की रचना की, जिसमें भागवत के अनुसार कृष्ण लीला का वर्णन है । एक सन्यासी नारायण तीर्थ ने कृष्ण लीला तरंगिणी नामक काव्य रचना की । अठारहवीं शताब्दी में कृष्णमाचार्य ने मदन गोपाल माहात्म्य की रचना की ।

इस प्रकार पुराणकाल से होते हुए कृष्ण काव्य लौकिक संस्कृत काव्यों में अनेक भावभूमियों को छूता हुआ अठारहवीं शताब्दी तक पहुँच गया ।

केरल का संस्कृत साहित्य अत्यंत बृहत् एवं पुष्ट है । संस्कृत साहित्य की सभी विधाएँ जैसे महाकाव्य, संदेश काव्य, स्तोत्र, मुक्तक, नाटक, चंपु इसमें पाई जाती है । सातवीं शताब्दी से यहाँ संस्कृत काव्यों की रचना देखी जाती है । सातवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने अनेक स्तोत्रों का रचना की । ग्यारहवीं शताब्दी में अतुल नामक कवि ने पन्द्रह सर्गों वाला "मूषिक वंश" नामक महाकाव्य की रचना की चौदहवीं शताब्दी में शिवविलास नामक महाकाव्य की रचना की जिसमें "कंटियूर" नामक प्रदेश के शिवमंदिर के माहात्म्य का वर्णन है । इस शाखा में तीन चार यमक काव्य भी पाये जाते है जिनमें कथा पौराणिक है और सभी श्लोकों में एक, दो या कभी कभी चारों पादों में यमक अलंकार की योजना है । जैसे वासुदेव भट्टत्तिरि [ई. सन् आठवीं शताब्दी] के युधिष्ठिर विजय, त्रिपुर दहन, शौरिकथा और "नलोदय" । वासुदेव कवि के देवी चरित, सत्य तप:कथा, अच्युत लीला, शिवोदयम् और श्रीकंठवारियर के रघूदय एवं शौरिचरित इसी श्रेणी में आते हैं । एक वासुदेव भट्टत्तिरी ने वासुदेवविजय का प्रणयन किया जिसमें अक्रूर के व्रजागमन तक की कृष्ण कथा का वर्णन है । कूटल्लूर नारायणन् नंपूतिरी

ने बीस सर्ग वाला सुभद्राहरण काव्य लिखा है । बारहवीं शताब्दी में सुकुमार कवि ने श्रीकृष्णविलास नामक बारह सर्गों वाले महाकाव्य की रचना की । तेरहवीं शताब्दी में श्रीबिल्वमंगल ने अनेक स्तोत्र काव्यों की रचना की । जैसे श्रीकृष्णकर्णामृतम्, अभिनव कौस्तुभमाला, दक्षिणामूर्ति-स्तव, गणपति स्तोत्र, कार्कोटक स्तोत्र, वृन्दावन स्तोत्र, दुर्गास्तुति, बालकृष्ण स्तोत्र आदि । चौदहवीं शताब्दी में दामोदरन चाक्कियार ने शिवविलास की रचना की । पन्द्रहवीं शताब्दी में रामवर्मा ने भारत संग्रह को रचना की । शंकर कवि ने बारह सर्गों में श्रीकृष्ण विजयम् की रचना की । मेल्पत्तूर नारायणन भट्टत्तिरी ने नारायणीयम्, श्रीपाद-सप्तति, गुरुवायुपुरेशस्तोत्र आदि की रचना की ।

भक्तिकाल के पूर्व से ही कृष्ण काव्य बहुत प्रचलित था । प्राकृत अपभ्रंश आदि में कृष्ण काव्य रचे गये । हाल रचित गाहा सतसई में कृष्ण, राधा, गोपी, यशोदा आदि का उल्लेख है । ये लीलाएँ उसी प्रकार वर्णित है जिस प्रकार मध्यकाल में कृष्ण लीलाएँ वर्णित है । यह ग्रंथ श्रृंगार भावना से ओतप्रोत है । प्राकृत में रचित प्राकृत पैंगलम् में भी कृष्ण और राधा का उल्लेख मिलता है । शौरसेनी अपभ्रंश में भी कृष्ण काव्य मिलते हैं । जैन परंपरा के पुष्पदंत ने अपने महापुराण में श्रीकृष्ण के बारे में विशद चित्रण किया है ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य का प्रारंभ मैथिल कोकिल विद्यापति से स्वीकार किया जाता है । विद्यापति ने अपनी पदावली में राधा और कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं तथा उनके प्रेम की विविध अवस्थाओं का चित्रण किया है । उन्होंने जयदेव के गीत-गोविन्द के आधार पर मैथिली में अपनी पदावली की रचना की ।

विद्यापति का कृष्ण संबंधी संसार कामदेव का संसार है। उन्होंने बाह्य जगत् का जितना सुन्दर वर्णन किया है उतना अन्तर्जगत् का नहीं किया। उन के पदों में रूप, अभिसार और मिलन का बहुरंगी चित्रण अवश्य मिलता है। कवि ने लीलाएँ तो राधा कृष्ण की ही प्रस्तुत की है लेकिन ये लीलाएँ सामान्य ऐन्द्रिय आसक्ति से युक्त है। विद्यापति ने राधाकृष्ण के मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है। उन्हें एक दूसरे के प्रति वासना निमग्न दिखाया है।

विद्यापति ने अपनी पदावली में अत्यंत मार्मिक प्रौढ़ एवं सशक्त ढंग से भाव चित्रण किया है। संयोग तथा वियोग चित्रण में हृदय की तरलता और गहराई का सम्मिश्रण देखा जाता है। उनके पदों में व्यक्तिगत अनुभूति, भावोन्माद, सूक्ष्मता आदि रूपों का समन्वय मिलता है।

विद्यापति में रीतिकालीन श्रृंगार परंपरा का आदि रूप दिखाई देता है। उनकी राधा परकीया है तथा कृष्ण उपपति है। अपनी पदावली में उन्होंने काव्य और संगीत का शब्दचित्र प्रस्तुत किया है। ये पद जन भाषा में लिखे जाने के कारण अति प्रसिद्ध हुए हैं। उन्होंने राधा कृष्ण का नख-शिख वर्णन, वय: संधि चित्रण, प्रिय-प्रिया मिलन, अभिसार, मान आदि का सरस तथा मनोरम ढंग से चित्रण किया है। उनका यह वर्णन लौकिक नायक नायिका के प्रणय व्यापारों के जैसा लगता है। इसलिए विद्यापति को भक्त कवि न मानकर श्रृंगार कवि माना जाता है।

विद्यापति का अभिव्यंजना पक्ष पर्याप्त समृद्ध है। भाषा लालित्य तो उनके काव्य को अप्रतिम विशेषता है ही, आलंकारिक

वर्णन में भी वे दक्ष थे । ये पद गीति काव्य के लक्षण से युक्त है । संगीतात्मकता तो इसकी जान है । विद्यापति की पद शैली ने न केवल सामान्य जन मानस को अपितु परवर्ति कृष्ण भक्त कवियों को भी प्रभावित किया है ।

भक्ति आन्दोलन ने हिन्दू समाज को भीतरी दृढ़ता दी और बाहर के संसार से समाज के मन को निकालकर अपने अंदर ही समाए रखा । इस प्रकार हिन्दू समाज को अपने आत्मभाव में ही रमते रहने में भक्ति आन्दोलन ने सहायता की । इस भक्ति आन्दोलन को व्यापक रूप देने में रामानुजाचार्य का महत्वपूर्ण स्थान है । उनके समय में धार्मिक क्षेत्र में उच्छृंखलता कूट कूट कर भरी हुई थी । दार्शनिकों में शंकराचार्य के मायावाद का बोलबाला था । नाथ संप्रदाय मायावाद की आड में योग मार्ग का प्रचार कर रहा था । व्यवहार में विभिन्न प्रकार के मतमतान्तर फैले हुए थे । ऐसे समय में वैष्णव धर्म को एक नये सिरे से संगठित करने में रामानुजाचार्य का बहुत बड़ा हाथ रहा है । उन्होंने शास्त्र विहित सब धर्म संप्रदायों को स्वीकार करके वैष्णव धर्म से उनका संबंध स्थापित किया । उन्होंने शंकर के मायावाद का खंडन किया और भक्ति को उपासना पद्धति में स्थान दिया । जनता ने सहर्ष इस नये मत को स्वीकार किया जहाँ ब्राह्मण के साथ शूद्र को भी भक्ति का मार्ग अपनाने में पूरी छूट थी ।

रामानुज {1017 - 1120 ई} से वल्लभाचार्य {1478 - 1530 ई.} तक भक्ति आन्दोलन का उत्तरोत्तर विकास हो रहा था । बारहवीं शताब्दी में निंबार्काचार्य उत्पन्न हुए जिन्होंने भक्ति के क्षेत्र का विस्तार किया । रामानुज ने लक्ष्मी तथा नारायण को महत्व दिया तो निंबार्क ने कृष्ण तथा राधा को अपना उपास्य माना । यह भक्ति

आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है । निंबार्क ने पहली बार वैष्णव धर्म के अंतर्गत मधुर भाव की उपासना को जन्म दिया । फिर 1237 ई. में मध्वाचार्य आये जिन्होंने नवधा भक्ति पर बल दिया । इन्होंने विष्णु को परमात्मा मानकर उनके राम और कृष्ण अवतारों को उपास्य ठहराया । फिर भी कृष्णोपासना पर अधिक बल दिया । तदनन्तर विष्णु स्वामी ने विष्णु की भक्ति को महाराष्ट्र में प्रतिष्ठित किया ।

ये सभी आचार्य दक्षिण भारत के थे । उत्तर भारत में सार्वजनिक रूप में भक्ति मत को प्रचरित करने का श्रेय रामानन्द को जाता है । रामानन्द ने रामानुज के श्री संप्रदाय को उत्तर में लोकप्रिय बनाया । उन्होंने अपने इष्टदेव राम को जनमानस के अंदर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया । इस कार्य के लिए उन्होंने संस्कृत को त्याग कर जन भाषा में अपना उपदेश दिया । इसके बाद उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ लिया ।

इनके बाद वल्लभाचार्य (1438 - 1530) और चैतन्य महाप्रभु (1542 - 1584) अवतीर्ण हुए । वल्लभाचार्य शास्त्रवेत्ता पंडित थे । उन्होंने शंकर के अद्वैतवाद के विरोध में शुद्धाद्वैत दर्शन प्रतिपादित किया । उन्होंने शंकर के ज्ञानमूलक अद्वैतवाद को शुद्धाद्वैत में प्रेममूलक बनाया । उनकी नई व्याख्या ने ज्ञान मार्ग को भक्ति मार्ग का एक अंग बना दिया । उन्होंने कृष्ण कथा को पौराणिक भावना से निकालकर नये आध्यात्मिक अर्थों के ऊँचे स्थान पर बिठाया । इस प्रकार दर्शन और जीवन के आदर्शों को एक साथ बाँधकर भक्ति को नये भावुक मूल्य दिये ।

चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में भक्ति आन्दोलन का प्रचार किया । उनकी भक्ति भावना ने व्रज के भक्त संप्रदायों को भी प्रभावित किया । उनकी भक्ति भावना में मधुर भाव की प्रधानता थी । वे राधा के महाभाव को आदर्श मानते थे । उनका लक्ष्य था कि भक्त राधा की तन्मयता की अवस्था प्राप्त करें । मुख्यत: उनकी साधना व्यक्तिगत थी, फिर उसे शास्त्रीय रूप दिया गया ।

इस प्रकार इन आचार्यों ने भक्ति को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया तथा अरूप को रूप तथा नाम देकर रूपरेखा हीन ब्रह्म को अपने भाव लोक में ग्राह्य बनाया । समर्थ ऐश्वर्य बोध के कारण मनुष्य ने ईश्वर को अपने से बडा उद्धारक और सर्वव्यापी समझा और उनसे रागात्मक संबंध जोडा जाने लगा । चैतन्यादि ने भगवान का माधुर्य रूप प्रतिष्ठित करके ब्रह्म को मधुर रस रूप ठहराया । इस प्रकार ईश्वर - रूप धर्म संस्थापन, दुष्ट दमन और सज्जनों के संरक्षण से संबंध हुआ और ब्रह्म का मूल मधुर रूप लोकानुरंजन तथा सर्वांगीण आनन्ददायक सिद्ध हुआ ।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल का भारतीय जीवन में विशिष्ट स्थान है । इसी युग में श्रीकृष्ण भक्ति आन्दोलन को क्षिप्रता प्राप्त हुई और वे जन गण के आराध्य देव बने । इस युग में पुराणाश्रित कृष्ण लीलाओं से सम्बद्ध विभिन्न भक्ति संप्रदाय पल्लवित हुए जिनमें वल्लभ संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय और हरिदासी संप्रदाय प्रमुख हैं । इन संप्रदायों की शीतल छाया में कृष्ण लीलापरक साहित्य विपुल मात्रा में सृजित हुआ । विभिन्न संप्रदाय के आचार्यों ने ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक प्रस्थानत्रयी तथा भगवतादि पुराणों को मूल मानकर अपने अपने सिद्धांतों को संस्कृत भाषा में आगे बढाया । प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखकर अपनी दार्शनिक मान्यताओं की स्थापना प्राय: सभी आचार्यों ने

की है । इन भक्त कवियों ने मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम तथा पूर्ण पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण को अपना उपजीव्य बनाया तथा पूर्ण निष्ठा तथा समग्रता से उनकी भक्ति में तल्लीन होकर उन पर काव्य रचना की । परवर्ती कई कवियों ने संप्रदाय के सिद्धांतों के अनुसार काव्य रचना की तो कई कवियों ने स्वतंत्र रूप से काव्य रचना की । इन भक्त कवियों ने जीवन और साहित्य में मानववाद के नवीन मूल्यों की स्थापना की तथा मनुष्य का ध्यान इस लोक से परे सत्य, शिव तथा सुन्दर की ओर लगाया । इस प्रकार प्रचुर मात्रा में श्रीकृष्ण लीला साहित्य रचा गया ।

वल्लभ संप्रदाय

मध्यकालीन भारत में भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित करके भागवत धर्म की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनाये रखने में महाप्रभु वल्लभाचार्य की देन सर्वोपरि है । उन्होंने कर्म मार्ग की अनुपयुक्तता तथा ज्ञान मार्ग की दुरूहता को ध्यान में रखकर भक्ति मार्ग की उपयुक्तता तथा सरलता को प्रधानता देने का प्रयत्न किया । हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्य को आगे बढ़ाने का सबसे अधिक श्रेय वल्लभाचार्य को जाता है ।

वल्लभाचार्य का जन्म सं 1534 वि. में वैशाख कृष्ण एकादशी को मध्यप्रदेश के रायपुर जिले के चंपारण्य में हुआ था । उनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट था । श्री वल्लभाचार्य के चरित्र विकास पर विष्णु स्वामी-संप्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है । उन्होंने विजयनगर की राज्यसभा में शंकर के दार्शनिक सिद्धान्तों, वेदान्त और मायावाद का खण्डन करके भगवान की शुद्ध भक्ति की मर्यादा स्थापित की । इनका दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत नाम से प्रसिद्ध है । शंकराचार्य के अद्वैत से भिन्नता दिखलाने के लिए ही अद्वैत के साथ "शुद्ध"

विशेषण दिया गया है, जिसका अर्थ "माया से असम्बद्ध" है । अतः माया से असंबद्ध ब्रह्म ही एक अद्वैत तत्व है, इसलिए इस मत को शुद्धाद्वैत कहते हैं ।

वल्लभाचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर अणु भाष्य लिखा और श्रीमद् भागवत को उपादेय मानकर उसके महत्व की प्रतिष्ठा की ।[1] वल्लभाचार्य ने माया से अलिप्त ब्रह्म को जगत का कारण माना है ।[2] वल्लभाचार्य का ब्रह्म सर्वगुणसंपन्न है । वे सगुण भी है तथा निर्गुण भी ।[3] शुद्धाद्वैत होने से वह निर्गुण और अनंत गुणों से युक्त होने के कारण वह सगुण है । अनंत शक्तियों से समन्वित होने के कारण और आत्मा में ही रमण करने के कारण वह आत्माराम कहलाता है । वल्लभाचार्य के अनुसार श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है जो सर्वगुण संपन्न होकर पुरुषोत्तम कहलाता है । उनका कृष्ण नित्यलीला करनेवाले हैं और वृन्दावन उनका विहारस्थान है ।

वल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म के तीन रूप हैं । परब्रह्म, अक्षर ब्रह्म तथा क्षर ब्रह्म । उनके अनुसार परब्रह्म प्राकृत गुणों से निर्लिप्त होते हुए भी दिव्य गुणों से युक्त होता है । वह अणोरणीयान् तथा महातोमहीयान् है । वल्लभ के अनुसार श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है तथा उनका शरीर सच्चिदानन्दमय है । अक्षर ब्रह्म, ब्रह्म का आध्यात्मिक स्वरूप है । इसकी अभिव्यक्ति सुख-दुःख आदि का अनुभव करनेवाले जीव के रूप में होती है । क्षर ब्रह्म दृश्यमान जगत का आधिदैविक रूप है । वल्लभाचार्य के अनुसार क्षरब्रह्म प्रकृति है ।

---

1. समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् । शुद्धाद्वैत मार्तण्ड - पृ. 49
2. माया संबंधरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।
   कार्यकारण रूपं हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम् ।।
   शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्लोक 28
3. ब्रह्मसूत्र 3/2/27 पर अणु भाष्य ।

वल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म जीव को अपनी इच्छा के अनुसार पैदा करता है । सत् तथा चित् अंश के प्राकट्य तथा आनन्दांश के तिरोभाव से संपूर्ण जीव समूह संयुक्त है । जीव का निर्माण करने में माया का कोई हाथ नहीं है । माया भगवान की इच्छा मात्र है । जीव के आविर्भाव के मूल में ब्रह्म का चिदंश है । जीव असंख्य हैं । वल्लभाचार्य के अनुसार प्रत्येक जीव के लिए अंतर्यामी की स्थिति अलग अलग है । जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग निकलते हैं उसी प्रकार ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति हुई है।[1] भगवान की कृपा जीवों पर होती है, तब उनमें निक्षिप्त आनंद का अंश पुन: जाग उठता है । मुक्त दशा में जीव आनन्द अंश को प्रकट कर स्वयं सच्चिदानन्द बन जाता है और ब्रह्म से मिल जाता है ।

वल्लभाचार्य के अनुसार जगत् नित्य है लेकिन संसार अनित्य है । भगवान के सत् अंश से उत्पन्न पदार्थ को वल्लभाचार्य जगत मानते हैं । अत: जगत् भी ब्रह्म का अंश है ।

वल्लभाचार्य के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन पुष्टिमार्गीय भक्ति है । "पुष्टि" शब्द का अर्थ है भगवान का अनुग्रह । पुष्टिमार्गीय भक्ति चार प्रकार की है । ये है मर्यादा पुष्टि, प्रवाह पुष्टि, पुष्टि पुष्टि तथा शुद्ध पुष्टि । भगवान के गुणों का ज्ञान प्राप्त करते हुए और सामाजिक विधि निषेध तथा लोक मर्यादा का पालन करते हुए भक्ति करना मर्यादा पुष्टि है । सांसारिक जीवन में रुचि रखते हुए भी भगवान में विशेष प्रेम रखना प्रवाह पुष्टि है । भगवान का ज्ञान प्राप्त

---

1. विस्फुलिंङ्गा इवाग्नेर्हि जडजीवा विनिर्गता: ।
सर्वत: पाणिपादान्तात् सर्वतोऽक्षि शिरोमुखात् ।।
अणु भाष्य - 2, 3/43

कर उन्हीं में मग्न रहना पुष्टि पुष्टि है । आत्म समर्पण कर भगवान के अनुग्रह पर जीवित रहते हुए उनकी लीला, गुणगान आदि में मग्न रहना शुद्ध पुष्टि है ।

पुष्टिमार्ग एकमात्र भगवान के अनुग्रह पर निर्भर है । इस मार्ग में लौकिक तथा अलौकिक, सकाम तथा निष्काम सब साधनों का अभाव ही श्रीकृष्ण की स्वरूप प्राप्ति में साधन है । जो फल है वही साधन है और साधन ही फल है । भगवत् अनुग्रह सर्व सिद्धियों का साधन है ।

पुष्टिमार्गीय भक्ति में सेवा की विशेष प्रधानता है । इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण की सेवा करना ही जीव का परम कर्तव्य है । यह सेवा दो भागों में बाँटी गयी है - नामी सेवा तथा स्वरूप सेवा । स्वरूप सेवा के तीन भेद हैं तनुजा, वित्तजा और मानसी ।[1] इनमें मानसी सेवा को प्रधानता दी गयी है ।[2]

सेवा विधि दो प्रकार की है - नित्यसेवा और वर्षा सेवा । नित्य सेवा में वात्सल्य भक्ति की प्रधानता है । पुष्टिमार्गीय भक्ति में विशुद्ध प्रेमलक्षणा या माधुर्य भक्ति को प्रधानता दी गयी है । पुष्टि मार्ग का उपासक आत्मसमर्पण से भगवान की प्रीति का पात्र बनना ही अपनी उपासना का फल मानता है । यह केवल भगवान के अनुग्रह से ही साध्य है ।

---

1. चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत् सिद्ध्यै तनुवित्तजा ।
   ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् ।। सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक 2
2. कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता ।। - वही, श्लोक ।

पुष्टिमार्ग में मधुर भाव से भक्ति करनेवाले को सखीरूप तथा सख्यभाव से भक्ति करनेवाले को सखा रूप माना जाता है । अष्टछाप के भक्त कवि वल्लभ संप्रदाय में अष्टसखा और अष्टसखियों के अवतार माने जाते हैं । कृष्ण की गोचारण लीला में ये भक्त सखा रूप है और कृष्ण की श्रृंगारिक कुंज लीला में सखी रूप । राधा को पहले पहल इस संप्रदाय में कोई स्थान नहीं था, बाद में राधा को परब्रह्म की आत्मशक्ति माना जाने लगा । श्रीनाथजी के साथ राधा भाव अभिन्न सा हो गया । राधा और कृष्ण दोनों अभिन्न तथा एक रूप हैं ।

वल्लभाचार्य बालकृष्ण के उपासक थे । फिर इस संप्रदाय में भागवत के आधार पर माधुर्य भाव की भक्ति का विकास किया गया । इस संप्रदाय में कृष्ण के रसात्मक रूप को प्रमुख माना गया है । इस संप्रदाय के कृष्ण वृन्दावन में ग्वालबालों के साथ गायें चरानेवाले तथा वृन्दावन में गोपियों के साथ रास रचानेवाले हैं । देवकी नन्दन वासुदेव धर्मरक्षक रूप है तथा यशोदानन्दन तथा नंदनन्दन रस रूप हैं ।

वल्लभाचार्य के अनुसार श्रीकृष्ण अवतार भी हैं अवतारी भी । जो ब्रह्म प्राकृत गुणों से रहित निर्गुण स्वरूप है वही अवतार धारण करके सगुण रूप से लीलाएँ करता है । तभी तो वल्लभसंप्रदायी भक्तों ने भगवान कृष्ण की अनेक लीलाओं का गुण गान किया है । इस संप्रदाय में श्रीमद्भागवत पुराण का महत्वपूर्ण स्थान है । इस संप्रदाय का ज़्यादात्तर साहित्य भागवत पर ही आधारित है ।

वल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण के साथ राधा का भी प्रमुख स्थान है । राधा को कृष्ण की स्वकीया तथा आह्लादिनी शक्ति माना

गया है । इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण के स्वरूपों की पूजा अर्चना होती है तथा कृष्ण की मूर्ति को मूर्ति न मानकर भगवान का साक्षात् स्वरूप माना गया है । श्रीनाथ जी को, जो इस संप्रदाय के परम सेव्य है, साक्षात् पूर्ण पुरूषोत्तम ब्रह्म माना गया है । अन्य स्वरूपों को ये पूर्ण पुरूषोत्तम की विभूति या उनके व्यूहात्मक स्वरूप मानते हैं । प्रधान रूप से इस संप्रदाय में नौ स्वरूपों की सेवा और पूजा होती है । वे है §1§ श्रीनाथ जी §2§ श्री मथुरेश जी §3§ श्री विट्ठलनाथ जी §4§ श्री द्वारिकेश जी §5§ श्री गोकुलनाथ जी §6§ गोकुल चन्द्रमा जी §7§ बालकृष्ण जी §8§ श्री मदन मोहन जी §9§ नवनीत प्रिय जी ।

वल्लभाचार्य के प्रमुख ग्रन्थ है - अणुभाष्य जो ब्रह्मसूत्र का भाष्य है, सुबोधिनी टीका जो भागवत पर लिखी गयी है, मधुराष्टक, जैमिनीसूत्र भाष्य, षोडश ग्रन्थ, तत्वदीप निबंध, त्रिविध लीला नामावली, सेवाफल विवरण, श्रीतिगीता, गायत्री भाष्य, शिक्षा श्लोक, भगवत्पीठिका, पुरूषोत्तम सहस्रनाम, प्रेमामृत न्यासादेश, पत्रावलंबन, यमुनाष्टक, कृष्णाश्रय, सन्यास निर्णय, विवेक धैर्याश्रय, अन्त:करण प्रबोध, सिद्धान्त रहस्य, नवरत्न, चतु:श्लोकी, पुष्टि प्रवाह, मर्यादा भेद, सिद्धान्त मुक्तावली, पंचपद्य, भक्ति वर्धिनी, जल भेद तथा बालबोध ।

माध्व संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक मध्वाचार्य है । इनका जन्म कर्नाटक के उड्डुपि जिले के "बिल्व" नामक गाँव में सं. 1254 को माघ शुक्ला सप्तमी के दिन हुआ । इन्होंने शंकर के मायावाद तथा अद्वैतवाद का खंडन किया । इनका सिद्धान्त द्वैतवाद के नाम से जाना जाता है ।

माध्व मत में विष्णु को प्रधानता दी गयी है । इसमें "भेद" स्वाभाविक तथा नित्य है । जीव ईश्वर से तथा ईश्वर जीव से भिन्न है । जड पदार्थ और ईश्वर दोनों एक दूसरे से भिन्न है । जड पदार्थ और जीव भी एक दूसरे से भिन्न है । एक जीव दूसरे जीव से तथा एक जड दूसरे जड़ पदार्थ से बिलकुल भिन्न है । इस मत के अनुसार जगत सत्य है । उपरोक्त पाँच भेदों से युक्त जगत का प्रवाह भी सत्य है । इसलिए इस जगत को प्रपंच कहते हैं । जीव तब तक प्रपंच से अनजान रहता है तब तक उसको मुक्ति नहीं होती ।

माध्व मत में परमात्मा अनन्त गुणपूर्ण है । उनका प्रत्येक गुण भी अनन्त है । वह नित्य है । परमात्मा सब प्रकार से पूर्ण है । उसके ऐश्वर्य की कोई सीमा नहीं है । वह परम आनन्द है । वह स्वतंत्र है, जीव परतंत्र है । परमात्मा में अनेक रूप ग्रहण करने की शक्ति है । जीव में इस शक्ति का अभाव है । परमात्मा का प्रत्येक रूप सर्वगुणसंपन्न है । उसके मूल तथा अवतरित रूप में कोई भेद नहीं है । सुख-दुःख , विद्या-अविद्या, बन्ध मोक्ष सब उसकी इच्छा पर निर्भर है । इस मत के अनुसार लक्ष्मी परमात्मा से भिन्न चेतन द्रव्य है, जो एकमात्र उसी के अधीन रहती है । वही प्रकृति की अधिष्ठात्री है । इस मत में भगवान कृष्ण को परब्रह्म माना गया है । कृष्ण, सगुण सर्वगुण संपन्न तथा ऐश्वर्यादि से युक्त है । वह स्वतंत्र है । भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले हैं । उन्हीं से ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार है । वे ही जगत् के नियन्ता हैं । परमात्मा के अनुग्रह से ही जीव को ज्ञान मिलता है । फिर भगवान के प्रति अखण्ड प्रेम होता है । भगवान के अनुग्रह तथा प्रेम द्वारा जीव इस संसार से मुक्त हो जाता है ।

माध्व संप्रदाय में दार्शनिक चिंतन से अधिक भक्ति को प्रधानता दी गयी है । मध्वाचार्य ने भक्ति तत्व पर अधिक बल देते हुए प्रस्थानत्रयी से भी अधिक भागवतादि पुराणों का महत्व प्रतिपादित किया है । इस संप्रदाय में राधा का कोई स्थान नहीं है ।

मध्वाचार्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ निम्नलिखित है - ब्रह्मसूत्र भाष्य, अणु भाष्य, अनुव्याख्यान, न्याय विवरण, दशप्रकरण, भागवत तात्पर्य निर्णय, महाभारत तात्पर्य निर्णय, ऋगभाष्य, यमक भारत, नरसिंह नखस्तुति, द्वादशस्तोत्र, कृष्णामृत महारवि, तंत्रसार संग्रह, सदाचार स्मृति, यति प्रणवकल्प और कुन्दुक स्तुति ।

हिन्दी साहित्य में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से माध्व संप्रदाय का प्रभाव नहीं पडा फिर भी माध्व संप्रदाय ने अनेक संप्रदायों को प्रभावित किया है । इस प्रकार हिन्दी साहित्य पर परोक्ष रूप से इस संप्रदाय का असर देखा जा सकता है । चैतन्य संप्रदाय, वल्लभ संप्रदाय आदि माध्व संप्रदाय से प्रभावित हुए हैं ।

निम्बार्क संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक निम्बार्काचार्य थे । उनका समय 1219 वि.सं. के आसपास माना जाता है ।[1] उनका जन्मस्थान आंध्रप्रदेश के हैदराबाद जिले के मुँगीपट्टन के निकट माना जाता है । उनके पिता का नाम जगन्नाथ तथा माता का नाम सरस्वती था ।[2] भविष्य

---

1. आर.जी.भण्डारकर - वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम्स - पृ. 87
2. हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास में पिता का नाम श्री अरुण तथा माता का नाम जयंति कहा गया है - हि.सा.का.बृ.इति. - पृ. 113

पुराण, वामन पुराण, धर्मशास्त्र तथा ज्योतिष एवं तंत्र ग्रन्थों में निम्बार्क का उल्लेख मिलता है । भक्तमाल के अनुसार रात में नीम के पेड़ पर विष्णु के सुदर्शन चक्र का आवाहन करके सूर्य का दर्शन कराकर जैन साधुओं को भोजन कराने के कारण इनका नाम निंबार्क पड़ा ।[1] निम्बार्क को सुदर्शन चक्र का अवतार माना जाता है ।[2]

निम्बार्क संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त द्वैताद्वैत कहलाता है । इस संप्रदाय के अनुसार जीव और ब्रह्म भिन्न भी है अभिन्न भी । ब्रह्म व्यापक है तथा जीव अल्पज्ञ और अण्ड है । ब्रह्म चिदानन्द रूप अद्वैतसप्रदार्थ है । अपने "चिद्" अंश के द्वारा ब्रह्म आनन्द का भोग करता है । इतना होते हुए भी जिस प्रकार तरंग समुद्र से भिन्न नहीं है उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है । ब्रह्म और जीव की अभिन्नता ही द्वैताद्वैत सिद्धांत का मूल तत्व है । एकमात्र वेद प्रमाण से जानने योग्य, सबसे भिन्न और अभिन्न विश्वस्त भगवान ही ईश्वर तत्व है । भगवान स्वयं आनन्दमय है और जीव के आनन्द का कारण भी । वह पाप और पुण्य से परे है । मुमुक्षु लोग इसी ईश्वर का ध्यान करते हैं । जगत् ब्रह्म का परिणाम है । अतः वह सत् है । उनके अनुसार

---

1. निंबादित्य नाम जाते भयौ अभिराम कथा, आयौ एक दण्डी ग्राम,
   न्योतौ करो आये हैं ।
   पाक को अवार भई, संध्या मानी लई जती, रतीहूँ न पाऊँ वेदवचन सुनाए हैं ।
   आँगन में नींब, ता पै आदित दिखायौ वाहि, भोजन करायौ, पाछे
   निशि चिह्न पाए हैं ।
   प्रगट प्रभाव देखि, जान्यौं भक्ति भाव जग, दाँव पाय, नाँव परयो
   हरयौ मन गाए हैं । - प्रियादासकृत भक्तमाल की रसबोधिनी टीका-छ. 28
2. सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाज्ञप्तो जनिष्यति ।
   निम्बादित्य इति ख्यातो धर्मग्लानिं हरिष्यति।। सर्वेश्वर (निंबार्क अंक)
   वर्ष 20 अंक 2-7 - पृ. 12

दृश्यमान जगत और जीव ब्रह्म के अंश मात्र है । ब्रह्म स्वयं जगत् के रूप में व्याप्त है तथा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण भी । इस प्रकार ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है तथा निमित्त कारण भी । इस संप्रदाय के अनुसार जगत् ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित है । जगत् गुणात्मक है तथा ब्रह्म गुणी । जगत् तथा प्रकृति ब्रह्म की अपरा शक्ति का परिणाम है । जीव परा शक्ति का परिणाम है । यही ब्रह्म श्रीकृष्ण है । वे दोषहीन, कल्याण गुण की राशि, व्यूह समूह में अंगी तथा पर है ।[1]

निम्बार्काचार्य ने अंश के साथ अंशी का भेदाभेद संबंध माना है । उन्होंने ब्रह्म और जीव के अंशांशीभाव को इस प्रकार व्यक्त किया है - अंशांशी भावाज्जीव परमात्मनोर्भेदा भेदौ दर्शयति, परमात्मनो जीवांश: ।।[2]

श्री हरिव्यासदेव जी दश श्लोकी के भाष्य में ब्रह्म को अद्वैत बताते हुए कहते हैं कि कृष्ण की शक्ति व्यक्त और अव्यक्त तथा अंश और अंशी रूप से व्याप्त है । इसलिए उसमें द्वैत नहीं है । वह जीव-जगत् से विलक्षण है । इसलिए द्वैत भी है । कृष्ण की शक्ति अचिंत्य तथा अनंत है । वे ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों के आश्रय हैं ।

निम्बार्क संप्रदाय में कृष्ण के चरणारविन्द को छोड़कर मनुष्य की अन्य गति नहीं है ।[3] जिस भाव से भक्त भगवान को उपासना

---

2. वेदान्त परिजात सौरभ - अध्याय 2, पाद 3, सूत्र 42

1. स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेष कल्याण गुणैकराशिम् ।
   व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ।। - दशश्लोकी, श्लोक - 4

3. नान्य गति: कृष्णपादारविन्दात् - निम्बादित्य दशश्लोकी, श्लोक - 8

करता है। भगवान भक्त को उसी भाव से मिलते हैं। इस संप्रदाय में केवल कृष्ण ही उपास्य देव है।[1] निम्बार्क मत में ईश्वर कृपा को बड़ा महत्व दिया गया है। भगवान की भक्ति से ही प्रेम-रूपा भक्ति मिलती है।

निम्बार्क संप्रदाय के अनुसार भक्त पर अनुग्रह करने के लिए भगवान अपने इच्छानुरूप स्वरूप धारण करते हैं। भगवान आनन्दमय हैं। भगवान सभी शक्तियों से संपन्न है तथा सब कुछ कर सकते हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध ये चारों स्वरूप उन्हीं के अंग हैं।

इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण को सर्वेश्वर नाम से पुकारा जाता है। उनकी लीला नित्य विहार है तथा नित्य धाम वृन्दावन है। निम्बार्क संप्रदाय में कृष्ण के युगल स्वरूप की आराधना होती है। राधा को स्वकीया माना गया है। श्रीकृष्ण सदा राधा के साथ विराजते हैं। एक के बिना दूसरे का नाम लेना भी इस संप्रदाय में जघन्य अपराध माना गया है। देखने में दो होने पर भी दोनों ही तत्वतः एक ही हैं। श्रीकृष्ण सर्वेश्वर है तो राधा उनकी सर्वेश्वरी। श्रीकृष्ण आनन्दस्वरूप है तो राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति है। राधा के साथ विहार करते गोपियों से घिरे श्रीकृष्ण को इस संप्रदाय में महत्व दिया गया है। राधा को कृष्ण की वामांगिनी माना गया है। निम्बार्क संप्रदाय में ही सर्वप्रथम राधा को श्रीकृष्ण को "अनुरूप सौभगा" माना गया। राधा और गोपी उनके माधुर्य और प्रेम की अधिष्ठात्री हैं। उनको रमा, लक्ष्मी या भू शक्ति उनके ऐश्वर्य रूप की अधिष्ठात्री है। भगवान मुक्त, गम्य, योगी, कृपालभ्य तथा स्वतंत्र सत्तावान है। हरिव्यासदेव जी

---

1. तस्मात् कृष्ण एव परो देवस्तंध्यायेत् तं रसेत् तं यजेद्। - निम्बादित्य दशश्लोकी - पृ. 36

के अनुसार - "उनका सच्चिदानन्दात्म विग्रह है । व्रजधाम में नित्यस्थित है । व्रज में वे द्विभुज रूप हैं और द्वारावती में चतुर्भुज । वे सर्वज्ञ, सर्व ऐश्वर्य-पूर्ण, सर्वकारणत्व, सर्वशक्तित्व, सौहार्द, मृदुलता, करुणा आदि गुणों के रत्नाकर तथा भक्तवत्सल हैं ।[1]" इस संप्रदाय में श्रीमद्-भागवत् का विशेष महत्व है । भागवत की नवधा भक्ति को यहाँ प्रधानता दी गयी है । कीर्तन पद्धति को इस संप्रदाय में विशेष स्थान प्रदान किया गया है । इस संप्रदाय को प्रमुख भाव लीला कृष्ण और राधा की माधुर्य लीला है । यह संप्रदाय साधना और सिद्धान्त दोनों में भागवत से प्रभावित है । नवधा भक्ति के साथ साथ वैधी तथा प्रेम लक्षणा भक्ति भी यहाँ मान्य है ।

इस संप्रदाय में रसोपासना की प्रधानता है । इसमें उपासना के चार प्रकार माने गये हैं - भृत्य, मित्र, पुत्र और प्रिय भाव । यही रागानुगा भक्ति की उपासना का मूल आधार है । इस संप्रदाय के अनुसार सबसे श्रेष्ठ भक्ति माधुर्य भक्ति है जो श्रीकृष्ण की कृपा से ही संभव है । इस संप्रदाय की कृष्ण लीला में केवल संयोग या वियोग नहीं है बल्कि दोनों मिले जुले हैं । यहाँ निकुंज बिहारी श्री राधाकृष्ण प्रिया-प्रियतम भाव से आराध्य हैं । इस भाव का स्थल इस भूमंडल से परे गोलोक धाम है जिसका दूसरा रूप व्रजमंडल या वृन्दावन है ।

---

1. उपास्यस्य कृष्णस्वामिनो रूपं सच्चिदानन्दविग्रहं
   स्वमहिमसंव्योमपुरशादिप्त व्रजादिनित्यपदस्थितं
   व्रजे द्विजं गोपवेषं द्वारवत्या चतुर्भुजं च
   सार्वज्ञ्यसार्वैश्वर्य सर्व कारणत्वसर्वशक्तित्व सौहार्दमार्दवा-
   कारुणिकत्वादिगुणरत्नाकरं भक्तवत्सलमित्येतत् ।

   - दशश्लोकी - पृ. 28 - हरिव्यासदेव

निम्बार्काचार्य के पाँच प्रमुख ग्रंथ है - वेदांत पारिजात सौरभ, दशश्लोकी, श्रीकृष्ण स्तवराज, मंत्र रहस्य षोडशी तथा प्रपन्न कल्पवल्ली । वेदांत पारिजात सौरभ में आचार्य ने ब्रह्मसूत्र की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की है । दशश्लोकी में सिद्धांत प्रतिपादक दस श्लोकों का संग्रह है, श्रीकृष्णस्तवराज में श्रीकृष्ण की स्तुति है । मंत्र रहस्य षोडशी में मंत्रों की विस्तृत व्याख्या है । इसमें 18 श्लोक हैं जिनके प्रथम 16 श्लोकों में अष्टादशाक्षर गोपाल मंत्र की विस्तृत व्याख्या है । प्रपन्नकल्पवल्ली में गीता, उपनिषद्, रामायण और नारदपंचरात्र आदि के कुछ श्लोक संगृहीत है ।

चैतन्य संप्रदाय

वंगीय वैष्णव भक्ति का मूल स्रोत ब्रह्मवैवर्तपुराण है, जिसमें तन्त्रमत के शक्तिवाद को भागवतधर्म के ईश्वरमार्ग में मिलाकर एक नवीन संप्रदाय, चैतन्य संप्रदाय खडा किया गया । इस संप्रदाय को माध्व संप्रदाय का परिवर्धित रूप माना जाता है । चैतन्य संप्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु ईश्वरभारती और केशवभारती के शिष्य थे जो माध्व संप्रदाय में दीक्षित थे । इनका जन्म बंगाल के नवद्वीप गाँव में सं. 1542 वि. को हुआ था । सन्यास लेकर ये पुरी में रहते थे और जगन्नाथ मन्दिर में कीर्तन किया करते थे । कहते हैं, कृष्ण ने ही राधा का वियोग अनुभव करने के लिए चैतन्य के रूप में अवतार लिया था । वे कृष्ण को साक्षात् सच्चिदानन्द ब्रह्म मानते थे ।

इस संप्रदाय का दार्शनिक सिद्धांत अचिन्त्य भेदाभेद पर आधारित है । इसके अनुसार परम तत्व एक है । ब्रह्म अनादि, अनंत, सार्वभौम तथा सर्वव्यापक है । वह उपासना भेद से अलग अलग

प्रकार से अनुभूत होता है । ब्रह्म में अनेक शक्तियाँ तथा गुण हैं । यह परम ब्रह्म ही श्रीकृष्ण है । श्रीकृष्ण ही विश्व का आदि कारण है । वह स्वतंत्र तथा अद्वितीय है । वह सब वस्तुओं में विद्यमान है । वह अनंत तथा सर्वव्यापक है । वह अनंत होने के कारण उनकी शक्तियाँ भी अनंत हैं । भगवान और उनकी शक्तियों में पार्थक्य करना कठिन है । शक्ति और शक्तिमान में भेद और अभेद स्थापित न कर सकने के कारण से इसे अचिन्त्य भेदाभेद कहा जाता है । रूप गोस्वामी के अनुसार अचिन्त्य अनंत शक्तियों के कारण उस एक ही पुरुषोत्तम में एकत्व और पृथकत्व, अंशत्व और अंशित्व का रहना किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं रहता ।[1]

चैतन्य संप्रदाय में कृष्ण के कैशोर रूप को प्रधानता दी गयी है । इस संप्रदाय के लीला साहित्य में बाल लीलाएँ नगण्य हैं । वात्सल्य भाव का यहाँ अभाव सा है । यहाँ की मुख्य लीला व्रज लीला है । उनका धाम वृन्दावन या गोकुल है । इस संप्रदाय के लोगों को कृष्ण के गोपीजन वल्लभ, हरि, राधा रमण, गोपाल, मोहन, श्याम आदि नाम विशेष प्रिय हैं । व्रज की गोपिकाओं के द्वारा की गयी रमणीय उपासना इस संप्रदाय के साधकों के लिए माननीय प्रामाणिक उपासना है । श्रीमद् भागवत् निर्मल प्रमाण शास्त्र है । प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है ।[2] यही इस मत का सारांश है ।

---

1. एकत्वं च पृथकत्वं च तथांशत्वमुतांशिता ।
   तस्मिन्नेकत्र नायुक्तम् अचिंत्यानन्त शक्तित: ।। लघुभागवतामृत, रूपगोस्वामी
2. आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं,
   रम्या काचिदुपासना व्रजवधू वर्गेण या कल्पिता ।
   शास्त्रं भागवत प्रमाणममलं प्रेमापुमर्थोमहान्
   श्री चैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न पर: ।।
   विश्वनाथ चक्रवर्ती - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृ. 142

इस संप्रदाय के अनुसार भगवान अनंत है और जीव अणु है। वह भगवान की नित्य शक्ति से प्रकट होता है। इसलिए वह नित्य है। ईश्वर जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है। जीव ईश्वरविमुख होने से बंधन में पडता है। ईश्वर-कृपा से जीव की मुक्ति होती है। जीव नित्य भगवान के स्वरूप में लीन भी हो सकता है। प्रकृति नित्य और ब्रह्म की शक्तिरूपा है। प्रकृति ब्रह्म के अधीन है। काल सदा परिवर्तनशील द्रव्य है। प्रलय सृष्टि का निमित्त रूप है। कर्म नश्वर तथा जड है। वह ईश्वर की शक्ति का रूप है। इस संप्रदाय में मुक्ति का अर्थ भगवान की प्रीति का निरंतर अनुभव है। मुक्ति का मुख्य साधन भक्ति है। चैतन्य संप्रदाय में पंचधा भक्ति को प्रश्रय मिला है। इस संप्रदाय के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण की अनंत शक्ति जब प्रकट है तब उसे भगवान कहते हैं, जब उनकी अनन्त शक्ति अप्रकट है, उन्हीं में छिपी रहती है, तब उन्हें ब्रह्म कहते हैं और जब उनकी यह अनन्त शक्ति प्रकट और कुछ अप्रकट होती है तब उन्हें परमात्मा कहते हैं। ब्रह्म विशुद्ध ज्ञान का विषय है, परमात्मा योग का और भगवान भक्ति का। श्रीरूप गोस्वामी ने लघु भागवतामृत ग्रंथ में कहा है - "श्रीकृष्ण में अनन्त गुण हैं, वे असंख्य अप्राकृत गुणशाली और अपरिमित शक्ति से विशिष्ट हैं और पूर्णानन्द घन उनका विग्रह है। जो ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष और अमूर्त कहा गया है वह सूर्य तुल्य, श्रीकृष्ण के प्रकाश तुल्य है।"[1]

इस मत के अनुसार श्रीकृष्ण तीन धामों में सर्वदा रहते हैं।[2] पूर्ण रूप से द्वारिका धाम में, पूर्णतर रूप से मथुरा में तथा

---

1. लघु भागवतामृत - श्लोक 50
2. इति धामत्रये कृष्णो विरहत्येव सर्वदा
   तत्रापि गोकुले तस्य माधुरी सर्वतोधिकः ।। - लघुभागवतामृत - पृ. 254

पूर्णतम रूप से गोकुल, गोलोक अथवा वृन्दावन धाम में । मथुरा-द्वारिका में भगवान श्रीकृष्ण का ऐश्वर्यरूप है तथा गोलोक अथवा व्रज-वृन्दावन में उनका सर्वाधिक माधुर्य रूप है । गोलोक गोकुल की ही विभूति है ।

इस मत के अनुसार जीव ज्ञान मिलने पर मुक्ति पाता है । भक्ति द्वारा जीव वैकुण्ठ तथा गोलोक में जाता है । भक्ति भगवान की कृपा से ही मिलती है । इस संप्रदाय में सत्संग, नाम तथा लीला कीर्तन, व्रजवृन्दावन-वास, कृष्ण मूर्ति की सेवा-पूजा आदि पर बल दिया गया है ।

चैतन्य मत के अनुसार श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं उनका स्वरूप सच्चिदानन्दघन है । इनसे संबंधित संधिनी, संविता और आह्लादिनी तीन प्रकार की शक्तियाँ हैं । राधा इनकी ह्लादिनी शक्ति है । वे कृष्ण को आनन्द प्रदान करती हैं । वे स्वयं प्रेम-स्वरूपिणी है । इस संप्रदाय के अनुसार राधा भाव परकीया भाव है । महाभाव की प्रक्रिया रूप है परकीया भाव कृष्ण रस की प्राप्ति की साधन अवस्था है क्योंकि उसमें भाव उच्छलित रूपवाला रहता है । इसलिए भगवत्प्राप्ति की क्रियाओं में तत्परता तथा उत्सुकता बनी रहती है । इस संप्रदाय में सर्वाधिक प्रिय वस्तु श्रीकृष्ण हैं अतः इनके प्रति होनेवाली रति को कृष्णरति कहते हैं । इसकी परिपूर्णता को भक्ति रस कहते हैं । साधन भक्ति के द्वारा बड़े भाग्य से कृष्ण रति का उदय होता है । इस रति के गाढी होने पर उसे प्रेम कहते हैं । चैतन्य संप्रदाय में चरम प्रेममहत्व दिया गया है ।

इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण और गोपियों की रास लीला का अत्यंत महत्व हैं । उनमें श्रीकृष्ण-सुख संपादन ही प्रधान है ।

श्रीकृष्ण की भावमयी गोकुल लीला पाँच भावों से संबंधित है - शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य । इस संप्रदाय में कृष्ण का रसात्मक रूप अधिक वर्णित है ।

हरिदासी संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास थे । इनका जन्म सं. 1537 को हुआ था । इस संप्रदाय में सखी भाव से उपासना की जाती है । इसलिए इस संप्रदाय को सखी संप्रदाय भी कहा जाता है । स्वामी हरिदासजी अत्यंत रसिक और भावुक भक्त थे । उन्हें अनन्य सखी ललिता का अवतार माना जाता है । उन्होंने वृन्दावन में सखी भाव की उपासना का विधान किया जिसमें रसोपासना की प्रधानता है ।

रसोपासना प्रधान संप्रदाय होने के नाते इस संप्रदाय का कोई दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है । इस संप्रदाय में संगीत की प्रधानता है । इन्होंने वृन्दावन में टट्टी संस्थान की स्थापना की जिसमें आठ आचार्य हुए । यद्यपि दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है फिर भी साधारण सिद्धान्तों का कथन 'अष्टदश सिद्धांत' में किया है । अपने अठारह पदों में उन्होंने हरि को स्वतंत्र तथा जीव को परतंत्र माना है । जीव को हरि की आराधना करनी चाहिए । जीव स्वभाव से चपल है । हरि का नाम लेके वह संसार सागर पार कर सकता है । ईश्वरीय भक्ति शाश्वत है परन्तु संसार का प्रेम क्षणभंगुर है । मृत्यु हर व्यक्ति का अंत है । जगत स्वप्नवत् है । सच्चा सखा बिहारी जी हैं ।

इस संप्रदाय के अनुसार नित्य बिहारी की एक कलामात्र से प्रथम पुरुष उत्पन्न होता है । उसके अंश से माया उत्पन्न होती है । उससे महतत्व की उत्पत्ति होती है । महतत्व से अहंकार तथा इससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप धारण करते हैं । इन सब से जगत् का उद्भव, पालन वा संहार होता है । इन सब का बीज नित्य बिहारी हैं ।

इस संप्रदाय में परात्पर, रस स्वरूप नित्य किशोर, नित्य वृन्दावन बिहारी श्रीकृष्ण आराध्य हैं । कृष्ण, लीला बिहारी होने के कारण कृष्ण को कृष्ण नाम से न पुकारकर लीला से संबंधी नामों से पुकारा जाता है । इस संप्रदाय में कृष्ण के परब्रह्म, लीलावतारी, दुष्टदलन, भक्तत्राता आदि रूपों को मान्यता दी गयी है ।

स्वामी हरिदास जी के उपास्य परात्पर रस स्वरूप नित्यबिहारी श्रीकृष्ण के भी अवतारी हैं । उनके बिहारी जी को वेद, तत्व और विचार से भी पाया नहीं जा सकता । हरिदास जी युगल को काम केलि के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के प्रेम प्रदर्शन को महत्व नहीं देते । सर्वदा नवयौवन से उन्मत्त किशोर किशोरी एक दूसरे के प्रेम में आबद्ध हैं । इस संप्रदाय में गोपियाँ नहीं हैं केवल सहचारियाँ हैं । सखी नित्य बिहारी परात्पर प्रेम का एक स्वरूप है । यह प्रेम परात्पर प्रेम है । नित्य तत्व है । सखी भी नित्य है । इस नित्य आनन्द की उपासना भी नित्य है ।

इस संप्रदाय में नित्य बिहारी का महत्व ब्रह्म से भी अधिक है क्योंकि इन भक्तों की दृष्टि में ब्रह्म नित्य बिहारी की आभा मात्र है । कृष्ण का कभी जन्म ही नहीं हुआ । मथुरा और

द्वारका से नित्य विहारी का कोई वास्ता नहीं है । रसोपासना वाले ऐश्वर्य रूप के प्रति आकर्षित नहीं होते । वे वृन्दावन में माधुर्य भाव में ही दिन रात डूबे रहते हैं । अतः ये निकुंज बिहारी नित्य किशोर वयवाले हैं । वे आदि काल में भी थे, अब भी हैं और आगे भी इसी प्रकार नित्य विहार करके भक्तों को रस विभोर करते रहेंगे ।

इस संप्रदाय में कभी भी अकेले बिहारी जी का ध्यान नहीं किया जाता । इसलिए प्रिय और प्रिया का मिला हुआ रूप और शोभा वर्णित रहती है । इस संप्रदाय में राधा और कृष्ण श्याम और श्यामा हैं । वृन्दावन में श्यामा का राज्य है । नित्य विहारिणी राधा प्रेम तत्व है । वे प्रेम, रस, सौन्दर्य, नववय, रूप, लावण्य आदि की सीमा है । सखियाँ तत्सुख सुखित्व भाव से राधा और कृष्ण के परस्पर सुख से सुखी हैं । राधा और कृष्ण भी इन्हीं सखियों को सुख प्रदान करने के हेतु लीलाएँ करते हैं । इस संप्रदाय में राधा न स्वकीया है न परकीया है । वह दोनों भावों से रहित वृन्दावन में नित्य निकुंजेश्वरी है । इस संप्रदाय में दिव्य युगल विग्रह की आराधना होती है । राधा और कृष्ण एक दूसरे में समाकर एक हो गये हैं ।

स्वामी हरिदास जी की दो प्रमुख रचनाएँ हैं - साधारण सिद्धान्त के पद तथा केलिमाल । पहले ग्रंथ में भक्ति के साधारण सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है । केलिमाल में राधाकृष्ण की रसमयी रासलीला का वर्णन है ।

राधावल्लभ संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी हितहरिवंश हैं । इनका जन्म सं. 1559 वि. में व्रज के बाद ग्राम में हुआ था । वैशाख

शुक्ला एकादशी को हुआ था । हितहरिवंश के गुरु के रूप में श्री राधा को स्वीकार करते हैं । श्री नागरीदास जी ने अपने अष्टक में, श्री चाचा वृन्दावनदास जी ने "रसिक - अनन्य -सार" में श्री सेवकजी ने तथा ध्रुवदास ने श्री राधा को गोस्वामी हितहरिवंश का गुरु माना है ।

राधावल्लभ संप्रदाय में किसी वाद का प्रतिपादन नहीं है । यह संप्रदाय केवल प्रेमतत्व पर चलता है । अत: प्रेमलक्षणा भक्ति के उपर्युक्त उपकरणों का ही वर्णन आचार्यों ने किया है । इस संप्रदाय में भक्ति सिद्धांत का मूलाधार प्रेम या हिततत्व है । माधुर्य भक्ति को इस संप्रदाय में चरम परिणति माना गया है । रस ही जीवात्मा का परम ध्येय है । "इस संप्रदाय में न तो दार्शनिक जटिलता है और न भक्ति सिद्धांत का शास्त्रीय विवेचन ही । हृदय की रसस्निग्ध भावनाओं की सहज स्वीकृति और सरस अभिव्यक्ति ही राधावल्लभीय भक्ति सिद्धांत की नींव और रसोपासना का आधार है ।"[1]

इस संप्रदाय के श्रीकृष्ण सगुण निर्गुण से परे, अजन्मा, अलेखा परब्रह्म है । राधा कृष्ण अद्वय हैं । वे दो होकर भी एक ही को व्यक्त करते हैं । हितहरिवंश जी ने राधासुधानिधि में कहा है -

ईशानी व शची महासुखतनुः शक्तिः स्वतंत्रा परा ।
श्रीवृन्दावननाथ पट्टमहिषी राधैव सेव्या मम ।।

राधा इस संप्रदाय की प्राण संजीवनी है । वह रस की अधिष्ठात्री एवं प्रेममूर्ति है । इस संप्रदाय में राधा के बिना कृष्ण की आराधना का निषेध है । राधा, कृष्ण की आराध्या है, इष्टा है, स्वकीया भी है, परकीया भी । इसमें राधा को कृष्ण की अपेक्षा

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - पृ. 165
2. श्री हितहरिवंश - राधासुधानिधि श्लोक - 78

अधिक महत्व दिया गया है । वृन्दावन विहारी कृष्ण रसिक किशोर रूप में नित्य विहार करते हैं । उनकी पराप्रकृति श्रीराधा हैं जो उनकी आह्लादिनी शक्ति है । सारा जगत इन्हीं का प्रतिबिंब है । श्रीकृष्ण राधावल्लभ होकर रसराज श्रृंगार का विस्तार करते हैं । युगल स्वरूप में राधा का प्राधान्य है, श्रीकृष्ण उनके अनुसंग से पूजे जाते हैं । राधा का वल्लभ है इसलिए राधा वल्लभ लाल कहलाते हैं । वे रसेश अथवा रसात्मा हैं । इस संप्रदाय में रास लीला अंतरंग दृष्टि से जीव और ब्रह्म का अद्भुत संयोग है ।

इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण का परब्रह्म स्वरूप श्रीमद् भागवत के अनुसार ही है । इस संप्रदाय के कृष्ण अखिलेश्वर हैं, आदि, अन्त और मध्य से परे हैं । वह दुर्लभ है, अकथनीय है परन्तु भक्त के वश में है । इस संप्रदाय में नित्य विहार की मान्यता है जिसमें नित्य किशोरी राधा, नित्य किशोर कृष्ण, नित्य किशोर सहचरी और नित्य धाम वृन्दावन की आवश्यकता है । राधा कृष्ण का क्रीडा विहार सहचरी सखियों द्वारा ही संपन्न होता है । यह तत्सुखी भाव की उपासना इस संप्रदाय की विलक्षणता है ।

राधावल्लभ संप्रदाय के कृष्ण अवतारी हैं । राधा और कृष्ण महारस के विस्तार के लिए आते हैं । यह महारस भाव की पराकाष्ठा है । इस संप्रदाय के कृष्ण नित्य विहारी हैं । वे अपने संपूर्ण परिकर के साथ अवतार लेते हैं । जब वे लीलामय होकर अवतार की इच्छा करते हैं तो वे व्रज मंडल में पधारते हैं । संपूर्ण श्रुतियाँ भी प्रकट होती हैं ।

इस संप्रदाय में नित्य किशोर की उपासना का ही विधान है । यह लीला लौकिक नहीं अलौकिक है । इस संप्रदाय में रास का अत्यधिक महत्व है । नित्य विहार लीला का यह एक महत्वपूर्ण अंग है । यह लीला श्रीकृष्ण प्रेम तत्व के विकास के लिए करते हैं । वर्तमान वृन्दावन में यह संप्रदाय अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

श्री शुक संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक श्री श्याम चरणदास जी थे । वे सखी भाव से कृष्ण की आराधना करते थे । इस संप्रदाय में कृष्ण को लाल के नाम से जाना जाता है । यहाँ कृष्ण के युगल किशोर रूप की प्रधानता है । वे वृन्दावन में नित्य विहार करते हैं । वृन्दावन को इस संप्रदाय में अमरलोक कहा गया है । कृष्ण राधा के साथ नित्य विहार करते हैं । इस संप्रदायमेंसखी भाव की उपासना को प्रधानता दी गयी है ।

इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण के रसात्मक स्वरूप को महान माना गया है । इसमें राधा कृष्ण का प्रेम ही सर्वोपरि है । इस संप्रदाय में निर्गुण तथा सगुण दोनों ब्रह्म मान्य हैं । यहाँ श्रीमद्भागवत महापुराण विशेष रूप से मान्य है ।

प्राणनाथी संप्रदाय

इस संप्रदाय के प्रवर्तक प्राणनाथ जी थे । इस संप्रदाय का मुख्य आधार ग्रन्थ भागवत पुराण है । इस संप्रदाय के अनुसार राधा और कृष्ण नित्य लीला करते हैं । यमुना पार संपूर्ण स्थल परब्रह्म

इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण का रसात्मक रूप मान्य है । वे रस स्वरूप हैं नित्य विहारी हैं । वृन्दावन धाम में चित्रकूत चक्र के ऊपर युगल विहारी विराजमान हैं । राधा और कृष्ण एक ही स्वरूप हैं । केवल लीला के लिए दो हैं । किशोर की लीलाओं का सुख सखियों को प्राप्त होता है ।

प्राणनाथी संप्रदाय में श्रीकृष्ण को "राज" के नाम से पुकारा जाता है । इनका रूप युगल किशोर का है जो वृन्दावन में नित्य लीला करते हैं । वैकुण्ठ, गोलोक और वृन्दावन के भेद से कृष्ण का स्वरूप तीन प्रकार का कहा गया है । प्राणनाथ जी ने श्रीकृष्ण लीला के व्यावहारिकी, प्रतिभासिकी, वास्तवी तीन भेद माने, जो क्रमशः श्रेष्ठ हैं । नित्य व्रज लीला व्यावहारिकी है, नित्य रास लीला प्रतिभासिकी तथा दिव्य ब्रह्मपुर लीला वास्तवी लीला है ।

इस संप्रदाय के अनुसार श्रीकृष्ण वैकुण्ठ निवासी विष्णु का अवतार हैं । वसुदेव और देवकी ने जिस चतुर्भुज विष्णु से पुत्र होने का वरदान पाया था, उनके यहाँ उत्पन्न होकर वे दो भुजधारी कृष्ण के रूप में परिणत हो गये । उसी रूप उन्हें व्रज लीला करनी थी । कंस गोलोक का सखा था जो शाप के कारण असुर बना । उसका उद्धार करने के लिए गोलोकवासी श्रीकृष्ण को आना था । यह कृष्ण का दूसरा रूप है । इन्हीं गोलोकवासी श्रीकृष्ण के अन्दर परम धामवासी पूर्ण ब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण ने प्रवेश किया । उसीसे उन्होंने रास लीला की थी । भगवान की यह रास लीला पूर्ण परब्रह्म की रासलीला थी फिर सात दिन तक गोलोकवासी श्रीकृष्ण की शक्ति व्रज में रही और उसी शक्ति से उन्होंने कंसादि का वध किया । फिर यह शक्ति निकलकर व्रज की गोपियों में प्रविष्ट हो गयी । द्वारका की समस्त लीलाएँ कृष्ण के विष्णु रूप से संपन्न हुई ।

प्राणनाथ जी ने श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं में एक तारतम्य माना है जिसमें वृन्दावन लीला को सर्वोपरि स्थान दिया है । पूर्ण परब्रह्म श्रीकृष्ण इस संप्रदाय के इष्ट हैं । इस संप्रदाय को धामी संप्रदाय, निजानन्दीय श्रीकृष्ण प्रणामी संप्रदाय तथा मिहिर राज पंथी संप्रदाय भी कहते हैं ।

संप्रदाय के अंतर्गत आनेवाले भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवि

मनुष्य पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए अपने प्रारंभिक काल से ही प्रयत्नशील रहा है । वह निरतिशय आनन्द की चरम परिणति के लिए हमेशा उत्सुक रहा है । इसी भव्य भाव को उपनिषदों ने आनन्द की उच्च दशा परमानन्द कहा है । इस परमानन्द की प्राप्ति ही मानव जीवन का लक्ष्य है । भगवत् लीला इस आनन्दांश की खोज में साधक को आधार प्रस्तुत करती है । इसलिए भक्त कवियों ने भगवान की लीला का प्रचुर मात्रा वर्णन किया है ।

विभिन्न वैष्णव संप्रदायों ने अनेक भक्तों को अपनी ओर आकर्षित किया । वल्लभ संप्रदाय ने अनेक भक्तों को आकृष्ट कर अपने संप्रदाय में दीक्षित किया । महात्मा सूरदास और नन्ददास इनमें प्रमुख हैं । श्री भट्ट तथा हरिव्यास देव निंबार्क संप्रदाय के प्रमुख कवि हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण और राधा की लीलाओं का सरस ढंग से वर्णन किया है । स्वामी हरिदास सखी संप्रदाय के तथा हितहरिवंश राधावल्लभ संप्रदाय के प्रमुख कवि रहे हैं ।

सूरदास

वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप के कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है । वे जिस काल में जन्मे थे, उस काल की

सभ्यता के अनुसार अस्मिता की पहचान एक प्रकार से नैतिक अपराध माना जाता था । भारत में संस्कृत काल से लेकर यही परंपरा चली आ रही थी । उस समय मनुष्य अपने पंच भौतिक शरीर की नश्वरता के बारे में जानते थे । इसीलिए ईश्वर की परम सत्ता के महत्व को मानकर उन्हीं को हर कार्य का श्रेय देते थे । लेकिन आज पाश्चात्य चिन्तन दृष्टि तथा भौतिकवाद के नवोन्मेष के कारण मनुष्य आस्थावादी से तर्कवादी बन गया है । आज के चिन्तन में अस्मिता का जयघोष अधिक प्रखर है ।

सूरदास का जीवन परिचय शुरू से ही विवादग्रस्त विषय रहा है । सूरदास का समय क्या था, कहाँ जन्मे थे, उनके माता पिता कौन थे, वे जन्मांध थे या नहीं इन सब बातों में मतभेद हैं ।

रामचन्द्र शुक्ल, मिश्र बन्धु आदि के अनुसार सूरदास का जन्म वि.सं. 1540 को हुआ था ।[1] व्रजेश्वर शर्मा के अनुसार उनका जन्म सं. 1535 को हुआ था ।[2] डॉ. रामकुमार वर्मा[3] के अनुसार सूर का जन्म 1540 सं. को हुआ था तथा डॉ. नन्द दुलारे वाजपेयी इस बात को मानते थे कि सूर सं. 1535 को जन्मे थे ।[4] हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार सूर का जन्म संवत् 1535 ठहरता है ।[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि ज़्यादात्तर विद्वान सूर का जन्म 1535 सं. को हुआ मानते हैं । ज़्यादात्तर विद्वान इस बात को मानते हैं कि सूरदास

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 148
   मिश्रबंधु विनोद - मिश्र बंधु - पृ. 107
2. सूरदास : जीवन और काव्य का अध्ययन - पृ. 3
3. हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास - रामकुमार वर्मा - पृ. 523
4. महाकवि सूरदास - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ. 88
5. हिन्दी साहित्य कोश - भाग-2 - पृ. 38

"सीही" ग्राम में जन्मे थे । कुछ लोग मानते हैं कि सूर ने अपने जीवन का कुछ समय गऊघाट पर व्यतीत किया था ।[1] वे सारस्वत ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे । इस बात पर अब भी मतैक्य नहीं है कि वे जन्मान्ध थे या नहीं । ऐसा माना जाता है कि वे दरिद्र पंडित रामदास सारस्वत के पुत्र थे ।[2] बाल्यावस्था में ही सूर घर से विरक्त होकर चल दिये थे । वे सीही से कुछ दूर एक गाँव में तालाब के किनारे पीपल वृक्ष की छाया में रहते थे । वहाँ आसपास के लोग इन्हें बहुत प्यार करते थे और इनके खाने पीने की व्यवस्था भी करते थे । सूर अपने पास आने जानेवालों को शकुन बतलाया करते थे और उनकी बातें सत्य होती थीं । इससे सूर अत्यंत प्रसिद्ध हो गये । उनकी ख्याति सुनकर दूर देर से लोग अपने भविष्य के विषय में जानने के लिए, इनके पास अक्सर आया करते थे ।

यहीं पर सूर ने गाने का अभ्यास किया । इनका कंठ बहुत मधुर था इसलिए गाना सुनने के लिए बहुत सारे लोग इकट्ठा हो जाते थे । लोग उन्हें "स्वामीजी" कहकर पुकारते थे और बहुत से उपहार भी लाते थे । इस प्रकार अठारह वर्ष की आयु तक सूर वहीं रहे ।

एक दिन सूर को लगा कि वे माया में फँसते जा रहे थे । वे भगवान की भक्ति के लिए घर से निकले थे परन्तु माया ने उन्हें घेर लिया । उन्होंने तुरंत वह स्थान छोड़ने का संकल्प किया ।

---

1. सूरदास गऊघाट पर रहते थे वहाँ से महाप्रभु वल्लभाचार्य के द्वारा वे गोवर्धन ले जाए गए, जहाँ रहकर वे आजन्म श्रीनाथ जी के कीर्तन के पद रचते और गाते रहे ।
   सूरदास - जीवन और काव्य का अध्ययन - व्रजेश्वर वर्मा - पृ. 12
2. सूर साहित्य में नाट्य तत्त्व - डॉ. सूर्यकान्त अजमेरा - पृ. 24

वहाँ से सूर मथुरा चले गये । फिर वहाँ से गऊघाट पहुँचे जो यमुना के किनारे बसा था । वहाँ एकांत में रहने लगे । यहीं पर उनकी भेंट वल्लभाचार्य से हुई ।

सूरदास का काव्य उनकी शिक्षा, उनका अनुभव, लौकिक विषयों का सूक्ष्म ज्ञान तथा आध्यात्मिक चिंतन का प्रत्यक्ष प्रमाण है । उनको काव्य और संगीत का अप्रतिम ज्ञान था ।

वे उच्चकोटि के भक्त थे । वल्लभाचार्य के मिलने से पहले ही वे विरक्त होकर भगवत् भजन में तल्लीन रहते थे । माना जाता है कि उस समय वे बत्तीस वर्ष के थे । हरिराय जी के चौरासी वैष्णवन को वार्ता के अनुसार सूरदास स्वयं पद बनाकर गाया करते थे । वल्लभाचार्य से भेंट होने के पहले वे विनय के पद गाते थे । सूर ने किस प्रकार गाना और पद रचना सीखी इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता । कदाचित् उनमें स्वाभाविक प्रतिभा थी और साधु संगति से उन्होंने ज्ञान पाया और किसी गुणी भक्त से गान की विद्या सीखी होगी ।[1]

महात्मा वल्लभाचार्य ने सूरदास को पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया था । कृष्ण की प्रेम-भक्ति में दीक्षित होकर, भगवत्लीला के गान की प्रेरणा प्राप्त करने के बाद, सूरदास की काव्य और संगीत की समस्त शक्तियाँ उभर आई और फिर उन्होंने जीवन पर्यंत श्रीकृष्ण के परम मनोहर रूप और लीला का गुण गान करने में अपनी वाणी का शृंगार किया ।[2] वार्ता साहित्य के अनुसार वल्लभाचार्य ने सूरदास को

---

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - डॉ. दीनदयाल गुप्त - पृ. 204
2. सूरदास जीवन और काव्य का अध्ययन - व्रजेश्वर वर्मा - पृ. 15

श्रीमद्भागवत की कथा सुनाई । इसके बाद सूर ने संप्रदाय के सिद्धांतों के अनुरूप भागवत की कथा को पदों में प्रस्तुत किया । फिर वल्लभाचार्य ने सूर को श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन सेवा में लगा दिया ।

वल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त राधावल्लभ संप्रदाय और सखी संप्रदाय भी उस समय अति प्रसिद्ध थे । उनके द्वारा काव्य और संगीत का व्रज में उन्नति हो रही थी । इनका असर भी सूरदास पर अवश्य रहा होगा । सूरदास के समय अकबर का शासन था । वातावरण शान्त था और सांस्कृतिक उन्नति का समय था । इस परिस्थिति ने उनकी काव्य रचना पर प्रभाव डाला होगा तथा उनके अनुभव और ज्ञान को बढ़ाया होगा ।[1]

सूर को गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के संपर्क में रहने का अवसर मिला था । वे अत्यंत आदर से गोस्वामी को देखते थे । गोस्वामी भी सूर को पूज्य भाव से देखते थे इसीलिए उन्हें "पुष्टिमार्ग का जहाज़" कहा करते थे ।

सूरदास अत्यंत भावुक कवि थे । आपने अपने काव्य में एक ही भाव को अनेक रूप दिये हैं । एक से बढ़कर एक में नवीनता का प्रसार किया है । उन्होंने भावुकता और कल्पना के सहारे बहुत बड़े साहित्य की रचना की । हिन्दी कृष्ण काव्य में सूर से पहले जो कुछ था वह बुद्बुद मात्र था, तरंग मात्र था, उन्होंने कृष्ण लीला का सागर उपस्थित किया जिसकी तरंग भंगिमाओं की गणना ही असंभव है ।[2] सूर के व्यक्तित्व में भावना और कल्पना के अतिरिक्त निर्भीकता

---

1. सूरदास : जीवन और काव्य का अध्ययन - पृ. 15
2. सूरसमीक्षा - डॉ. रामरतन भटनागर - पृ. 20

के भी दर्शन होते हैं । उन्होंने अकबर के यश गाने की फरमाइश को ठुकराकर भगवान की भक्ति का गान किया । इससे उन्होंने इस बात की ओर उँगली उठाई कि जो व्यक्ति भगवान का भक्त है वह मनुष्य की प्रशंसा नहीं कर सकता । उनके व्यक्तित्व की एक और अंग उनका वाग्वैदग्ध है । उनमें जितनी सहृदयता और भावुकता है, प्रायः उतनी ही और वाग्विदग्धता भी है ।[1] उनका भ्रमर गीत इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । उनका व्यक्तित्व बालकों की तरह सरल है और उनमें हास्य व्यंग्य के स्फुरण की अलौकिक क्षमता है । उनके पदों में मौलिकता है । उनके व्यक्तित्व में दीनता, गर्व, भक्ति, वैराग्य, हास्य और गंभीरता, सरसता और वैदग्ध का ऐसा सन्तुलन है कि हृदय मुग्ध हो जाता है ।[2]

सूर के देहावसान के बारे में ऐसा कहा जाता है कि एक दिन अंतिम समय समीप जानकर सूर श्रीनाथ जी के मंदिर में अधिक नहीं ठहरे । मंगल आरती का दर्शन कर पारसौली लौट आये । वहाँ जाकर श्रीनाथजी की ध्वजा को नमस्कार किया और मन में श्रीनाथ जी का ध्यान करके चबूतरे पर जाकर लेट गये । जब विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथजी के कीर्तन में सूरदास को नहीं देखा तो वे शंकित हुए । फिर उन्हें पता चला कि सूर मंगल आरती के दर्शन करके पारसोली चले गये । उसी समय कुछ सेवकों ने आकर कहा कि सूरदास अचेत पड़े हैं । गोस्वामी ने यह सुनकर सेवकों से कहा "पुष्टिमार्ग का जहाज़ जाता है, जिसे जो कुछ लेना हो ले लो ।"[3] लगभग सं. 1640 के आसपास पारसोली में सूरदास का देहांत हो गया ।

---

1. भ्रमरगीतसार - शुक्ल - पृ. 15
2. सूर समीक्षा - डॉ. रामरतन भटनागर - पृ. 51
3. सूरदास : जीवन और काव्य का अध्ययन - व्रजेश्वर वर्मा - पृ. 30

सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी सूरदास की प्रमुख रचनाएँ हैं ।

नंददास

सूरदास के बाद अष्टछाप में नंददास का स्थान प्रमुख है । नन्ददास बहुमुखी प्रतिभा के भक्त कवि थे । अन्य भक्त कवियों की तरह इनके जीवनवृत्त के विषय में भी बहुत मतभेद है । ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म सन् 1533 को सोरों में रामपुर गाँव में हुआ था ।[1] ये ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे । इन्हें गोस्वामी विट्ठलनाथ का शिष्य माना जाता है । सोरों से उपलब्ध सामग्री के अनुसार उनके पिता का नाम जीवनराम था और चाचा का आत्माराम । इन्हीं आत्माराम के पुत्र तुलसीदास थे । तुलसीदास और नन्ददास ने शैशव में सोरों में रहकर ही नृसिंह पंडित से संस्कृत भाषा का ज्ञान अर्जित किया था ।[2] ऐसी मान्यता है कि तुलसी के साथ नन्ददास भी काशी ले गये थे और वहाँ अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया । काशी से एक यात्री दल के साथ द्वारका गये परन्तु मार्ग में भटककर [illegible] पर अनुरक्त होकर गोकुल पहुँचे । गोकुल में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से उनकी भेंट हुई और वहीं पुष्टिमार्ग की दीक्षा ग्रहण की । वहाँ उनके जीवन में नया मोड आ गया । वे कृष्ण भजन में ही समय व्यतीत करने लगे । उन्हीं दिनों वे गोवर्धन में सूर के संपर्क में आकर उनका शास्त्र मोह भंग हो गया । कहते हैं कि सूरदास के आग्रह से ही वे पुनः अपने गाँव रामपुर गये थे और कमला नामक कन्या से विवाह कर गृहस्थ के रूप में जीवन व्यतीत किया था ।[3] सन् 1583 ई. में उनकी मृत्यु हो गयी ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र - पृ. 208
2. वही - पृ. 208

नन्ददास के लगभग पन्द्रह ग्रंथ मिलते हैं । वे हैं - अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम बारहखड़ी, श्यामसगाई, सुदामाचरित, रुक्मिणी मंगल, भँवरगीत, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, दशमस्कंध भाषा, गोवर्धन लीला, नन्ददास पदावली । अनेकार्थ मंजरी तथा मानमंजरी कोश ग्रंथ हैं । रसमंजरी तथा विरहमंजरी नायिका भेद विषयक ग्रंथ हैं । रूप मंजरी भक्ति प्रधान प्रेम कथानक काव्य है । भँवर गीत विरह काव्य है । सुदामा चरित की कथा श्रीमद् भागवत से गृहीत है । श्याम सगाई कृष्ण लीला संबंधी ग्रंथ है । पदावली में कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण है ।

रासपंचाध्यायी नन्ददास की श्रेष्ठ कृतियों में एक है । इसमें लौकिक और पारलौकिक प्रेम को समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है । इसका मुख्य विषय कृष्ण प्रेम रस है । मनुष्य ही नहीं संपूर्ण जगत इससे प्रभावित तथा अनुप्राणित होता है । यही इस रस की विशेषता है । भाषा, शैली, कवि कल्पना, चित्रात्मकता, बिंब विधान, भावतत्व तथा मौलिक उद्भावनाओं की दृष्टि से यह ग्रंथ नन्ददास का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है । भँवरगीत नन्ददास के दर्शन, ज्ञान, वाक्‌विदग्धता, तार्किक शैली तथा भक्ति का परिचायक काव्य है । इसके पूर्वार्द्ध में गोपी उद्धव संवाद है तथा उत्तरार्द्ध में कृष्ण प्रेम में गोपियों की विरह दशा का वर्णन है । इसमें निर्गुण ब्रह्म का खंडन तथा सगुण का मंडन किया गया है ।

सिद्धांत पंचाध्यायी का विषय कृष्ण की रास लीला है । इसमें उन्होंने अपने सांप्रदायिक सिद्धांतों को व्यक्त किया है ।

नन्ददास के ग्रंथों की भाषा परिमार्जित ब्रज है । मधुर, परिचित शब्दों का चयन करना उनकी विशेषता है । लोकोक्तियों, मुहावरों और अलंकारों का प्रयोग उनके ग्रंथों में देखा जाता है । उनके काव्य में संगीतात्मकता कूट-कूट कर भरी हुई है । प्रसंगों की उनकी उद्भावना सरस एवं मार्मिक होने के कारण ललित एवं मोहक शब्दों के प्रयोग के कारण नन्ददास अष्टछाप के कवियों में विशिष्ट स्थान रखता है ।

निम्बार्क संप्रदाय के प्रमुख कवि श्री भट्ट रहे हैं । किंवदन्ति है कि उनका जन्म गौड ब्राह्मण परिवार में हुआ था । मथुरा में ध्रुवटीला इनका जन्म स्थान कहा जाता है । यह स्थान निंबार्क संप्रदाय के भक्तों के लिए अत्यंत प्रिय है । उनका जन्म सं. 1595 में हुआ था, ऐसा माना जाता है ।[1]

श्री भट्ट का ब्रजभाषा में लिखा एक ही ग्रंथ युगल शतक है । इसमें 100 पद हैं । प्रत्येक पद के पूर्व उसके मूल भाव को व्यक्त करनेवाला एक दोहा मिलता है । युगल शतक में राधा और कृष्ण की प्रेम लीलाओं के अनेक सरस तथा मनोरम चित्र है । इसमें राधा का प्राधान्य दिखाई देता है । कवि ने राधा और कृष्ण के प्रेम की मधुर अभिव्यंजना की है । वे एक दूसरे से कभी भी अलग नहीं होते । भाव और कल्पना दोनों में उदात्तीकरण कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है । इस कृति का कल्पना पक्ष अत्यंत उच्च कोटि का है । भाषा ललित तथा प्रसंगानुकूल है । इसमें संस्कृत के सुकोमल तत्सम शब्दों का भरपूर प्रयोग किया गया है । संगीतात्मक इसकी विशेषता है ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - .
   हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. नगेन्द्र - पृ. 213

निंबार्क संप्रदाय के एक और अन्य कवि हरिव्यास देव जी है । इन्होंने संप्रदाय का संगठन नये सिरे से कियातथा अनेक विछिन्न परंपराओं को फिर से स्थापित किया । कहा जाता है कि इन्होंने शाक्तों को भी वैष्णव बनाया और उनमें भक्ति का प्रचार किया ।

इनके पांच ग्रंथ हैं जिनमें प्रथम चार संस्कृत में हैं और एक ब्रजभाषा में । सिद्धांतरत्नांजलि, निम्बार्काष्टोत्तर शतनाम, तत्त्वार्थपंचक, पंचसंस्कार निरूपण आदि ग्रंथ संस्कृत में है । महावाणी ब्रजभाषा में है । यह निंबार्क संप्रदाय की रसिक परंपरा का आधार ग्रंथ है । इसमें राधा कृष्ण के दार्शनिक रूप की व्याख्या मिलती है इसमें श्रीकृष्ण को परब्रह्म तथा श्री राधा को उनकी आह्लादिनी शक्ति माना गया है । सखियाँ युगल की इच्छारूपा है राधा कृष्ण की रासलीलाएँ ही इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय है

भाषा अत्यंत कोमल है, तत्सम शब्दों का बाहुल्य है । शब्द विन्यास संगीतात्मक है । अलंकारों का प्रयोग भी देखा जाता है । इस संप्रदाय की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है ।

गोस्वामी हितहरिवंश राधावल्लभ संप्रदाय के[1] संस्थापक है । उनका जन्म 1502 ई. में मथुरा से चार मील पर बसे हुए बाद नाम गाँव में हुआ था । सोलह वर्ष की आयु में इनका विवाह रुक्मिणी देवी के साथ हुआ । अपने समस्त कर्तव्यों का पालन करते हुए वे गृहस्थाश्रम में भक्त बने रहे । 1533 ई. के बाद वृन्दावन में

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. नगेन्द्र - पृ. 216

निवास करने लगे । हितहरिवंश के गुरु के रूप में श्री राधा को स्वीकार किया जाता है । उन्हें श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार माना जाता है ।[1] स्फुट वाणी और हित चौरासी उनके दो ग्रंथ हैं । उनके चौरासी पदों के संग्रह का नाम हित चौरासी है । इसी ग्रंथ के आधार पर परवर्ती राधावल्लभीय भक्तों ने संप्रदाय के तत्वों को हृदयंगम किया है । इस ग्रंथ को संप्रदाय का मूलाधार मानकर अत्यंत आदर दिया जाता है । इसमें राधा कृष्ण के अनन्य प्रेम, नित्य विहार, रासलीला, चतुर्व्यूहात्मक अवयव, भक्ति भावना, प्रेम भावना आदि विषय चित्रित किया गया है । स्फुट वाणी में प्रेम, अनन्यता, राधा भक्ति, जीवनोद्देश्य आदि विषयों का प्रत्यक्ष रूप से प्रतिपादन हुआ है ।

गोस्वामी हितहरिवंश के ग्रंथ भक्ति से ओतप्रोत है । अपने ग्रंथों में उन्होंने "रस" पर बल दिया है । राधा भक्ति को साध्य बनाने के लिए उन्होंने काव्य साधन रूप में लिया ।

ब्रजभाषा का अत्यंत मधुर प्रयोग उन्होंने किया है । शैली मनोरम है । अलंकारों का प्रभाव-पूर्ण प्रयोग किया गया है । उनका उक्ति सौंदर्य अत्यंत रमणीय बना है । वर्णनात्मकता के साथ साथ भाव व्यंजना की मधुरता उनकी रचना की विशेषता है ।

सखी संप्रदाय के प्रवर्तक तथा प्रमुख कवि स्वामी हरिदास जी हैं । उनका जन्म वृन्दावन के निकट राजपुर गाँव में हुआ, माना जाता है ।[2] इन्हें आसुधीर जी का शिष्य बताया गया है ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- पृ. 167
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र - पृ. 223

पत्नी का देहावसान हो जाने के कारण वृन्दावन चले गये और दीक्षा लेकर निधिवन में रहकर उपासना करने लगे । इसके फलस्वरूप बाँकेबिहारी जी की मूर्ति का प्राकट्य हुआ ।

हरिदासजी अपने समय के महान संगीतज्ञ थे । उन्होंने किसी भी दार्शनिक सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया । वे रस मार्ग के पथिक थे । अन्य संप्रदाय में वर्णित कृष्ण लीला और हरिदास जी की कृष्ण लीला में भेद है । उनके कृष्ण अवताररूपी कृष्ण नहीं है । वे तो प्रेम के मूल स्वरूप नित्य निकुंजबिहारी है ।

उनकी दो रचनाएँ हैं - सिद्धांत के पद और केलिमाल । भक्ति के साधारण सिद्धांतों का कथन सिद्धांत के पद में किया है । इन में हरि को स्वतंत्र और जीव को भगवदाधीन माना गया है । संसार को पार करने के लिए नाम स्मरण की आवश्यकता है । सच्चे सखा बिहारी जी हैं । केलिमाल में 110 पदों में राधाकृष्ण की लीलाओं के चित्र अंकित है । उन्होंने संयोग वर्णन ही किया है । राधा, कृष्ण और सखियों के अतिरिक्त और कोई नहीं है ।

सहजता उनके ग्रंथ की विशेषता है । वार्तालाप की शैली है । इसमें स्वाभाविकता और जीवन की संपूर्ण मिठास है । लक्षणा व्यंजना का चमत्कार उनकी भाषा में दर्शनीय है । अरबी, फारसी तथा पंजाबी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है ।

इस प्रकार संप्रदाय के अंतर्गत आनेवाले भक्त कवियों ने अपनी अपनी इच्छा के अनुसार कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है ।

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी भक्त साहित्य के प्रमुख कवि हैं । उन्होंने राम के चरित को लेकर मानव जीवन की जितनी व्यापक और संपूर्ण समीक्षा की उतनी और किसी ने नहीं की । कवि होने के साथ साथ तुलसीदास महात्मा और भक्त भी हैं । उनका भक्त रूप कवि रूप के साथ इतना घुलमिल गया है कि दोनों में पार्थक्य करना सहज नहीं है । उन्होंने राम को अपना इष्टदेव मानकर उनमें भगवान विष्णु की प्रतिष्ठा की । वे तो हरि के होने में ही अपने जीवन का सौभाग्य मानते थे । लेकिन उनकी भक्ति संकुचित नहीं थी । उन्होंने राम के साथ साथ विष्णु के विभिन्न रूपों को अपनी रचनाओं में यथेष्ट स्थान दिया ।

तुलसीदास जी के जन्म संवत् में काफी मतभेद है । प्रियादास जी के भक्तमाल, मिश्रबन्धु विनोद, ग्रियर्सन, रामगुलाम द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, माताप्रसाद गुप्त, घटरामायण, तुलसी साहब के आत्मचरित आदि के अनुसार तुलसी का जन्म सं. 1589 में हुआ था ।[1] शिवसेंगर इसे सं. 1563 मानते हैं तो वेणिमाधवदास 1554 को । अभी तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर तुलसी का जन्म सं. 1589 माना जा सकता है ।

तुलसी के जन्म स्थान के विषय में भी काफी मतभेद है । सरकारी गजेटियरों के अनुसार तुलसी का जन्म सोरों में हुआ था जो इटा जिले में है और बाद में तुलसी ने जमुना के दक्षिण में राजापुर गाँव बसाया

---

1. भक्तमाल (637) टीका कवित्त 206 - पृ. 759
मिश्रबंधु विनोद - मिश्रबंधु - पृ. 174
तुलसी ग्रंथावली - रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 43
तुलसीदास - माताप्रसाद गुप्त - पृ. 140
तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ. उदयभानुसिंह - पृ. 142

था ।[1] कुछ लोगों का मत है कि तुलसी का जन्म चित्रकूट के पास हाजीपुर में हुआ था । लेकिन अभी तक प्राप्त प्रमाणों के आधार पर तुलसी का जन्म स्थान यमुना के किनारे स्थित राजापुर माना जा सकता है ।

तुलसीदास का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था । नरहरि दास उनके गुरु माने जाते हैं । तुलसीदास बड़े ज्ञानी थे । गुरु से उन्होंने वेदाध्ययन किया था । बाद में काशी जाकर वेद, वेदांग, उपनिषद्, शास्त्र, पुराण, इतिहास तथा काव्य शास्त्र का गहन एवं शास्त्रीय अध्ययन किया था ।

तुलसीदास कुछ समय गृहस्थ होकर जीए थे । वे अपनी स्त्री पर अत्यंत आसक्त थे । एक दिन पत्नी ने उनकी अपने पर आसक्ति देखकर उन्हें फटकारा तो उनके ज्ञान चक्षु खुल गये । उन्होंने उसी क्षण अपना सब कुछ छोड़कर सन्यास ग्रहण किया । इसी प्रकार जीवन परिवर्तित होने पर तुलसी के मन में दबी हुई भक्ति दुगुनी शक्ति के साथ सुलग उठी और वे अपने इष्ट देव की खोज में देशाटन के लिए निकल पड़े । भ्रमण करते करते वृन्दावन में पहुँचे । वहाँ एक गोपाल मन्दिर में दर्शन करने चले । वहाँ जाकर तुलसी ने कृष्ण से उन्हें राम रूप में दर्शन देने की प्रार्थना की तो कृष्ण ने तुलसी को राम रूप में दर्शन दिया । इसी से प्रेरणा पाकर अपार राम भक्त होकर भी तुलसी ने भक्तवत्सल कृष्ण पर श्रीकृष्ण गीतावली की रचना की ।

श्रीकृष्ण गीतावली ही एक ऐसी रचना है जिसे तुलसी ने रामेतर काव्य के रूप में लिखी है । वैसे तो उनकी कृतियों में अन्य देवताओं का चित्रण भरपूर मात्रा में मिलता, लेकिन एक पूरा का पूरा काव्य तुलसी ने

---

1. गोस्वामी तुलसीदास - रामदत्त भरद्वाज - पृ. 18-19

राम के अलावा विष्णु के किसी और अवतार पर नहीं लिखा । यही श्रीकृष्ण गीतावली की सबसे बड़ी विशेषता है ।

यह स्फुट पदों का संग्रह है, जिसमें कुल 61 पद संकलित है । इसमें कृष्ण की कथा का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्णन है । घटनाओं का वर्णन स्वाभाविक ढंग से हुआ है । कवि का हृदय तत्व वास्तव में कृष्ण चित्रण में चित्रित हुआ है । कवि ने इस रचना में उत्कृष्ट साहित्य का उदाहरण पेश किया है ।

तुलसीदास की अन्य रचनाएँ है - गीतावली, रामचरितमानस, रामलला नहछु, विनयपत्रिका, दोहावली, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण और कवितावली ।

संप्रदाय निरपेक्ष भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवि

भक्तिकाल में काव्य साधना धार्मिक होने के नाते किसी न किसी संप्रदाय में आबद्ध हो गयी । लेकिन ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने अपने को संप्रदाय निरपेक्ष रखकर अपने आत्मनिष्ठ कृष्ण प्रेम को वाणी दी । ऐसे कवियों की रचनाओं में तथाकथित सांप्रदायिक छाप का अभाव था । इन कवियों की रचनाएँ कृष्ण लीला के साथ साथ अपने व्यक्तिनिष्ठ अनुभवों और भावानुभूति पर आधारित थी । इन कवियों की रचनाएँ शुद्ध लीलापरक नहीं थी । इस क्षेत्र में कई कवि आते हैं जैसे मीरा, रसखान, नरोत्तमदास, लालचदास, कृष्णदास, गोविन्ददास, नरहरि, रहीम आदि । मीरा और रसखान को इनके प्रतिनिधि के रूप में लिया जा सकता है ।

मीरा

मीरा की जन्म-तिथि के बारे में विद्वानों में मतभेद है । आचार्य शुक्ल, मिश्रबंधु आदि विद्वान 1573 वि.सं. को मीरा की जन्म तिथि मानते हैं तो कुछ विद्वान सन् 1504 वि.सं. को । इस बात को लेके सब विद्वान एकमत है कि उनका जन्म राजस्थान में मेडता के राजपरिवार में हुआ था । मीरा अपने माँ-बाप की इकलौती संतान थी । मीरा को बचपन से ही गिरिधर गोपाल से लगाव था । बारह वर्ष की आयु में मीरा की शादी कुंवर भोजराज से हुई थी । कुछ समय बाद भोजराज की मृत्यु हो गई । इसके चार साल बाद मीरा के पिता की मृत्यु भी हो गयी । इन विपत्तियों ने मीरा के जीवन में भारी मोड ला दिया । मीरा की बालपन की भक्ति और धर्म के संस्कार अब उबरकर सामने आये । उनकी एकमात्र रुचि भगवद्भक्ति और साधु संगति में हो गई ।

मीरा का अधिकांश समय अब भगवद्दर्शन और धार्मिक चर्चाओं में बीतने लगा । मीरा लोक-लाज और कुल की मर्यादा छोडकर पैरों में घुँघरू बाँध कर, ताली दे-देकर श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने नाचती थी । मीरा के देवर को यह सब पसन्द नहीं था । उन्होंने मीरा को विष देकर, साँप भेजकर, मार डालने की कोशिश की । लेकिन भक्तवत्सल भगवान ने मीरा की रक्षा की । कुछ समय बाद मीरा ने मेवाड त्याग दिया और वृन्दावन चली गई । फिर वहाँ से द्वारका चली गई । लोगों का मानना है कि मीरा मरी नहीं द्वारका में रणछोडजी की मूर्ति में लीन हो गई ।

कृष्ण दिवानी मीरा की भक्ति रागानुगा भक्ति थी । वे अपने आराध्य कृष्ण को अपना सर्वस्व अर्पण कर चुकी थी । डॉ. कृष्णदेव

झारी के अनुसार "मीरा की माधुर्य भावना में जो भक्ति की सत्यता, प्रेम की जो ठोस अनुभूति की जो गहराई और प्रामाणिकता पाई जाती है, वह अन्य किसी कवि में नहीं है ।"[1] मीरा की भक्ति अनोखी थी, निराली थी, निश्चल थी । उसमें लौकिकता कतई नहीं थी । अन्य कृष्णभक्त कवियों ने जिस प्रकार राधा के माध्यम से अपनी हृदयानुभूति प्रकट की उसी प्रकार मीरा ने स्वयं राधा बनकर अपनी आत्मानुभूति प्रकट की । इसीलिए मीरा के पदों में आत्मानुभूति की महक ज़्यादा पाई जाती है । हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "उनके पदों में जो अनुभूति है वह अन्यत्र दुर्लभ है । वह हृदय को चालित करती है और अपने रंग में रंग डालती है ।"[2]

मीरा ने भक्ति को ही अपनी साधना और साध्य बनाया । उनकी भक्ति पूज्य भाव की थी । मीरा ने अपने को किसी संप्रदाय विशेष से आबद्ध नहीं किया । डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि "मीराबाई अत्यन्त उदार मनोभावनापन्न भक्त थीं । उन्हें किसी पंथ विशेष पर आग्रह नहीं था । जहाँ कहीं भी उन्हें भक्ति या चारित्र्य मिला है उसे ही उन्होंने सिर-माथे चढ़ाया है ।"[3]

मीरा के कृष्ण सगुण तथा साकार हैं । वे सर्व समर्थ, भक्तवत्सल, अविनाशी और भक्तोद्धारक हैं । उनका गिरिधर नागर उनके सर्वस्व है । प्रभु के सामने मीरा अपने को लघु जीव मानती है । वह अपने प्रभु के कृपाकटाक्ष की अभिलाषी है । उनके शरण की आकांक्षिणी है । उनके कृष्ण भक्तों के उद्धार के लिए विभिन्न अवतार ग्रहण करते हैं । कृष्ण

---

1. मध्यकालीन कृष्ण काव्य - कृष्ण देव झारी - पृ. 288
2. हिन्दी साहित्य - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - पृ. 192
3. वही - पृ. 194

की अनन्य भक्ता मीरा के मूलत: भगवान एक ही है लेकिन वे विभिन्न नामों से जाने जाते हैं । मीरा ने उन्हें बीसियों नामों से पुकारा है । लेकिन उनका प्रिय नाम गिरिधर नागर रहा है ।

मीरा की प्रेमाभक्ति में नवधा भक्ति के सभी अंग देखे जाते हैं । उनके पद ज़्यादातर कैशोर कृष्ण पर आधारित हैं । कुछ पदों में कृष्ण कथा का संकेत मिलता है । उनके पदों में दर्शन और रहस्यवाद की छटा भी मिलती है । मीरा का रहस्यवाद उनकी भक्ति का ही एक अंग है, जिसमें उनके कृष्ण प्रेम की संयोग - वियोगात्मक अनुभूतियों का प्रकाशन होता है । भगवद् विरह उनकी भक्ति और दर्शन का प्रमुख अंग है । हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार मीरा ने भगवत् विरह की पीडा को अत्यंत मादक और प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया है ।[1] गीत गोविन्द की टीका, नरसी जी का मायरा, राग सोरठ संग्रह, मीरा बाई का राग मलार, राग गोविन्द, गरबा गीत और मीरा की पदावली उनकी रचनाएँ हैं ।

रसखान

संप्रदाय निरपेक्ष कृष्ण भक्त कवियों में रसखान का प्रमुख स्थान है । उन्हें मुसलमान कृष्ण भक्त कवि के नाम से पुकारा जाता है । मध्यकालीन अन्य कवियों की भाँति रसखान के जीवन वृत्त के बारे में भी ठीक तरह से किसी को पता नहीं है । विद्वानों का मत है कि 1590 वि. सं में उनका जन्म दिल्ली में पठान परिवार में हुआ था । रसखान का सबसे प्राचीन उल्लेख दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में मिलता है जहाँ इन्हें दिल्ली का पठान कहा गया है ।[2] इसमें कहा गया है कि ये किसी

---

1. हिन्दी साहित्य - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 193
2. रसखानी - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - पृ. 27

साहूकार के लड़के पर अत्यंत आसक्त थे । उनको देखे बिना रसखान को चैन नहीं आता था । इनका यह प्रेम इतना मशहूर हो गया कि लोग इसे दृष्टांत के रूप में देखने लगे । एक बार चार पाँच वैष्णव मिलकर कह रहे थे कि प्रभु में ऐसा प्रेम चाहिए जैसा रसखान को साहूकार के पुत्र पर है । वैष्णवों ने रसखान से कहा कि जैसा प्रेम तुम साहूकार के बेटे से करते हो ऐसा अगर प्रभु से करते तो तुम्हारा जीवन बन जाता । रसखान ने उनसे भगवान के बारे में पूछा तो उन्होंने श्रीकृष्ण का चित्र दिखाया । कहते हैं रसखान उस मूर्ति पर मुग्ध हो गये । श्रीकृष्ण से मिलने रसखान व्रज आए । प्रभु के दर्शन के लिए गोविन्दकुंड पर तीन दिन तक पड़े रहे । अंत में गोसाईं विट्ठलनाथ जी को स्वप्न हुआ और रसखान को शिष्य कर लिया गया । दूसरी किंवदंति है कि वे किसी सुन्दर स्त्री पर आसक्त थे जो बड़ी मानिनी थी । उसने इन्हें वैसा ही ताना मारा जैसे तुलसीदास की पत्नी ने उन्हें मारा था । फिर वे वैरागी तथा कृष्ण भक्त हो गये । वे किसी सुन्दर लड़की पर आसक्त थे पर कृष्ण की भक्ति प्राप्त होते ही वे वैरागी हो गये । उन्होंने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ग्रहण की और कृष्ण लीला का गान करने लगे । 1671 वि.सं. में उन्होंने प्रेमवाटिका की रचना की । सं. 1675 में उनका स्वर्गवास हो गया । उनकी प्रेम वाटिका से उनके जीवन की कुछ घटनाओं का संकेत मिलता है ।[1]

---

1. देखि गदर-हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान ।
   छिनहि बादसा-बंस की, ठसक छाँड़ि रसखान ।। 48
   प्रेम निकेतन श्री बनहिं, आइ गोबरधन धाम ।
   लह्यौ सरनचित चाहिकै, जुगल सरूप ललाम ।। 49
   तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी मान ।
   प्रेमदेव की छबिहिं लखि भए मियाँ रसखान ।। 50
   बिधु सागर रस इन्दु सुभ बरस सरस रसखान ।
   प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरख बखान ।।51।
 - प्रेम वाटिका

रसखान किसी भी संप्रदाय या दर्शन से आबद्ध नहीं थे। वे तो प्रेम पंथ के पथिक थे। उनके अनुसार प्रेमाभक्ति ही सिद्धि का निश्चित मार्ग है। उनके अनुसार प्रेम को जानने के बाद जग में जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं रह जाता। प्रेम हरि का रूप है और हरि ही प्रेम स्वरूप है। हरि के सब अधीन हैं, पर हरि स्वयं प्रेमाधीन है। उनके अनुसार इसीलिए प्रेम महत्वपूर्ण है। उनका प्रेम पंथ साधना के विधि-निषेध से परे था।

रसखान ने प्रेमस्वरूप गोपियों की भक्ति को महत्व दिया है। इससे पता चलता है कि रसखान मधुराभक्ति के उपासक थे। रूपासक्ति को वे मुख्य मानते थे। वात्सल्य भक्ति पर भी उनके एकाध सवैये मिलते हैं।

रसखान के कृष्ण परब्रह्म के अवतारी हैं। योगी-तपस्वी-सिद्ध जिन्हें ढूँढ नहीं पाये, वेद जिन्हें अनादि, अखण्ड और अनंत बताते हैं, नारद, शुकदेव और व्यास जैसे पंडित और ज्ञानी जिन्हें ढूँढ नहीं पाये वही प्रभु व्रज में लीला हेतु आये हैं। उनका प्रभु-प्रेम धर्मातीत था, वे मात्र ईश्वर प्रेमी थे। वे पहले प्रभु लीलाओं का दर्शन करते थे, तत्पश्चात् लीला विषयक पद्य रचना करते थे।

रसखान को हिन्दी तथा संस्कृत का यथेष्ट ज्ञान था। उन्होंने अपने काव्य में सरस और सरल व्रजभाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने बोलचाल की भाषा का सामान्य रूप अपनाया। माधुर्य गुण से ओतप्रोत उनकी भाषा भावाभिव्यंजक तथा भावानुरूपिणी है। उनकी शब्द-योजना अनूठी तथा निराली है। चित्रात्मकता उनकी भाषा की प्रमुख विशेषता है। अलंकारों और छन्दों से पिरोई उनकी भाषा, मुहावरों और लोकोक्तियों से चमक उठी है।

सुजान रसखान, प्रेमवाटिका और दानलील उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं ।

निष्कर्ष

वैदिक काल में कृष्ण को ऋषि रूप में मान्यता मिली । औपनिषदिक काल में उन्हें देवता तथा परब्रह्म के रूप में पूजा गया । पौराणिक काल में आते आते कृष्ण को नारायण का अवतार माना गया । इसी का प्रतिबिंब बाद की रचनाओं में दिखाई पड़ता है । भक्तिकाल में कृष्ण का अंकन विभिन्न रूपों में देखा गया । हरेक कवि अपने संप्रदाय के अनुरूप कृष्ण कथा का गान करने लगा । कुछ कवियों ने कृष्ण को अवतारी मानकर रचना की तो कुछ ने लोकरक्षक रूप में । कुछ कवियों ने कृष्ण को धीर नायक के रूप में प्रस्तुत किया तो कुछ ने धर्मरक्षक के रूप में । जो भी हो भक्तिकालीन कवियों ने कृष्ण चरित का अंकन बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया है ।

दूसरा अध्याय

हिन्दी तथा संस्कृत का कृष्ण काव्य : एक परिचय

गत अध्याय में हिन्दी के कृष्ण भक्ति कवियों और उनके कृतियों की ओर संकेत किया जा चुका है । इस अध्याय में उन कवियों और कृतियों का परिचयात्मक अध्ययन दिया जा रहा है । साहित्य के मध्यकाल को सुवर्ण काल कहा जाता है । इस दौरान हिन्दी में ऐसे कई सर्जनात्मक प्रतिभाओं का योगदान रहा है जिन्होंने भक्ति साहित्य को अमरता प्रदान की । इनमें से प्रमुख हैं सूरदास । सूरदास कृष्ण भक्ति साहित्य के अमर कवि कहे जाते हैं । उन्होंने सूरसागर की रचना करके अपने को श्रीकृष्ण के भक्त के रूप में प्रतिष्ठित किया । कृष्ण भक्ति के पद रचकर अपने को प्रसिद्ध करनेवालों में मीरा और रसखान का नाम भी आता है । ये दोनों संप्रदाय मुक्त कवि हैं । मीरा ने मीरा की पदावली की रचना की और रसखान ने रसखान रचनावली । यद्यपि तुलसीदास राम भक्त कवि कहे जाते हैं, फिर भी वे श्रीकृष्ण के गुण गान किए बिना रह नहीं सके । उनकी कृति श्रीकृष्णगीतावली में कृष्ण भक्ति के 61 पद संकलित हैं ।

हिन्दी की तरह संस्कृत में भी ऐसे अनेक रचनाकार हुए जिन्होंने कृष्ण भक्ति साहित्य में अपनी लेखनी चलायी । इन में से प्रमुख हैं नारायण भट्टत्तिरी । नारायण भट्टत्तिरी एक अग्रगण्य कृष्ण भक्त थे । उन्होंने अपने इष्टदेव गुरुवायुपुरेश श्रीकृष्ण का गुण गान नारायणीयम् नामक अपने ग्रंथ में किया है । नारायणीयम् को केरल का भागवत कहा जाता है । कृष्ण भक्ति साहित्य रचनेवालों में एक अन्य प्रमुख कवि हैं बिल्वमंगल स्वामी । उन्होंने कृष्ण भक्ति को अपने स्तोत्रात्मक ग्रंथ श्रीकृष्णकर्णामृत के ज़रिए व्यक्त किया है । इसमें उन्होंने कृष्ण की स्तुति में अनेक स्तोत्र रचे हैं । गीत गोविन्द के अमर रचयिता जयदेव भी कृष्ण भक्त थे । उन्होंने राधाकृष्ण की अमर लीला का गान करके संस्कृत साहित्य को एक अमर ग्रंथ प्रदान किया ।

सुकुमार कवि श्रीकृष्ण के आर्त भक्त थे । उन्होंने श्रीकृष्णविलास काव्य की रचना की । इसमें उन्होंने श्रीकृष्ण की चुनी हुई लीलाओं का गान किया है । सरल तथा सरस शैली में रचा गया उनका काव्य संस्कृत साहित्य के लिए एक अमर देन रहा है ।

सूरदास और उनका सूरसागर

महाकवि सूरदास हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि हैं । सूरसागर उनकी प्रमुख रचना है । सूर ने कितने ग्रंथ लिखे यह बात विवादग्रस्त है । डॉ. दीनदयाल गुप्त ने सूरदास के चौबीस ग्रंथों का उल्लेख किया है ।[1] नागरी प्रचारिणी सभा की हस्तलिखित पुस्तकों के विवरण में सूरदास की बारह रचनाएँ हैं ।[2] डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार सूरदासजी ने सूरसागर के अतिरिक्त दो ग्रंथ और लिखे हैं, साहित्य लहरी और सूरसारावली ।[3] लेकिन एक और जगह उन्होंने सूरदास के नाम से मिलनेवाले तेरह ग्रंथों का उल्लेख किया है ।[4] विद्वानों का मानना है कि इसकी प्रामाणिकता अभी तक सिद्ध नहीं हुई है । सभी विद्वान इस बात पर एक मत हैं कि सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी - सूरदास की रचनाएँ हैं ।

सूरसागर में कितने पद है इसमें मतैक्य नहीं है । यह समय समय पर रचे गये पदों का संकलन होने के कारण निश्चित रूप से यह कहा नहीं जा सकता कि इसमें कितने पद हैं । आम तौर पर यह किंवदन्ति है कि यह सवा लाख पदों का संकलन है । एक लक्ष पदों की बात तो स्वयं सूरदास ने सारावली में लिखा है ।[5] चौरासी वैष्णवन की वार्ता के अनुसार

---

1. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - डॉ. दीनदयाल गुप्त - पृ. 279
2. सूरदास : जीवन और काव्य का अध्ययन - डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा - पृ. 48
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डॉ. रामकुमार वर्मा -पृ. 516
4. वही - पृ. 524
5. सूर सौरभ - डॉ. मुंशीराम शर्मा - पृ. 104

सूरदास ने सहस्रावधि पद लिखे हैं ।[1] शिवसिंह सरोज में लिखा है -"इनका बनाया सूरसागर ग्रंथ विख्यात है । हम ने इसके पद 60 हज़ार तक देखे हैं । समग्र ग्रंथ कहीं नहीं देखा ।"[2] डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार सूरसागर में प्राप्त पदों की संख्या 4132 है[3] तो डॉ. मुंशीराम शर्मा के अनुसार यह सात हज़ार से ऊपर नहीं है ।[4]

सूरसागर वस्तुतः कृष्णलीला का सागर है । वार्ता साहित्य से पता चलता है कि स्वयं वल्लभाचार्य सूर को शूर और सागर कहा करते थे । सूरसागर की सामग्री भागवत के ढंग पर रखी गयी है । इसमें बारह स्कंध हैं । सूरदास ने भागवत का शब्दशः अनुवाद नहीं किया है । यह एक स्वतंत्र रचना है । कवि भागवत की कथा को रूपरेखा की तरह लेते हैं और अपनी मौलिक उद्भावना से उसे पुष्ट करते हैं । वे कथा का सार लेकर यहाँ वहाँ कवित्व का पुट देकर चलते हैं । भागवत की स्तुति, विस्तार आदि सूरसागर में नहीं मिलता । इसमें सूर ने केवल लीलाओं को स्थान दिया है । इससे वह अधिक सरस हो गया है और उसमें मानवता का पुट आ गया है । सूरसागर उसके (सूर के) हार्दिक उद्गारों का भण्डार है, राधा कृष्ण की भावमयी लीलाओं का निकेतन है और है सूर की दिव्य आँखों का अंजन जो भगवद् भक्ति के आनन्दाश्रुओं के साथ बह बह कर इसमें लबालब भर गया है ।[5]

---

1. और सूरदास जी ने सहस्रावधि पद कीये हैं ताको सागरकहिये सो सब जगत में प्रसिद्ध भये । चौरासी वैष्णवन की वार्ता - पृ. 279
2. शिवसिंह सरोज - शिवसिंह सेंगर - पृ. 502
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा-पृ. 529
4. सूर सौरभ - डॉ. मुंशीराम शर्मा - पृ. 113

भागवत की तरह सूरसागर के स्कंधों में संतुलन नहीं है। सूरदास का मुख्य उद्देश्य श्रीकृष्ण लीला गान था। इसलिए दशमस्कंध के वर्णन में उनका चित्त अधिक रमा है। भगवान में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में कृष्ण कथा का बराबर विकास मिलता है। सूरसागर में यह संतुलन नहीं है। उत्तरार्द्ध में केवल 138 पद है जो भागवत की तुलना में नगण्य है। सूर की वृत्ति कृष्ण के गोपाल नन्दनन्दन और राधा, गोपी वल्लभ रूप में अधिक रमी है। कृष्ण के यश विस्तार में अधिक नहीं रमी है। इससे उनकी सारी प्रतिभा कृष्ण कथा के पूर्वार्द्ध में समाप्त हो जाती है।[1] बाकी स्कंधों की कथा को औपचारिकता के लिए वर्णन करते हैं।

सूरसागर का आरंभ मंगलाचरण से होता है। इसमें हरि की कृपा का उल्लेख करके उनके चरणों की वन्दना की गयी है। इस स्कंध में 223 पद हैं। इनमें अधिकत्तर विनय के पद हैं। इन में उन्होंने भगवान की कृपा और मनुष्यों के कर्मों की हीनता, दीनता, व्यर्थता, साधनहीनता और संसार में लिप्तता का वर्णन किया है। कुछ पदों में भक्ति की याचना और उसकी महिमा का वर्णन किया है साथ ही विषयों से विरक्ति, सगुणोपासना का प्रयोजन, मायारूपी संसार का वर्णन, नाम महात्म्य आदि पर भी पद लिखे हैं। इन पदों में सूर की दास्य भक्ति का भाव उभरकर आया है। विचार की प्रौढ़ता, अनुभव की गंभीरता और स्थिर मनस्विता भी इससे गूँज उठती है। इसके बाद भागवत के अवतरण का उल्लेख करके शुकदेव के जन्म की कथा वर्णित है। फिर राजा परीक्षित की कहानी आती है।

द्वितीय स्कंध में 38 पद हैं। इसमें नाम महिमा, भक्ति माहात्म्य, सत्संग वर्णन, वैराग्य वर्णन, आत्मज्ञान, विराट रूप वर्णन,

---

1. सूर समीक्षा - डॉ. राम रतन भटनागर - पृ. 62

चतुर्विंशति अवतार वर्णन, ब्रह्म की उत्पत्ति आदि के पद मिलते हैं ।

तृतीय स्कंध में उद्धव पश्चाताप, सनकादि अवतार, रुद्र उत्पत्ति, स्वयंभू मनु की उत्पत्ति, सुर-असुर उत्पत्ति, वाराह अवतार, कपिलावतार, भक्ति वर्णन, भगवत् ध्यान, चतुर्विध भक्ति, भक्ति महिमा आदि विषयों पर पद मिलते हैं ।

चतुर्थ स्कंध में दत्तात्रेय अवतार, यज्ञ पुरुष अवतार, शिवपार्वती विवाह, ध्रुव कथा, पृथु अवतार आदि का वर्णन है ।

पंचम स्कंध में ऋषभ देव अवतार, जड भरत कथा तथा जड भरत-रहूगण संवाद मिलता है । षष्ठ स्कंध में अजामिलोद्धार, गुरु महिमा, वृत्रासुर वध, सदाचार आदि के पद मिलते हैं ।

सप्तम स्कंध में नरसिंह अवतार, नारदोत्पत्ति आदि के पद मिलते हैं । अष्टम स्कंध में गजेन्द्र मोक्ष, कूर्मावतार, सागर मंथन, वामनावतार, मत्स्यावतार आदि का वर्णन है । नवम स्कंध में अन्य पौराणिक कथाओं के साथ परशुराम अवतार तथा रामावतार की कथा है । इसमें सूर ने राम की कथा को भागवत की राम कथा से भी अधिक विस्तृत और भावपूर्ण बनाया है । उन्होंने राम कथा के मार्मिक प्रसंगों को चुनकर कथा-विस्तार किया है । अधिकांश पद कवि की गंभीर हृदयानुभूति के परिचायक हैं । सूर की राम कथा अधिकत्तर वाल्मीकि रामायण से प्रभावित है । सूरदास की राम कथा पर राम साहित्य के सम्राट तुलसीदास का प्रभाव बिलकुल नहीं पडा है ।

सूरसागर का दशम स्कंध सबसे प्रमुख रहा है । सूर का एकमात्र अभीष्ट विषय अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की लीलावर्णन था । इसलिए उनके काव्य का वास्तविक तथा प्रमुख उद्देश्य श्रीकृष्ण का लीला गान करना रहा है । सूर ने भागवत से कुछ ऐसी ही घटनाएँ चुनी है जो भक्ति भावना से आपूर्ण हो । दशमस्कंध पूर्वार्द्ध की कथा ही कवि का अत्यंत प्रिय विषय रहा है । सूर की समस्त कीर्ति का आधार यही स्कंध है । इसी स्कंध में सूर के कवित्व की कोमलता, कमनीयता, भगवतभक्ति, भावुकता, भव्यता, वैलक्षण्य, विलास, व्यंग्य और विदग्धता देखने को मिलती है । इस स्कंध के पदों की संख्या बाकी के स्कंधों की सम्मिलित संख्या से पाँच गुना ज़्यादा है ।[1]

इसमें सूर ने भागवत की कथा को रूपरेखा की तरह लिया है और स्वच्छन्दता पूर्वक आकार बढ़ाया है । अपनी रुचि और भाव के अनुकूल मौलिकता के रंग भर देते हैं । सूर में मौलिकता का विशेष आग्रह है और कहीं कहीं वह पौराणिक कथाओं में मौलिकता का इतना समावेश कर सके हैं कि कथाओं का रूप ही बदल गया है और वे अधिक ग्राह्य बन गई है । भागवत के अलावा अन्य पुराणों और लोककथाओं के प्रसंगों की भी अवतारणा करता है । इस प्रकार उसका दशम स्कंध पूर्वार्ध एक परिपूर्ण सम्यक लीला काव्य हो गया है ।[2]

सूरदास ने इस स्कंध का आरंभ मंगलाचरण से किया है । फिर कृष्णावतार प्रसंग का वर्णन है । इसके बाद कृष्ण जन्म के हर्षोद्रेक का भावपूर्ण चित्रण मिलता है । सूर ने इन प्रसंगों की मौलिक उद्भावना की है ।

---

1. सूर समीक्षा - डॉ॰ राम रतन भटनागर - पृ॰ 64
2. सूरदास - व्रजेश्वर वर्मा - पृ॰ 64

दशमस्कंध की कृष्ण लीला को दो विभागों में बाँटा जा सकता है -§1§ आनन्दमय लीला विलास और §2§ दुष्कृतों के विनाश लीला। संहार लीला में पहली बारी पूतना की आती है। दुष्ट संहार की सभी लीलाओं के पहले कंस को भयभीत और संत्रस्त दिखाया गया है। यह बात भागवत में नहीं है। इसके बाद श्रीधर अंग भंग की कथा है जो भागवत में नहीं है। फिर शकटासुर, तृणावर्त और कागासुर वध की घटना आती है। इसके बाद नामकरण संस्कार का वर्णन है। सूरसागर और भागवत में नामकरण संस्कार के वातावरण में बहुत बड़ा अन्तर है। फिर अन्नप्राशन, वर्षगांठ, कर्ण छेदन, महाराने के पांडे आदि प्रसंग आते हैं। ये प्रसंग सूरसागर के मौलिक प्रसंग हैं। इसके बाद आता है कृष्ण की दैनिक चर्या का विस्तृत विवरण जैसे कृष्ण का घुटुरवों चलना, पावों चलना, पालने में झुलाना, चंद प्रस्ताव, कलेवा करना आदि आदि। इसमें सूर की कल्पना शक्ति का परिचय मिलता है। फिर माटी भक्षण प्रसंग आता है। इसमें वात्सल्य सुख उपजानेवाली लीला का चमत्कार-विशेष दिखाई देता है। इस प्रसंग का विस्तार भागवत के प्रसंग से भी अधिक है। इसके बाद विस्तृत रूप से माखन चोरी का वर्णन मिलता है। यह भागवत की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और कवित्वपूर्ण है। श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव कवि की भाव भूमि में किस प्रकार माधुर्य में विकसित होता है इसका पहला संकेत सूर ने इसी प्रसंग के ज़रिए दिया है। सूर की मनोवृत्ति जितनी तन्मयता से भगवान के बालरूप वर्णन में रमी है, उतनी अन्यत्र नहीं। प्रेम ही सूर का प्रधान क्षेत्र था और उसके सभी रूपों का जितना विस्तृत और वरिष्ठ वर्णन सूरसागर में है, उतना और कहीं नहीं।[1]

उलूखल बंधन और यमलार्जुन उद्वार का प्रसंग भागवत में एक ही कथा के दो अंग है। लेकिन सूरसागर में यह दो प्रसंगों के रूप में

---

1. सूर सौरभ - डॉ. मुंशीराम शर्मा - पृ. 117

। भागवत में यमलार्जुन उद्धार पर बल दिया गया है पर सूर सागर
बंधन पर बल है और यमलार्जुन उद्धार का प्रसंग गौण रूप में दिया
। इस प्रसंग के ज़रिए सूर ने यशोदा और गोपियों के वात्सल्य तथा
की त्रासयुक्त रूप-शोभा का चित्र खींचने का प्रयास किया है । फिर
की ब्रजलीला के अनेक प्रसंग मिलते हैं जिसमें कृष्ण के सोने, जागने,
ाने, गाएं चराने आदि प्रमुख हैं। ये प्रसंग सूर की मौलिक कल्पना
ञना की उपज हैं । इसके बाद वत्सासुर और बकासुर वध की लीलाएँ
। ये लीलाएँ भागवत की अपेक्षा सूरसागर में संक्षिप्त हैं । अघासुर
ंग के ज़रिए सूर ने सखाओं के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति दिखाने की
ी है । भागवत की इस लीला में कृष्ण के देवत्व पर बल अधिक है ।

वत्स हरण लीला सूरदास ने अत्यंत मौलिकता से प्रस्तुत की
ामें घटनावैचित्र्य, नाटकीयता, सखाओं का निर्मल प्रेम, तथा
ाकता पद पद पर दृष्टिगोचर होती है । इसमें सूर ने अपनी स्वतंत्र
शक्ति से अपनी प्रतिभा की उपज भी दिखाई है । सूर ने इस
भिन्न भिन्न दृष्टियों से देखकर, एक ही दृश्य को अनेक रूपता प्रदान
प्रसंग में उन्होंने सखाओं के सहज स्नेह, गोपाल कृष्ण के गोप रूप
लीला के चित्रण पर बल दिया है । भागवत का कथानक तो कृष्ण
िककता, आध्यात्मिकता और दार्शनिकता से ओतप्रोत दिखाई देता

राधा कृष्ण मिलन सूर की कल्पना की उपज है । यह
ं नहीं मिलता । सूर ने भौंरा चकई खेलते समय दोनों को अचानक
है । दोनों में प्रथम मिलन से ही आँखें चार हो जाती है । इसका
ाभाविक और स्वच्छन्दतापूर्ण वर्णन सूर ने प्रस्तुत किया है । इसके
ारण और बलराम के द्वारा धेनुक वध का प्रसंग है । फिर वृन्दावन

कालिय दमन प्रसंग को सम्यक् कथानक के रूप में मौलिक ढंग से सूरदास ने उपस्थित किया है । सूरदास ने इस लीला को कंस से संबंधित कर सर्वथा नई उद्भावना की है । इस कथा को सूर ने आरंभ, विकास, चरम सीमा तथा पर्यवसान देकर ऐसा संगठित किया है कि यह एक स्वतंत्र घटना की तरह लगने लगता है । इसमें नाटकीयता है, घटनावैचित्र्य है, स्वाभाविक चित्रण है और है प्रबंध पटुता । यह लीला भागवत से बिलकुल भिन्न रूप में प्रस्तुत हुई है ।

कालियदमन के बाद भागवत में दावानल पान का और प्रलंब वध का वर्णन है । सूरदास ने केवल एक पद में संक्षिप्त रूप में दावानल पान का उल्लेख किया है । उनकी रुचि तो गोचारण के वर्णन में तथा वन से लौटते समय कृष्ण के श्रीमुख के सौंदर्य चित्रण में ही अधिक रमी है । कृष्ण के रूप चित्रण, वंशीवादन तथा गोपियों पर उसके प्रभाव का वर्णन सूरसागर की विशेषता है । इन प्रसंगों में कवि ने अपने अद्भुत कवित्व शक्ति तथा भक्ति भावना का परिचय दिया है ।

इस प्रसंग के बाद सूर ने एक बार फिर राधा और कृष्ण को मिलाया हैं । दूध दुहने के बहाने राधा आती है और कृष्ण से मिलकर लौटते समय मार्ग में सर्प-दंश का बहाना करके बेहोश हो जाती है । कृष्ण गारुडी बनकर आते हैं और राधा होश में आती है । इस प्रसंग को भी सूर की मौलिक कल्पना के अंतर्गत रखा जा सकता है । यह प्रसंग भागवत में नहीं है ।

चीर हरण लीला राधा कृष्ण मिलन की लीला से संबंधित करके सूर ने प्रस्तुत किया है । भागवत में यह लीला शरदऋतु में घटित होती है । परन्तु सूरसागर में वातावरण बिलकुल भिन्न है । सूरसागर का वातावरण प्रेम विकास के लिए अधिक स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिकपूर्ण प्रतीत होता है । दोनों में कथा का विवरणात्मक अंतर भी दिखाई देता है ।

फिर पनघट प्रस्ताव आता है । यह लीला भागवत में नहीं है । इसमें यमुना से जल लानेवाली गोपियों के साथ कृष्ण की छेड़-छाड़ का वर्णन है । इस लीला के फलस्वरूप गोपियों का कृष्ण प्रेम अधिक बढ़ जाता है ।

सूरसागर में यज्ञपत्नी लीला भगवत की तरह विस्तृत नहीं है । सूर याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों की कृष्ण भक्ति और कृष्ण प्रेम का वर्णन करने में अधिक तन्मयता दिखाता है । इस लीला के ज़रिए सूर ने इस बात की पुष्टि की है कि भक्ति में कुल और मर्यादा का कोई स्थान नहीं है ।

इसके बाद गोवर्धन लीला का प्रसंग आता है । सूरसागर और भागवत में इस लीला के दृष्टिकोण में अंतर है । सूर ने भागवत के प्रसंग से भी अधिक विस्तृत रूप में इस लीला को प्रस्तुत किया है । इसके बाद नन्द को वरुणालय से पकड़कर ले आने की कथा का वर्णन मिलता है । इसमें सूर ने गंगा द्वारा नन्द को कृष्ण के ब्रह्मत्व का ज्ञान कराया गया है ।

सूरसागर का आगामी प्रसंग दान लीला का है जो भागवत से सर्वथा भिन्न और मौलिक है । सूर की तन्मयता की दृष्टि से यह प्रसंग अत्यन्त महत्वपूर्ण है । सूर के भक्तिभाव के विकास में इसका विशिष्ट स्थान है । "दधि बेचनेवाली गोपियों से कृष्ण के दधि दान माँगने की" छोटी-सी घटना में कवि ने प्रबंधात्मकता, वर्णन-विस्तार, आध्यात्मिक संकेत, व्यंग्य भक्ति आदि को स्थान दिया है ।

इसके बाद कृष्ण का मुरली वादन प्रसंग तथा रास लीला का आरंभ होता है । सूर ने भागवत की कथा को रेख रूप में लेकर उसमें अपनी स्वतंत्र भावना और कल्पना शक्ति को भर कर अत्यंत अलौकिक लीला को उपस्थित किया है । भागवत की अपेक्षा सूर के रास वर्णन में तल्लीनता,

सविशेषता और सरसता दृष्टिगोचर होती है । भागवत में रास के अंतर्गत रात्रि को जल विहार का उल्लेख है परन्तु सूर ने जलविहार दूसरे दिन सबेरे होने का वर्णन किया है । यह भागवत से अधिक विस्तृत है ।

इस प्रसंग के बाद राधा कृष्ण का संयोग वर्णन है । फिर खण्डिता प्रसंग, राधा का बड़ा मान, हिंडोल लीला, राधा कृष्ण विहार, शंखचूड़ वध, कृष्ण की दिनचर्या का वर्णन, कृष्ण को जगाना, ज्यौनार कलेऊ, रूप सौंदर्य वर्णन, मुरली वादन, अरिष्टासुरवध, केशी वध, व्योमासुर वध, आदि का वर्णन है । इसके बाद वसंत और फाग लीला का वर्णन आता है ।

भागवत के अनुसार सूर ने भी अक्रूर आगमन का वर्णन किया है । अक्रूर के व्रज में आने की गोपियों, यशोदा आदि की प्रतिक्रिया का जो वर्णन सूर ने किया वह अत्यंत मर्मस्पर्शी बना है । इसमें कवि ने अपनी मौलिक कवित्व शक्ति का परिचय दिया है ।

इसके बाद मथुरा प्रवेश का प्रसंग है । फिर दर्जी, माली और कुब्जा का उल्लेख है । फिर कुवलयापीड, मुष्टिक और चाणूर का वध, कंस तथा उनके साथियों का वध, वसुदेव देवकी की मुक्ति, कृष्ण के प्रति उनका प्रेम, उग्रसेन का राज्याभिषेक, कुब्जा पर कृपा आदि का वर्णन मिलता है ।

इसके बाद गोपी विरह का प्रसंग आता है । विरह का वर्णन सूर ने प्रभावोत्पादक ढंग से किया है । फिर सूर केवल एक पद में बताते हैं कि मथुरा में अध्ययन करते समय कृष्ण को व्रज की याद आयी ।

फिर गुरु दक्षिणा की माँग की प्रार्थना और गुरु पत्नी के इच्छानुसार मृत पुत्र को यमलोक से ले आने का विवरण है । इसके बाद कृष्ण उद्धव को ब्रज भेजते हैं । उद्धव को ब्रज भेजने के संबंध में भागवत और सूरसागर में अन्तर है । भागवत में उद्धव को नन्द यशोदा तथा गोपियों को सांत्वना देने के लिए भेजा गया था । लेकिन सूरसागर में उद्धव के ज्ञान के गर्व को मिटाने तथा उसे प्रेमाभक्ति में दीक्षित करने के लिए भेजा गया है । इसके अतिरिक्त कृष्ण के माता, पिता तथा गोपियों के लिए पत्र लिखना, गोपियों के शुभ अशुभ विवेचन आदि के संबंध में अनेक छोटे छोटे विवरणों की सरस कल्पनाएँ सूर ने की हैं । भ्रमरगीत भी भागवत के आधार पर मौलिक रूप से रचा गया है ।

दशमस्कंध उत्तरार्ध में जरासंध का द्वारका आगमन, कालयवन वध, रुक्मिणी हरण तथा विवाह, प्रद्युम्न जन्म, सत्यभामा विवाह, सत्राजित और शतधन्वा का वध, कृष्ण के अन्य विवाह, भौमासुर वध, सत्य भामा के लिए कल्पवृक्ष लाना, प्रद्युम्न विवाह, रुक्मवध, बाण वध, उषा अनिरुद्ध विवाह, नृगोद्धार, पौंड्रक वध, नारद मोह, हस्तिनापुर गमन, जरासन्ध वध, शिशुपाल वध, शाल्व वध, दंतवक्र वध, बल्वल वध, सुदामा चरित, राधा और गोपियों के प्रेम के संबंध में कृष्ण रुक्मिणी की बातचीत आदि का वर्णन मिलता है ।

इसके बाद कुरुक्षेत्र में कृष्ण और ब्रजवासियों की भेंट, सुभद्रा हरण, अर्जुन सुभद्रा विवाह, बकासुर वध, भृगु परीक्षा आदि प्रसंग मिलते हैं ।

सूरसागर के एकादश स्कंध में केवल चार पद हैं । इसके दो पदों कवि ने भक्ति भाव प्रकट किया है । तीसरे में नारायणावतार का उल्लेख है । अंतिम पद में हंस अवतार का उल्लेख है ।

द्वादशवें स्कंध में पाँच पद हैं । इसमें बुद्धावतार, कल्की अवतार, और कलिधर्म का निर्देश है । फिर परीक्षित के अंत समय के लिए संतोषपूर्वक तैयार रहने का उल्लेख करके कथा की समाप्ति की गई है ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सूर ने भागवत की कथा का आधार मात्र लेकर अपनी रचना का निर्माण किया है । दशम स्कंध पूर्वार्द्ध के अतिरिक्त अन्य स्कंधों में सूरने भागवान का यश वर्णन, भक्ति तथा भक्तों की महिमा पर रोशनी डाली है । भागवत में मिलनेवाले लंबी लंबी व्याख्याएँ, स्तुति, आध्यात्मिक तत्व, योग, सांख्य आदि बातों को उन्होंने छुआ तक नहीं । अवतारों की कथा में परस्पर घटना संबंध देने का भी उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया ।

दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में सूरदास की पूरी कवित्व शक्ति उभरकर आयी है । इस स्कंध की रचना में उन्होंने कमाल की होशियारी दिखाई है । यह कृष्ण लीला का गीत्यात्मक प्रबंध है जिसमें लीला क्रम से कृष्ण की विविध अवस्थाओं और परिस्थितियों का संबद्ध चित्रण, भक्ति-भाव और कवि की अनुभूति के विकास का चित्रण भी मिलता है । संपूर्ण कृष्ण लीला को नवीन एवं मौलिक रूप में प्रस्तुत करने में सूरदास सिद्ध हस्त रहे । उन्होंने अपने मन चाहे कृष्ण लीला प्रसंगों का वर्णन ही विस्तृत रूप में किया है । सूर ने कृष्ण चरित के उन भावात्मक स्थलों को चुना है जिनमें उनकी अंतरात्मा की अनुभूति पैठ सकी है । उनकी मनोवृत्ति लोकरक्षक रूप के बजाय लोकरंजक रूप की ओर अधिक रमी है । असुरों के निग्रह का वर्णन उन्होंने अधिक विस्तृत रूप से नहीं किया । वास्तव में सूर का उद्देश्य कथा वर्णन नहीं था अपितु अपनी प्रभु की लीला का वर्णन करना था । सूर की वृत्ति घटनाओं के भावात्मक विकास में तत्परतापूर्वक रमी है । भाव के भव्य भवन में सूर की अन्तर्दृष्टि ने जितना गंभीर और विस्तृत अवलोकन किया है, उतना विश्व का महान से महान कवि भी नहीं कर सका ।[1]

---

1. सूर सौरभ - डॉ. मुंशीराम शर्मा - पृ. 187

सूर की भावभूमि वस्तुपरक होते हुए भी आत्मपरक है । वे कृष्ण लीला के माध्यम से अपने अंतरमन की बात कहना चाहते थे । कृष्णेतर लीलाओं को उन्होंने चलते ढंग से व्यक्त किया है । कृष्ण लीला के प्रमुख तीन पक्षों में से ब्रज तथा मथुरा लीला का ही विस्तृत रूप में वर्णन किया है । द्वारका लीला को केवल औपचारिकता के लिए प्रस्तुत किया है । सूर की आत्मा तो कृष्ण की बाल तथा प्रणय लीला तक ही सीमित रही । वे कृष्ण के बाल्यकाल की निर्द्वन्द्व क्रीडाओं, प्रणय लीलाओं और विहार में ही रस धारा प्रवाहित करते रह गये । अन्य प्रसंगों पर संकेत कर आगे बढ़े । सूर सागर में लीला वर्णन ही मुख्य है । उसमें आध्यात्म पक्ष अत्यन्त स्वल्प है । उनका काव्य मौलिक उद्भावना से समुद्भूत था । सहज मानवीय गुण सूर के लीला वर्णन का वैशिष्ट्य है । लीलावर्णन में धार्मिक चेतना सर्वत्र विद्यमान है । सूर कृष्ण लीला में अलौकिकता का प्रतिष्ठापन नहीं करना चाहते थे । सूर पद-पद में कृष्ण के ईश्वरत्व की झलक दिखाना नहीं चाहते । इसीलिए उनकी लीलाओं का स्वरूप अधिक मनोहारी, सरस और मनोवैज्ञानिक बन सका है । लीलाओं में उन्होंने मानवोचित ललित वर्णन किया है । प्रत्येक पद के अंत में सूर के प्रभु, स्वामी आदि का संकेत किया है जिसमें लौकिक वर्णन में अलौकिकता की छटा दिखाई देती है । लीला के अंत में अपने प्रभु पर बलिहारी होने की आत्माभिव्यक्ति प्रस्तुत करके लौकिकता पर आध्यात्मिकता का रंग चढ़ा देते हैं । उन्होंने ब्रजवासियों के हृदय पर कृष्ण की अलौकिकता को अधिक समय तक रहने नहीं दिया । इस प्रकार उन्होंने रचना में मानव सहज गुणों की स्वाभाविकता पर बल दिया है साथ ही आध्यात्मिकता का प्रभाव भी बरकरार रखा है । इस तरह से कृष्ण की लीलाएँ लौकिक होने पर भी उनमें आध्यात्मिकता की झलक दिखाई देती है । साहित्यिक मूल्यों की दृष्टि से सूरसागर में सजगता, सरसता, मनोरंजकता और भावानुभूति उच्च-स्तरीय है । सूर ने अपनी कल्पना, मौलिकता का भाव प्रवणता से जिन लीलाओं को चित्रित किया, उन्हें अनुपम बना दिया । कृष्ण की प्रकट लीला चित्रण में अपनी संपूर्ण प्रतिभा का परिचय दिया है । उन्होंने कृष्ण काव्य में

भाव रस का सम्मिश्रण कर कल्पना के दिव्य साँचे में ढालकर उसे इतने सुन्दर ढंग से जनता के सामने रखा कि वह उनके आराध्य की दिव्य सौन्दर्यमयी प्रतिकृति बन गयी है ।[1]

वात्सल्य मनुष्य की एक सहजात प्रवृत्ति है । मनुष्य को संसार में लिप्त करने का संतान मोह भी एक प्रबल कारण है । इसका अतिक्रमण करना अत्यंत कठिन है । इसे कृष्णोन्मुख करने के लिए बाल लीला और वात्सल्य वर्णन को मान्यता दी गयी । विशुद्ध निस्वार्थ प्रेम और बलिहारी हो जाने की जो स्पष्टत: भावना वत्सल में है वह किसी और में नहीं ।[2]

सूर के कृष्ण कथा वर्णन में वात्सल्य और श्रृंगार वर्णन श्रेष्ठतम बन गया है । सूर हृदय का भाव जगत में गहरा प्रवेश है । उनके सागर में भावों की जैसी विविधरूपता दिखलाई देती है वैसी अन्यत्र नहीं । इसी कारण से सूरसागर को पढ़ते हुए मनुष्य ऊबता नहीं । वात्सल्य और श्रृंगार संबंधी भावों की तो सूरसागर में बाढ़ सी आ गयी है ।[3] बाल लीला का वर्णन करते हुए जैसे सूर स्वयं ही बालक हो गये हैं । उनके वर्णन में बालकों का भोलापन, उनका उल्लास, रोष और बड़ों की सांत्वना सभी सुनाई देता है । बाल भाव और वात्सल्य से सने मातृहृदय के प्रेम भावों के चित्रण में सूर अपना सानी नहीं रखते । बालक की विविध चेष्टाओं माता की अभिलाषा, उत्कंठा आदि भावों के वर्णन में सूर बेजोड़ है । वात्सल्य में निष्काम प्रेम का भाव सर्वाधिक होता है । पुष्टिमार्ग के अनुसार इस प्रकार की प्रीति की दशा में लौकिक वासनाएँ शीघ्र छूट जाती है और निरोध की

---

1. सूर और उनका साहित्य - डॉ. हरबंशलाल शर्मा - पृ. 317
2. रस सिद्धांत : स्वरूप विश्लेषण - डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित - पृ. 295
3. सूर सौरभ - डॉ. मुंशीराम शर्मा - पृ. 229

प्राप्ति होती है । पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूर ने भी अपने काव्य के द्वारा यही बात सिद्ध करने की कोशिश की है । सूरदास ने वात्सल्य का जैसा सजीव, अकृत्रिम तथा प्रभावशाली चित्र खींचा है वह विश्व साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है । शुक्लजी का कहना है कि वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपने बंद आँखों से किया उतना और किसी कवि ने नहीं । इन क्षेत्रों का वे कोना कोना झाँक आये । उक्त दोनों के प्रवर्तक रति भाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके उतना और कोई नहीं ।[1] सचमुच वात्सल्य और श्रृंगार वर्णन में सूर को अद्भुत सफलता मिली है । वात्सल्य वर्णन में बालहृदय एवं मातृहृदय को और श्रृंगार वर्णन में गोपियों के हृदय को सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंतर्दशाओं एवं भावोर्मियों के विश्लेषण में सूर का अद्भुत कौशल दृष्टिगत होता है ।

सूरसागर में श्रृंगार की अभिव्यक्ति भी असाधारण है । हिन्दी साहित्य में श्रृंगार को रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने ।[2] उसमें वासना की गंध, भोगेच्छा की तृषा और कामातुरता की शिथिलता दिखाई नहीं देती । सूर श्रृंगार वर्णन में तटस्थ रहे तथा उसे श्रद्धामिश्रित रसानन्द का स्वरूप प्रदान किया । उसमें किसी भी प्रकार की लौकिक अनुभूति उभरने सूर ने नहीं दी । इसलिए श्रृंगार चित्रण भावपुनीत हो गया है साथ ही निर्दोष, दिव्य एवं अनुपम । सूर प्राय: सभी कृष्ण भक्त कवियों की अपेक्षा श्रृंगार का उन्नयन करने में सब से अधिक सफल हुए हैं और यह उन्नयन मानव गुणों की परिधि में ही हुआ है ।[3] उन्होंने श्रृंगार को भक्ति के साथ जोडकर उसके संयोग और वियोग पक्ष का जैसा मार्मिक चित्रण किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

---

1. सूरदास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 167
2. वही
3. सूर की काव्य कला - मनमोहन गौतम - पृ. 25

सूर बाल मनोविज्ञान के अद्वितीय पारखी हैं । वे सारी बाल लीला को नन्द यशोदा के वत्सलपूर्ण हृदय से देखते हैं । बालक की एक एक क्रीडा, उसका एक एक प्रश्न, उसकी समस्या, उसका एक एक हाव भाव उन्हें भाव विभोर कर देता है । बालक का पलटना, दोहरी लाघना, घुटरुवों चलना, पावों चलना, बालक की हठ ये सब प्रसंग जो सामान्यतः जीवन में देखे जाते हैं, कवि की सूक्ष्म अंतदृष्टि और उसकी भाव विभोरता के कारण काव्य रस के अगाध स्रोत बन गये हैं । साथ ही बाल सौंदर्य के उद्घाटन के साथ साथ बाल हृदय का अवगाहन किया है । बालक का सुन्दर मुखड़ा देखकर माता तथा सखियों के ममताभरे हृदय में क्या बीतती है इसका भी चित्रण किया है । हृदयगत भावों को उकेरने में सूर अपना सानी नहीं रखते । प्रेम बाल्यावस्था में पारस्परिक आकर्षण, कौतूहल, जिज्ञासा आदि भावों के रूप में अंकुरित होकर किस प्रकार युवावस्था में स्थायी प्रणय का रूप ले लेता है इसका भी मनोवैज्ञानिकता पूर्ण विवरण सूर ने अपने काव्य में दिखाया है । उसी प्रकार कृष्ण के विरह में गोपियों का मन और हृदय किस हद तक विकल हो गया इसका भी जीता जागता वर्णन सूर ने दिया है ।

सूरदास पर वेदों, उपनिषदों, पुराणों और पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव देखा जाता है । उन पर भागवत महापुराण का प्रभाव तो है ही साथ ही ब्रह्मवैवर्त पुराण, पद्मपुराण आदि का प्रभाव भी देखा जा सकता है । उनकी राधा-कृष्ण लीला पर ब्रह्मवैवर्त और पद्मपुराण का असर देखा जा सकता है । लेकिन सूरदास ने पुराणों की कथाओं का छायानुवाद नहीं किया है । सूर में मौलिकता का विशेष आग्रह होने से कहीं कहीं वह पौराणिक कथाओं में मौलिकता का इतना समावेश कर सके हैं कि कथाओं का रूप ही बदल गया है और वे अधिक ग्राह्य बन गई है ।[1]

---

1. सूर समीक्षा - रामरतन भटनागर - पृ. 64

कुछ एक कृष्ण लीलाओं के वर्णन में उनपर बारहवीं शताब्दी के संस्कृत कृष्ण भक्त कवि बिल्वमंगल का प्रभाव देखा जा सकता है । राधा का मान खंडिता प्रसंग जैसे प्रसंगों पर जयदेव का प्रभाव देखा गया है । दर्शन पर उपनिषदों का प्रभाव देखा जा सकता है । जयदेव के पद लालित्य और राग ताल का प्रभाव भी सूर पर पड़ा है ।

सूरदास श्रीकृष्ण के अग्रगण्य भक्त थे । उनमें पुष्टिमार्गीय भक्ति के सभी तत्व जैसे नाम कीर्तन, गुरु भक्ति, लीला गान, नित्य नैमित्तिक कार्य, भगवान के रूप का ध्यान आदि सभी तत्व मिल जाते हैं । पुष्टिमार्गीय भक्ति में भगवान अपने भक्त पर पूर्ण अनुग्रह करते हैं । भगवान स्वयं भक्त की रक्षा भी करते हैं । उनके कृष्ण सगुण है, निर्गुण है, अद्वैत अलख, निरंजन तथा निर्विकार है । समस्त चराचर जगत उन्हीं का रूप है । उन्होंने संसार की सांसारिकता तथा असारता को अनुभव किया है । उन्होंने भक्तिविहीन जीवन की व्यर्थता को व्यक्त किया है । विनय के पदों में उन्होंने विरक्त भाव से ओतप्रोत दैन्य भाव की दास्य भक्ति को उजागर किया है । उनके अनुसार अविद्या के दूर होने पर समस्त चराचर जगत कृष्णमय दिखाई देने लगता है । उन्होंने संसार के समस्त संबंधों, व्यापारों तथा मनोभावों को कृष्णोन्मुख करने का उपदेश दिया है । उनके अनुसार व्रज की लीला सत्य है । जो सत्य है वह अवश्य ही नित्य है । उन्होंने वृन्दावन तथा गोपियों की नित्य लीला का चित्रण करके लौकिक मनोविकारों तथा सांसारिक विषय वासनाओं की सार्थकता सिद्ध की है । माया को वे श्रीकृष्ण की योग माया मानते हैं । उनके समक्ष मनुष्य जीवन की सार्थकता भक्ति में ही है । उनके अनुसार वही मनुष्य का एक मात्र धर्म है । आत्मज्ञान भक्ति के बिना संभव नहीं । योग तो भक्ति विहीन होकर निरर्थक होता है ।

भगवान की भक्तवत्सलता का सूर ने सर्वत्र प्रशंसा की है । निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप का औचित्य भगवान की कृपालुता में प्रकट होता है । वे निराकार होते हुए भी भक्तों के लिए अकरणीय और असंभव कार्य करते हैं । भक्तों पर कृपा करना उनका सहज स्वभाव है । हर वक्त भक्तों की सहायता करने में वे दौड़े चले आते हैं । उन्होंने राधा में भक्ति की पूर्णता दिखाई है । सूरदास के अनुसार भक्तों को राधा की तरह होना चाहिए जो हर वक्त, पल पल, कृष्ण को दिल में छिपाए रखती है । इसके साथ ही सूर ने नवधा भक्ति और नारद भक्ति सूत्र की भक्ति के ग्यारह रूपों का वर्णन भी किया है ।

कोरा सिद्धांतवाद भक्त हृदय को कतई आकर्षित नहीं कर सकता । इसीलिए सूर ने कृष्ण लीला के माध्यम से दर्शन को प्रस्तुत किया है । सूर के लिए तो कृष्ण लीला ही बहुत बडा रहस्य था । उनके अनुसार भक्त को भगवान की लीला में भाग लेने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । भगवान की लीला का ध्यान करना और उसमें डूब जाना यही भक्ति भाव तथा मोक्ष प्राप्ति की पराकाष्ठा है । अनेक भक्त एक ही भगवान की उपासना करते हैं और आसक्ति की अनेक दशाओं को प्राप्त करते हुए, उन्हीं की कृपा से मुक्त हो जाते हैं । भक्ति और दर्शन उनके काव्य में इतने घुल मिल गये हैं कि उन्हें अलग करना वाकई मुश्किल है ।

दार्शनिक तत्ववाद में सूर की कोई विशेष रुचि नहीं थी । फिर भी कहीं कहीं उन्होंने शुद्धाद्वैत दर्शन के अनुसार ब्रह्म, जीव, ईश्वर, माया और जगत का चित्र खींचा है । उनके अनुसार गोप और गोपी जीवात्मा के प्रतीक हैं । कृष्ण ब्रह्म हैं । वेणु उनकी माया है । ब्रह्म के अनुग्रह प्राप्त करने के बाद जीवात्मा राधा का प्रतीक हो जाता है । अंत में ब्रह्म स्वरूप हो जाता है । सूर जीवात्मका परमात्मा में अभेद

ते हैं । लेकिन लीला के लिए जीवात्मा परमात्मा में भेद हो जाता
। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है - विद्वानों ने सूर सागर के पदों
ल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों को खोजने का प्रयत्न किया है । पर
बात यह है कि लीला विषयक मूल सिद्धान्तों के अतिरिक्त सूर-सागर
न्य दार्शनिक सिद्धान्तों की बहुत स्पष्ट चर्चा नहीं है । लगता है
निक तत्ववाद में उन्हें विशेष रुचि नहीं थी ।[1]

भक्ति और दर्शन के साथ साथ उनका काव्य पक्ष भी
रहा है । सूर का काव्य सौन्दर्य की अक्षय संपदा, भाषा का भास्कर,
लित्य की रागिनी और संगीत का अनहद नाद है जिसका वैशिष्ट्य
स्वयं ही है ।[2]

सूरदास ने सूर सागर को गीतिकाव्य के रूप में प्रस्तुत
ा है । गीत शैली हृदय की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए
ंत उपयुक्त है । शैली आत्मपरक विषयात्मक होने के कारण उसमें हृदय
स्पर्शी करनेवाली द्रावक शक्ति दिखाई देती है । सूर की शैली में विविधता
दिखाई देती है । कभी प्रसंगानुकूल कभी धाराप्रवाह कभी नाटकीय कभी
धा कभी लाक्षणिकता युक्त व्यंग्य की है ।

सूर का हृदय इतना प्रबल है कि वह जिस विषय को
छूता है, उसे उच्च कल्पना और भावों की गरिमा से अलंकृत कर
कोटि का काव्य बना देता है । सूर के प्रत्येक शब्द में मानव हृदय
तन्मय कर देने की अद्भुत शक्ति भरी हुई है । उनमें भावों की

आलोचना : वर्ष 30 नवांक 44 जन-मार्च 78, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
का आलेख सूर काव्य : प्रेरणा और स्रोत - पृ. 6

प्रधानता है, उद्भावना शक्ति है, चमत्कारपूर्ण कल्पना है और है चित्रमयता। मनुष्य की चित्तवृत्तियों, मनोरागों, भाव-अनुभूतियों और गंभीर आध्यात्मिक अनुभवों को सजीव बिंबों में निःशेष भाव से चित्रित करके सूरदास को जनमानस के साथ आत्मीयता स्थापित करने में सफलता मिली।[1]

सूर की कविता का प्रधान गुण उसकी रागात्मक भाव संकुलता है। उन्होंने अपने पदों को प्रसंगानुकूल राग रागिनियों में ढाला है। उन्होंने पदों को गाने के लिए 88 राग रागिनियों का प्रयोग किया है। उनके मुख्य राग हैं - आसावारी, बिलावल, घनाश्री, सूहा, कान्हारा, केदार, मलार, मारू, रामकली, गौरी, श्री, देवगिरि, कुरंग, हमीर, मुलतानी, षटपदी, जंजला, झिंझोटी, अहीरी, गुजर, बिहाग, गौंड, कामाद, गान्धार, बिहालडा, चैतश्री, पीलू, ललित, भैरवी, मालकोस, भूपाली, बसन्त, तोडी, शंकराभरण, पूरिया, सानुत होरी, सोरठी, अडाना, देवसारव, कर्नाट, बैराटी, विभास, सूहाबिलावल, राड़ी, हठीली, पूर्वी आदि। आचार्य शुक्ल सूर सागर की संगीतात्मकता के संबंध में यों कहते हैं - सूर सागर में कोई राग या रागिनी छूटी न होगी। इससे वह संगीत प्रेमियों के लिए भी बडा भारी खजाना है। गीत काव्यकारों में भी सूरदास का स्थान शीर्षस्थ है। उन्होंने जितने अधिक गीत रचे हैं उतने संसार की किसी भी भाषा में शायद ही किसी एक व्यक्ति ने रचे हों। उनके द्वारा प्रयुक्त राग रागिनियों की विविधता को देखकर तो आश्चर्य होता है।[2] वास्तव में यदि काव्य और संगीत का सच्चा समन्वय कोई प्रकृत रूप से कर सका है तो वह सूर ही है।[3]

---

1. महाकवि सूर : एक पुनश्चिन्तन - व्रजेश्वर वर्मा - पृ. 254
2. सूरदास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 200
3. सूर एक अध्ययन - शिखरचन्द्र जैन - पृ. 37

सूर ने सूरसागर में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है । उन्होंने ब्रजभाषा के उत्कृष्टतम साहित्यिक रूप का प्रयोग किया है । उनकी भाषा सरल, सरस, प्रवाहपूर्ण तथा प्रसादगुण से युक्त है । ब्रजभाषा के बोलचाल के रूप का प्रयोग भी उन्होंने किया है । तद्भव, तत्सम, देशी तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है । सूरसागर में बाल लीलाओं की अपेक्षा किशोर लीलाओं के पदों की भाषा तद्भव प्रधान और व्यावहारिक है किन्तु परिमार्जन के साथ आलंकारिकता अपेक्षाकृत उसमें अधिक है । यह भाषा शैली सूर की प्रौढ़ अनुभूति, अतिसंवेदनशीलता, अकृत्रिम ऐन्द्रियता, आकर्षक ऋजुता एवं आडम्बरहीनता को व्यक्त करती है । कथा प्रसंगों की भाषा में सरलता, सजीवता और स्वाभाविकता विशेष रूप से मिलती है । इन प्रसंगों में ज़्यादातर वर्णनात्मक शैली का प्रयोग मिलता है । सूर के काव्य प्रसंगों के बारे में हरवंशलाल शर्मा का कहना है - इन प्रसंगों में आनन्दवर्धन की व्यंजना, कुन्तक की वक्रोक्ति और विश्वनाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ की रसानुभूति मानो दाँव पेंच से अपना-अपना सिक्का जमाने की धुन में है । व्यंजना के गहन से गहन अद्भुत व्यापार, वक्रोक्ति की विदग्ध जन-मनोरंजक शब्द क्रीडा तथा रसों की सहृदय वेध अनुभूति मानों साक्षात् रूप धारण करके अभिव्यंजित होती है ।[1] उन्होंने रस, छन्द और अलंकार का यथायुक्त प्रयोग किया है । वर्णन परंपरा का भी उन्होंने निर्वाह किया है । प्रकृति वर्णन, ऋतुवर्णन, विरह वर्णन आदि हृदयस्पर्शी ढंग से वर्णित किया है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सूर की भाषा का रूप अधिक सुसंस्कृत तथा परिमार्जित रहा है । भाषा आवश्यकतानुसार समलंकृत, छंद वर्णन प्रसंग के अनुकूल तथा शैली प्रसंगानुसार प्रवाहपूर्ण है । सूर का काव्य तो सदाबहार काव्य है । वे न किसी संप्रदाय के कवि हैं और न किसी काल विशेष के । वे तो एक प्रकार से विश्व कवि हैं ।[2]

---

1. सूर काव्य की आलोचना - डॉ. हरवंशलाल शर्मा
2. सूर साहित्य - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 73

तुलसीदास की श्रीकृष्णगीतावली

श्रीकृष्णगीतावली काव्य तुलसी के साहित्य में विशेषत: भक्तिकालीन साहित्य में अपना अलग महत्व रखता है । यह 61 स्फुट पदों का संग्रह है । यह एक गीतिकाव्य है और सफल गीतियों के ज़रिए इसमें श्रीकृष्ण कथा का अंकन किया गया है । तुलसीदास ने स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कृष्ण चरित का गान किया है । आधार तो श्रीमद्‌भागवत पुराण ही रहा है । लेकिन गीतिकाव्य होने के नाते इसमें कृष्ण कथा प्रसंगों को उतना महत्व नहीं प्राप्त हुआ है जितना कि भक्तिकाल के किसी और प्रमुख कृष्ण काव्य को मिला हो । कथा की क्षीण धारा चुने हुए कृष्ण कथा प्रसंगों से होकर चलती रहती है जिसमें कवि की कल्पनाशीलता और काव्य कला अपने ढंग की निराली है । गीतिकाव्य के लिए आवश्यक समस्त गुण कृष्णगीतावली में विद्यमान हैं । इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि तुलसी ने कृष्ण कथा के क्षणिक प्रसंगों को गीति योजना के योग्य बनाकर इसमें स्वीकार किया है ।

श्रीकृष्णगीतावली में आये हुए कृष्ण कथा प्रसंग प्राय: कृष्ण कथा के प्रमुख एवं परिशुद्ध प्रसंग ही रहे हैं । श्रीमद् भागवत में चित्रित कृष्ण कथा के प्रसंग प्राय: भक्तिकालीन कृष्ण काव्यों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । लेकिन जहाँ तक श्रीकृष्णगीतावली का संबंध है ये प्रसंग वैसे ही स्वीकार नहीं किये गये हैं जैसे श्रीमद् भागवत या अन्य काव्यों में मिलते हैं । तुलसीदास पहले भक्त थे फिर कवि । इस वजह से श्रीकृष्णगीतावली में भक्ति का पुट भी मिलता है साथ ही कला की दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व रहा है ।

श्रीकृष्णगीतावली में तुलसीदास ने निम्नलिखित विषयों पर पद रचे हैं - बाल लीला, गोपी उपालम्भ, ऊखल बंधन, इन्द्र कोप, गोवर्द्धन धारण, छाक लीला, सौंदर्य वर्णन, गोपिका प्रेम, मथुरागमन, गोपी विरह, भ्रमरगीत और द्रौपदी चीर हरण । इस काव्य के माध्यम से

तुलसी ने सहज शैशव, भोलेपन, सौंदर्य और पवित्रता तथा सात्विक यौवन की दुनिया में गोपियों की भावासक्ति, भ्रमरगीत, निर्गुण साधना की नीरसता का उद्घाटन, द्रौपदी चीर हरण में भक्त की सहायता करने की भगवान की आतुरता आदि पर प्रकाश डाला है । इस प्रकार वर्णन करके तुलसी ने कृष्ण लीला के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैलाया है और उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन ने कृष्ण चरित्र को उत्कृष्ट साहित्य का रूप दिया है ।

श्रीकृष्णगीतावली में कृष्ण चरित के वर्णन से तुलसी ने अपने अन्तर्मन के भावों को व्यक्त करने की कोशिश की है । गोपी विरह और भ्रमर गीतों में उनके व्यथित मन की करूण पुकार गूँज उठती है । तुलसी की जो सौंदर्य और श्रृंगार वृत्ति राम कथा के माध्यम से नहीं हो पायी, वह श्रीकृष्ण-गीतावली में हो गयी ।

श्रीकृष्णगीतावली में तुलसीदास ने लीला तत्व की शुद्धता को बरकरार रखा है । कृष्ण चरित-लीला संग्रह होने के नाते भाव-स्फीति गीति शैली में ही संभव थी । प्रसंगापेक्षी गीतों की शैली का भी प्रयोग किया है । श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्ष को अच्छी तरह प्रकट किया गया है ।

गीति काव्य होने के नाते संगीतात्मकता का गुण इसमें भरपूर मात्रा में देखा जा सकता है । भावानुकूल राग रागिनियों का प्रयोग किया गया है । इसमें 10 रागों का प्रयोग किया गया है । सर्वाधिक पद राग मलार में और उसके बाद क्रमशः राग गौरी, केदारा, आसावारी, धनाश्री, सोरठा, कन्हारा, नट और ललित में निर्मित हैं ।

इसमें कुल 61 पद हैं । काव्य सौंदर्य की दृष्टि से यह एक अत्युत्कृष्ट रचना है । रस और अलंकार का प्रयोग भरपूर मात्रा में हुआ है ।

U8908·

भाषा पश्चिमी ब्रज है । स्थानीय शब्दों के प्रयोग से रचना में स्वाभाविकता और मौलिकता का पुट दृष्टिगोचर होता है । यत्र तत्र पौराणिक प्रसंगों से भी सहायता ली गयी है । तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों का प्रयोग भी रचना में मिलता है ।

इस काव्य के माध्यम से तुलसी ने विष्णु की सर्वव्यापकता को स्थापित करने का प्रयत्न किया है । तुलसी श्रीराम के अनन्योपासक होने पर भी श्रीकृष्ण में अतीव श्रद्धा रखते थे । हृदय की कोमल भावनाओं का चित्रण असरदार ढंग से इस रचना में तुलसीदास ने किया है ।

मीरा और उनकी पदावली

गत अध्याय में मीरा के जीवन चरित के बारे में विस्तार से दिया गया है। इस अध्याय में उनकी प्रमुख कृति "मीरा की पदावली" के बारे में विस्तृत रूप से विवेचन किया जा रहा है ।

"मीरा की पदावली" उनकी सबसे प्रमुख और विख्यात रचना है । यह समय समय पर लिखे गये स्फुट पदों का संग्रह है । सभी विद्वान इस बात पर एकमत हैं कि यह मीरा की प्रामाणिक रचना है । लेकिन मीरा की पदावली के पदों की संख्या के बारे में मतऐक्य नहीं है । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार "वास्तव में मीरा बाई के अनेक पदों की भी कबीर साहब आदि की भाँति ही, बहुत कुछ दुर्दशा हो गयी है । जिस किसी ने गाया है, उसने उन्हें अपने रंग में रंगने की चेष्टा की है और अपने अपने विचारानुसार मीरा के ढर्रे पर कितने ही ऐसे स्वरचित पद्य प्रचलित कर दिये हैं जो बिना ध्यानपूर्वक देखे भाले किये, मीरा रचित ही जान पड़ते हैं ।"[1] ऐसी स्थिति में मीरा के असली पदों की संख्या निर्धारित करना अत्यंत दुष्कर है ।

---

1. मीरा बाई की पदावली - आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - पृ. 28.

मीरा ने अपनी पदावली में अपने इष्टदेव कृष्ण का गुण गान और उनकी कोमल एवं मधुर लीलाओं का वर्णन करने का प्रयास किया है । मीरा ने कृष्ण की बाल लीला, नाग लीला, चीरहरण लीला, पनघट लीला, फाग लीला, दधि बेचन लीला, मथुरा गमन, बंशीवादन, उद्धव संभाव आदि प्रसंगों का वर्णन किया है । मीरा का कवि मन कृष्ण की बाल लीलाओं के रंग में रंगा है । वृन्दावन की कुंज गलियों में नाचते हुए नन्दकिशोर की मनोहर छवि मीरा की जीवन निधि बन गयी । लीला विहार के वर्णन में मीरा ने वंशीवादन के चमत्कारी प्रभाव का वर्णन किया है । मीरा अपने प्रियतम की मुरली का स्वर सुन कर अपनी सुधबुध खो बैठती है । पनघट लीला मीरा को अच्छी लगती है क्योंकि उसमें मीरा अपने प्रियतम के प्रति प्रणय-निवेदन का अवसर अधिक पाती है । अपने प्रियतम के अपार रूप सौंदर्य पर "लुट जाने" के लिए ललायित मीरा किंकर्तव्यविमूढ सी हो जाती है ।

कृष्ण लीला वर्णन में मीरा को सबसे अधिक सफलता प्रेमाभिव्यक्ति के प्रसंगों में मिली है । मीरा श्रीकृष्ण प्रेम में इतनी डूबी हुई है कि उसे अपने प्रियतम के अतिरिक्त किसी भी अन्य मानवीय भाव की अभिव्यक्ति में वास्तविक आनन्दानुभूति नहीं मिल पाती । उनके प्रेमाभिव्यक्ति प्रसंगों में मिलन का स्वच्छन्द विलास सदैव झलकता रहता है । कृष्ण लीला वर्णन में उनकी सब से बडी विशेषता यह है कि मीरा ने केवल सात्विक मानवीय भावों का वर्णन किया है । ये लीलाएँ उनकी मन बहलाव की चीज़ नहीं बल्कि उनके सर्वात्म समर्पण की पराकाष्ठा है । उनके संयोग वर्णन में यौवन की उच्छृंखलता नहीं एक सद्गृहस्थ नारी का मार्दवपूर्ण प्रेम है ।

विरह को प्रेम की कसौटी माना जाता है । मीरा ने अपनी पदावली में अनेक पदों में विरह का वर्णन किया है । इसमें मीरा अपने मानसिक कष्टों का वर्णन करती है । कृष्ण के न मिलने से वह कितनी

व्याकुल है, बेचैन है, उसका हाल कैसा है इन सबका वर्णन विरह के पदों में प्राप्त होता है । मीरा के विरह वर्णन में उनके विरह दग्ध हृदय का समग्र चित्र सहज सुलभ है । उनके प्रत्येक पद में, प्रत्येक पंक्ति में, शब्द में, भाव में उनकी स्वानुभूति का स्पर्श विद्यमान है । उनके समस्त विरह वर्णन में जीवन की सहज गति हर वक्त बनी रहती है । इसमें अस्वाभाविकता की झलक तनिक भी नहीं है । उनके विरह वर्णन में एक सच्चे प्रेमी की व्यग्रता एवं विवशता से परिपूर्ण मार्मिक पीड़ा की सच्ची कथा सुनाई पड़ती है । उनकी वेदना की अभिव्यक्ति में उनके हृदय की आर्त व्यथा है । इसीलिए मीरा को राधा का अवतार माना जाता है ।[1]

"मीरा की पदावली" में रूप सौंदर्य और भाव सौंदर्य कूट-कूट कर भरे हुए हैं । अपने प्रियतम कृष्ण के प्रति मीरा का जो प्रेम भाव है वह अलौकिक है । उसमें एक प्रेम दग्ध हृदय की छटपटाहट, एक प्रेमिका के हृदय की प्रियतम से मिलने की तड़प दिखाई पड़ती है । रूप चित्रण मादक एवं विशिष्ट बन गया है । मीरा अपना अधिकांश समय अपने इष्ट की मूर्ति के सामने बिताती थी । कृष्ण के रूप सौंदर्य की ओर उनका मन अनायास ही लग गया । उन्होंने अपने प्रियतम के रूप सौंदर्य को जी भर निहारा है । इसीलिए अपनी पदावली में उनके बाह्य रंग का वर्णन करने में मीरा ने कोई कसर नहीं उठा रखी है ।

---

1. मीरा संभवतः राधिका का अवतार ही थीं । उनका आचरण समस्त जीवन और कृष्ण प्रेम जैसे इस धारणा को पुष्ट करता है । इसीलिए तो उन्होंने पदों में कृष्ण के साथ पूर्व जन्म का संबंध और पुरानी प्रीति का हवाला दिया है ।
मीरा काव्य का गीतिकाव्यात्मक विवेचन - डॉ. माधुरी नाथ - पृ. 128

रूप सौंदर्य के साथ-साथ भाव सौंदर्य का भी वर्णन हुआ है । मीरा का लक्ष्य अपने प्रियतम के प्रति सर्वात्मसमर्पण है । यही कारण है कि उनके पदों में तड़प, वेदना और अनूठी पीड़ा सर्वत्र विद्यमान है । इस समर्पण भाव को अभिव्यक्त करने की उनकी लेखनी हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है । नारी होने के नाते आत्मसमर्पण करने की क्षमता और अहेतुक प्रेम की पराकाष्ठा मीरा में देखा जाता है । मीरा के प्रेमोद्गार सर्वाधिक सहज रूप में अभिव्यक्त हुए हैं और यही सहजता अभिव्यक्ति का सौंदर्य है । जीवन की सहज प्रगति मीरा काव्य की अनन्य विशेषता है।

मीरा के कृष्ण उनके स्वानुभूत प्रेम के परम आधार है । कृष्ण मीरा के प्रेम के भावात्मक प्रतिबिंब हैं । उन्होंने कृष्ण में संपूर्ण आत्मसमर्पण किया है । कृष्ण के प्रति उनका अनुराग सहज एवं स्वाभाविक हैं । वे कृष्ण को अपना पति मानती थीं । वे गिरिधर की प्राणवल्लभा है, प्रियतमा है, दासी है । उनके कृष्ण भक्तवत्सल है, सर्व समर्थ है, अनन्त अविनाशी ईश्वर है तथा संतन सुखदाई है । उन्हें कृष्ण का गिरिधर नागर नाम बेहद पसंद था । उनके अनुसार "नागर" में प्रेम कूट-कूट भरा हुआ है । मीरा के कृष्ण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके कृष्ण किसी भी दार्शनिक मन्तव्य के प्रतिरूप या साम्प्रदायिक मॉडल नहीं है ।"[1] डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार मीरा के कृष्ण का स्वरूप पौराणिक कथाओं के अनुरूप नहीं है ।.... मीरा ने केवल व्यक्तिगत ईश्वर की भावना रखी है जिसमें रूप सौंदर्य और प्रेमाभिव्यक्ति है ।[2]

---

1. हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास - डॉ. तपेश्वरनाथ - पृ. 326
2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा - पृ. 836

मीरा के कृष्ण में मूर्त तथा अमूर्त निराकार तथा साकार और पार्थिव तथा अपार्थिव का अद्भुत मिश्रण है । उनके कृष्ण में लौकिकता तथा अलौकिकता का स्पष्ट छाप दिखाई देती है । जिस जोगी पर वह मर मिटती है वह एक असाधारण जोगी है । मीरा के मन में प्रेम की अग्नि लगाकर कहीं चला गया है । इस आराध्य के प्रति अनुभूति की तीव्रता के साथ उनके प्रेम के मूल में जोगी के सौंदर्य, गुण और निष्ठुरता का चित्रण प्रधान है । उनके कृष्ण का प्रधान रूप कृष्ण का लीलामय रूप है, चेष्टाशील रूप है । मीरा के श्याम की सजीवता अनुपम है । अलौकिक रूप की कल्पना अनुभूतिमूलक है । नटवर कृष्ण उनकी अनुभूति के अणु अणु में समाए हुए हैं ।

मीरा के काव्य की आत्मा भक्ति है । उनके लौकिक जीवन की अभावजन्य कुंठाओं, बालपन के संस्कारों तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के मेल से उनकी भावनाएँ भक्ति के रूप में उभरी । उनके काव्य में विशुद्ध भक्ति का निदर्शन है । माधुर्य मीरा के काव्य का प्राण है । मीरा तो माधुर्य भक्ति की साकार प्रतिमा है । माधुर्य भक्ति के लिए जिस कोटि का आत्मसमर्पण वांछित है, वह मीरा की नारी प्रकृति में निहित था । अतः उनकी माधुर्य भक्ति सहज और स्वाभाविक लगती है । उनके माधुर्य भक्ति के आत्मनिष्ठ रति के कारण उनके कृष्ण पुराणोक्त कृष्ण न रहकर मीरा के कृष्ण बन गये हैं । इसी नाम से वे प्रसिद्ध भी हुए । प्रेम पुजारिन मीरा ने केवल कान्ता भाव से अपने को कृष्णार्पित किया था । मीरा का प्रेम स्वकीया का प्रेम है ।

---

1. माधुर्य भाव की भक्ति करनेवाली मीरा के लिए अपने प्रियतम भगवान की सभी विशेषताओं को छोड उनका मधुर्य सौंदर्य ही सबसे अधिक आकर्षक है । मीरा के भगवान शीर्षक अंश, मीरा बाई - डॉ. कृष्णलाल - पृ. 132

मीरा में काव्य रचना में नैसर्गिक प्रतिभा थी । उनकी कला उनकी सरस अनुभूतियों तथा आडंबरहीन सरलता में निहित है । मीरा की पदावली स्फुट पदों का संग्रह है । मीरा के इस कृति में गीति काव्योचित तीव्रता है, संक्षिप्तता है, संवेगात्मक एकता है, स्वानुभूति तथा संगीतात्मकता है ।

मीरा के काव्य में संगीत योजना क्रमबद्ध रूप में आयी है । उन्होंने पदों को प्रसंगानुकूल राग रागिनियों में ढाला है । संगीत शास्त्र का उन्हें सामान्य ज्ञान था । मीरा ने संगीत का प्रयोग भावाभिव्यक्ति को मार्मिक बनाने के साधन के रूप में किया है । मीरा की पदावली में मुख्यत: निम्नलिखित राग रागिनियों का प्रयोग हुआ है - राग तिलक, ललित, हमीर कान्हारा, त्रिवेनी, गुजरी, नीलाम्बरी, कामोद, मुल्तानी, मालकोस, झिंझोटी, पटमंजरी, गुनकली, मांड, धानी, पीलू, खम्माच, पूरिया कल्याण, अगना, पहाडी, जौनपुरी, सोहनी, सूर, सोरठ, विहागरा, बिलावल, दरबारी, मलार, रामकली, विहाग, श्याम कल्याण, जोगिया, होली, सावन, बागेश्वरी, सातनी कल्याण, सारंग, आनन्द भैरवी, भैरवी, टोडी, देरू, आसावारी, अलैया, प्रभावती, प्रभाती, धुन लावनी, कोसी, भीम पलासी, सिंध भैरवी, कोशी और राग कलिंगडा ।

मीरा की पदावली में व्रजभाषा, राजस्थानी, पंजाबी तथा गुजराती भाषाओं का प्रयोग किया गया है । उनकी भाषा में भावों की प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति का पूर्ण सामर्थ्य है । भावों और शब्दों के

बीच एक अद्भुत प्रवाह है । शब्द सीधे साधे, सरल तथा बोलचाल के हैं । मीरा की कविता की सबसे महत्वपूर्ण शिल्पगत विशेषता उसकी निरलंकृति या सपाटबयानी है ।

मीरा ने अपने पदावली में छंदों और अलंकारों का भी प्रयोग किया है । मीरा ने दोहे, कवित्त, सवैये आदि छंदों का प्रयोग किया है । अलंकार भी प्रसंगानुकूल प्रयुक्त हुए है । मीरा के काव्य में अलंकार स्वयं आये हैं । अलंकारों के लिए मीरा ने काव्य नहीं लिखा । मीरा ने रूपक, अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति, उदाहरण, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है ।

रसखान

हिन्दी साहित्य में मुसलमान कवियों का योगदान गुणात्मक एवं विशिष्ट है । इनमें रसखान का स्थान मूर्धन्य है । उनका कृष्ण प्रेम धर्म और संप्रदाय की सीमाओं से परे हैं । वे सच्चे अर्थ में भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि हैं ।[1]

सुजान रसखान, प्रेम वाटिका तथा दानलीला उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं । इसका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय कृष्णलीला का अंकन है । सुजान रसखान में रसखान ने केवल श्रीकृष्ण को ही काव्य का आलंबन बनाया है ।

---

1. रसखान रचनावली - विद्यानिवास मिश्र - पृ.5

कृष्ण जीवन से संबंधित अनेक लीलाएँ, रसभरे जीवन व्यापार तथा विविध क्रीडाएँ, रसखान ने सरस ही चित्रित किए हैं । इनके चित्रित प्रमुख प्रसंग इस प्रकार हैं - प्रेम, भक्ति, बाल लीला, गोचारण, चीरहरण, कुंजविलास, रासलीला, पनघटलीला, वनलीला, गोरसलीला, राधारूप वर्णन, वय:संधि, सुकुमारता, वंशीवादन, पूर्वराग, अभिलाषा, रूपमाधुरी, प्रेमलीला, दधिदान, मिलन, वियोग, उपालंभ, सपत्नी भाव, चौपड, रिझवार, मानवती प्रिया, सुरत, सुरतांत, होली, भ्रमरगीत, भक्ति भावना, हरि शंकरी, अलौकिकता, नटखट कृष्ण, कृष्ण सौंदर्य, कालिय दमन, फागलीला, सखी शिक्षा, कुवलयापीड, उद्धव उपदेश, व्रज प्रेम आदि ।

रसखान का चित्रण सूरदास की भाँति अधिक गहरा नहीं है । लेकिन इनमें अपने ढंग की एक निराली तथा अनोखी मधुरिमा एवं सरसता है । उन्होंने कृष्ण, मुरली, गोपी आदि को प्रधान आलंबन के रूप में ग्रहण किया है तथा इनसे संबंधित विविध व्यापारों को आंगिक रूप में ग्रहण किया है । कृष्ण के सौंदर्य वर्णन में उन्होंने अपनी सिद्धहस्तता व्यक्त की है । गोपी कृष्ण संवाद अत्यंत स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक, सरल तथा सरस बना है ।

रसखान की गोपियाँ अपना सब कुछ छोडकर कृष्ण से मिलने के लिए बंधनों से संघर्ष कर रही हैं । घर के सयाने लोग नवागता वधू को कृष्ण के सामने न आने की सलाह देते हैं । मुरली का जादुई असर पर भी कुछ पद मिलते हैं । इसी संदर्भ में सपत्नी भाव की व्यंजना भी मिलती है । कवि का प्रतिपाद्य है कि यदि कृष्ण के चरणों में भक्ति नहीं, निष्ठा नहीं, प्रेम नहीं तो त्रैलोक्य व्यर्थ है ।[1] उनके श्रृंगार वर्णन में

---

1. रसखान : जीवन और कृतित्व- देवेन्द्रप्रताप उपाध्याय - पृ. 57

संयोग श्रृंगार का वर्णन अधिक मिलता है । इन वर्णनों में उन्होंने गंभीरता, शक्ति और सौजन्य की रक्षा की है तथा अश्लीलता, भद्दापन तथा गंवारपन को निकट से भी फटकने नहीं दिया । वे अनन्य तथा अटल भाव से प्रेमा भक्ति में संलग्न रहे ।

कृष्ण भक्त रसखान ने अन्य देवी देवताओं के चित्र खींचे हैं । उन्होंने, शिव, गंगा आदि पर अनेक छंद लिखे हैं । कृष्ण और शिव की अभिन्नता पर उन्होंने हरिशंकरी का प्रणयन किया है । यह सब उनकी धार्मिक उदारता के कारण है ।

सुजान रसखान के अलावा उनकी दो अन्य कृतियाँ प्रेमवाटिका और दानलीला हैं । प्रेमवाटिका में प्रेम भरे 53 दोहे संकलित हैं । इसमें उन्होंने प्रेम को ब्रह्मानन्द की तरह माना है । इन दोहों में रसखान ने प्रेम का मनोविज्ञानिक और विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है । प्रेम की परिभाषा, प्रेम की पहचान, प्रेम का प्रभाव, प्रेम प्राप्ति का साधन, प्रेम की सर्वश्रेष्ठता और प्रेम के आदर्श का उदाहरण देकर विशद रूप में समझाया है । दानलीला में ग्यारह कवित्त सवैये संकलित हैं । यह राधा और कृष्ण का सरस श्रृंगारिक संवाद है । कृष्ण राधा को रास्ते में छेड़ते हैं और दधि तथा माखन माँगते हैं । यह राधा कृष्ण के हास परिहास के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसके द्वारा अलौकिक, प्रेममय, आवेगों में सहज रूप में अभिव्यक्त किया है ।

रसखान स्वच्छन्द भावधारा के कवि हैं । उनके अनुसार सच्चा प्रेम गुण, रूप, यौवन, धन आदि से परे होता है । इसमें स्वार्थ की गंध तक नहीं होती न कामना होती है । वह मन की एक संवेदनात्मक स्थिति है जिसमें लेन देन नहीं होता ।[1] रसखान का प्रतिपाद्य विषय

---

1. बिनु गुन जोबन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि ।
   शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि ।। प्रेमवाटिका - 15

तो यह है कि प्रेम में एकांगिता आनी चाहिए जो स्वार्थ तजने पर ही आती है । दो प्रेमियों को एक दूसरे के परस्पर प्रेम प्राप्ति तक की आकांक्षा न रहे । परस्पर वे एक दूसरे के इष्ट हो जाए । उनके अनुसार अगर एक पक्ष से घृणा का भाव भी प्रदर्शित हो जाए तो भी प्रेमी को अपने मार्ग पर अटल रहना चाहिए और अपना अनुराग किसी भी हालत में कम न होने देना चाहिए । रसखान ने राधा कृष्ण के प्रेम को आदर्श रूप में ग्रहण किया है । इन्होंने इन दोनों को अपनी प्रेमवाटिका के माली और मालिन माना है । इनके अनुसार प्रेम का अभाव ही सब दु:खों का तथा संपूर्ण अल्पज्ञता की जड़ है । उनके अनुसार मन तभी शुद्ध होता है जब उसमें सच्चे प्रेम की अनुभूति होती है । वे प्रेम को हरि मानते हैं और हरि को प्रेम मानते हैं । हरि और प्रेम सूरज और धूप की तरह अभिन्न हैं ।[1] रसखान के लिए कृष्ण आराध्य से कहीं अधिक प्रेय है । कृष्ण से उन्होंने सख्य और कान्त भाव का संबंध स्थापित किया है ।

रसखान उच्च कोटि के भक्त थे । भक्ति के आचार्यों ने अलौकिक प्रेम को भगवद्भक्ति के प्रतीक माना तो रसखान ने लौकिक प्रेम को एकांगी निर्हेतुक एकरस माना है । वे अपने को भक्ति की सांप्रदायिक नीति से स्वच्छंद रखते थे । अत: वे भक्तिमार्गी कृष्ण भक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीति मार्गी कवियों सबसे पृथक स्वच्छन्द मार्गी प्रेमोन्मत्त भक्त थे ।[2] उन्होंने सात्विक प्रेम की भावना को उस पवित्र भूमि में, सौंदर्य के उस दिव्य लोक में पहुँचाया है जहाँ उसके पीयूष वर्षी स्वर भक्त और कवियों के प्राणों को एक समान ही आनन्द देते हैं ।[3] उनके अनुसार जीवन का

---

1. प्रेम हरि को रूप है त्यों हरि प्रेम सरूप ।
   एक होइ द्वै यों लसै ज्यों सूरज औ धूप ।। प्रेमवाटिका - 24
2. रसखानि: विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - पृ. 22
3. रसखान : जीवन और कृतित्व - देवेन्द्रप्रताप उपाध्याय - पृ. 107

उद्देश्य आनन्दानुभूति है जो प्रेमा भक्ति के बिना असंभव है । रसखान यह मानते थे कि भक्ति भावना आत्मा को परमात्मा के समीप आसीन कर देती है । प्रेम दानी, श्रीकृष्ण के सान्निध्य की प्राप्ति ही, रसखान के एक निष्ठ प्रेम भक्ति की प्रवीणता का लक्ष्य है ।[1]

रसखान ने अपने काव्य में दर्शन को स्थान नहीं दिया । वे ज्ञानी नहीं, भक्त थे । केवल भक्त । इसलिए भक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु से उनका कोई भी संबंध नहीं था । उन्होंने न धर्म, अर्थ और काम का विवेचन किया और न उनको मोक्ष की ही आवश्यकता पड़ी ।

रसखान की भाव शक्ति, सहजानुभूति, रससिक्त मनोभूमियों को अत्यंत सरस ढंग से प्रस्तुत करने की उनकी क्षमता, उनका भाषा माधुर्य तथा अनुप्रास प्रेम उनकी काव्य शैली की विशेषताएँ हैं । उन्होंने अपने विचारों को अनायास ही पदों में व्यक्त किया है । उनके अधिकांश पदों में रसखान शब्द की छाप मिलती है । उन्होंने गीत शैली को त्याग कर सवैया शैली को अपनाया । कवित्त, सोरठा तथा दोहों का भी प्रयोग किया है । श्रृंगार तथा करूण रस की अभिव्यक्ति के लिए सवैया अत्यंत श्रेष्ठ माना जाता है । सवैये में उनकी जीवन धारा के रस धने पड़ते हैं ।[2]

रसखान अन्तर तथा बाह्य वृत्तियों के चित्रण में सिद्धहस्त माने जाते हैं । उनकी वर्णयोजना, शब्दयोजना, चित्रयोजना, अनुभाव योजना, अप्रस्तुत योजना, अलंकार विधान, लय और गीत सब देखते ही बनता है । उनका उक्ति वैचित्र्य तथा वक्रोक्ति विधान तो अत्यंत श्रेष्ठ बन गया है ।

---

1. रसखान : जीवन और कृतित्व - देवेन्द्रप्रताप उपाध्याय - पृ. 113
2. वही - पृ. 218

रसखान ने अपने काव्य में शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने तत्सम, तद्भव, देशी तथा अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी रसखान ने किया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि "रसखान का रचना संसार अनंत का लीला व्यापार है। उसके क्रीडा कुंज की प्रतिच्छाया है।"[1]

मेलपुत्तूर नारायण भट्टत्तिरि और नारायणीयम्

नारायण भट्टत्तिरि का जन्म मलयालम वर्ष 735 (सं. 1560) को हुआ था। उनका जन्म निला नदी के उत्तरी तट पर स्थित तिरुनावा नामक क्षेत्र के समीपवर्ती पेरुमान ग्राम के मेलपुत्तूर मठ के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके जन्मस्थान का नाम कुरुबत्तुरंश है जो आज के पोन्नानी तालूक में है। मेलपुत्तूर परिवार का नाम है। भट्टत्तिरि जाति का सूचक है। केरल में ब्राह्मणों को नंपूतिरि या भट्टत्तिरि कहा जाता है। भट्ट वेदों के विद्वानों की उपाधि है। उनके पिता का नाम मातृदत्त भट्टत्तिरि था, जिन्होंने भट्ट मीमांसा में पूर्ण विद्वता हासिल की थी। नारायण भट्टत्तिरि सुशिक्षित थे। उन्होंने मीमांसा का ज्ञान अपने पिता से प्राप्त किया था, आगम निगमों का ज्ञान एक माधवाचार्य से, दामोदर से तर्क तथा व्याकरण का ज्ञान अच्युत पिषारडी से प्राप्त किया था।[2]

---

1. रसखान रचनावली - सत्यदेव मिश्र - पृ. 45
2. मीमांसादि स्वतातात निगममपिकलं माधवाचार्यवर्यात् ।
   तर्कं दामोदरार्यादपि पद पदवीमच्युताख्यात् बुधेन्द्रात् ।।
   प्रक्रियासर्वस्व - नारायण भट्टत्तिरि

नारायण भट्टत्तिरि उच्चशिक्षा के लिए अच्युत पिषारेडी के यहाँ पहुँचे । इसके बाद उनका विवाह अच्युत पिषारेडी की भाँजी से हुआ । शादी के बाद पढ़ाई के प्रति भट्टत्तिरि उदासीन रहने लगे । वे सदा लौकिक सुख भोगों में लिप्त रहा करते थे । अपने प्रतिभाशाली शिष्य की दुर्दशा देखकर पिषारेडी मन ही मन दुःखी हुए ।

एक दिन भट्टत्तिरि की नींद अत्यंत देर से खुली । सुबह का एकाध प्रहर बीत चुका था । पिषारेडी बरामदे में बैठकर पढ़ा रहे थे । तभी भट्टत्तिरि शिष्यों के बीच से चले गये । पिषारेडी को यह कतई पसंद नहीं आया । वे तुरंत बोल उठे -"अपना विशिष्ट ब्राह्मण जन्म यों बेकार नष्ट कर रहे हो । हा कष्ट ।" यह सुनकर भट्टत्तिरि की आँखें खुल गयी ।

फिर भट्टत्तिरि ने व्याकरण, अलंकार आदि शास्त्रों का गहन अध्ययन किया । भट्टत्तिरि का यह उत्कर्ष देखकर पिषारेडी मन ही मन बहुत खुश हुए । शिष्य के प्रति उनका वात्सल्य उमड़ पड़ा । भट्टत्तिरि भी गुरू को बहुत चाहने लगे थे ।

कुछ समय बाद पिषारेडी वात रोग से ग्रस्त हो गये । दवा-दारू सब कुछ किया परन्तु कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आया । रोग तो बढ़ता ही गया । जब सभी ओर से विफल हुए तो ज्योतिषी विधि के अनुसार सोच विचार किया गया । इसका परिणाम यह निकला कि पूर्व जन्म के दुरितों का कुपरिणाम है । फिर विधिवत् रूप से रोग परिहारार्थ कर्म शुरू किए गए । अंत में "कर्म विपाक दान" का अवसर आया । इसमें किसी ऐसे व्यक्ति से दान ग्रहण कराया जाता है जो ब्रह्मतेज से भरा हो । इस प्रकार करने से रोगग्रस्त व्यक्ति का रोग छूट

जाता था । अगर दान ग्रहण करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मतेज से न भरा होता तो रोग उसे लग जाता था, जिससे उसे मुक्ति नहीं मिलती थी । सोच विचार के बाद पिषारेडी के शिष्यों में से किसी ने भट्टत्तिरि का नाम सुझाया । भट्टत्तिरि अपने गुरु के लिए दान स्वीकारने के लिए तैयार हुए । फिर मंत्र पूर्वक गुरु के सारे पाप शिष्य ने ग्रहण किए । इसके फलस्वरूप पिषारेडी रोगमुक्त हो गये और भट्टत्तिरि को रोग लग गया । उस समय भट्टत्तिरि केवल छब्बीस साल के थे । रोगग्रस्त होने पर भी भट्टत्तिरि अपने किए हुए कार्य से अत्यंत संतुष्ट थे । फिर भट्टत्तिरि ने सुना कि गुरुवायूर, जिसे भूलोक वैकुंठ भी कहते हैं, श्रीकृष्ण के भजन से वातरोग से मुक्त हो जाते हैं । रोग मुक्ति के लिए वे गुरुवायूर आये और नारायणीयम् की रचना में जुड गये । वे प्रतिदिन एक दशक लिखकर भगवान श्रीकृष्ण को सुनाया करते थे । इस प्रकार सौ दिनों में नारायणीयम् की रचना पूरी हुई । नारायणीयम् की रचना पूरी होते होते वे पूर्णरूप से वातरोग से मुक्त हो गये । सं. 1586 में नारायणीयम् पूरा हुआ ।

नारायणीयम् में श्रीनारायण के ही दूसरे रूप भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की गयी है और इसके रचयिता का नाम नारायण कवि है । इसलिए इसकी नारायणीयम् नामसे प्रसिद्धि हुई । इसमें श्रीमद्भागवत के प्राय: सारे प्रसंग संक्षेप में वर्णित हैं । किसी भी घटना को अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने में नारायण कवि सिद्ध हस्त थे । नारायणीयम् से भट्टत्तिरि की बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है ।

यह ग्रंथ सौ दशकों में विभक्त है । कुल मिलाकर इसमें 1036 पद्य हैं । सामान्य रूप से एक दशक में दस पद्य है, कुछ एक में नौ पद्य है तो कुछ में ग्यारह पद्य संनिविष्ट हैं ।

नारायणीयम् पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव देखा जाता है । लेकिन भट्टत्तिरि ने भागवत में उल्लिखित कथा प्रसंगों को, ज्यों का त्यों नहीं लिया है । उन्होंने वे ही कथा प्रसंग चुने हैं जिनसे भगवान के दुष्ट दलन तथा शिष्ट परिपालन-रूप सामने आये तथा भक्ति की निरझरिणी भी बहती रहे । उनकी एक और विशेषता यह है कि उन्होंने प्रसंगों को उतना ही वर्णित किया है जितने वर्णन की आवश्यकता हो । कुछ प्रसंगों को तो संकेत मात्र में सीमित किया है । संपूर्ण कथा को संक्षिप्त करके प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता भट्टत्तिरि में अपार थी । ग्रंथ का लगभग आधे से भी ज़्यादा भाग अपने इष्टदेव कृष्ण की लीलाओं के वर्णन के लिए उन्होंने आरक्षित रखा । भागवत में पाये जाने वाले लंबे लंबे स्तवनों और धार्मिक तथा आध्यात्मिक व्याख्याओं को भट्टत्तिरि ने त्याग दिया । उसी प्रकार उन्होंने कृष्ण के स्वर्गारोहण का वर्णन नहीं किया बल्कि यादवों को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाकर वहीं छोड दिया । भागवत में कई अध्यायों में वर्णित कथाओं को उन्होंने संक्षिप्त कर प्रस्तुत किया । भागवत की ही तरह उन्होंने राधा का चित्रण नहीं किया । श्रीमद् भागवत के अलावा उन पर महाभारत, ब्रह्मांड पुराण, विष्णु पुराण आदि का भी प्रभाव देखा जाता है । साथ ही उन पर वेदों, उपनिषदों तथा शंकर के अद्वैतवाद का भी प्रभाव पडा है ।

नारायण भट्टत्तिरि ने नारायणीयम् में भगवान को संबोधित कर अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया है । फलत: भगवान उनके और पाठकों के सामने हमेशा उपस्थित हैं । प्रत्येक दशक के अंत में उन्होंने अपने योग क्षेम, रोगोन्मूलन, तापशांति आदि के लिए अपने इष्ट से प्रार्थना की है । किसी किसी प्रसंग में कथानक के बीच में भी अपनी आर्तियों का वर्णन किया है ।

नारायणीयम् को "केरल का भागवत" कहा जाता है । लोग इसे आशीर्वादात्मक ग्रंथ के रूप में देखते हैं । नारायणीयम् में वक्ता कवि हैं और श्रोता भगवान । दशकों के अंत में रोग शमन की प्रार्थना के द्वारा कवि भक्त और भगवान के बीच घनिष्ठता स्थापित करते हैं । दशक के अंत में किया गया निवेदन, प्रत्येक दशक को एक दूसरे से अलग कर देता है साथ ही एक ही श्रीकृष्ण लीला के वर्णन से पूरे काव्य में एक अविच्छिन्न धारा बहती रहती है जिससे पूरे काव्य में पूर्वापर संबंध जुड़ जाता है ।

नारायणीयम् में भक्ति तथा दर्शन को प्रधानता दी गयी है । उनकी भक्ति आर्त भक्ति के अंतर्गत आती है । इसमें उनकी अनुभूति की सच्चाई अभिव्यक्त होती है । उन्होंने भक्ति को मुक्ति का मार्ग बनाकर भक्ति और मुक्ति में अभिन्नता स्थापित की है । कठिन से कठिन दार्शनिक तत्वों को सरल तथा सरस रूप में प्रस्तुत कर सभी पाठकों को समझाने की उन्होंने भरपूर कोशिश की है । नारायणीयम् में उल्लिखित मुख्य कृष्ण कथा प्रसंग निम्नलिखित हैं । कृष्ण कथा का आरंभ कृष्णावतार प्रसंग से शुरू होता है जो सैंतीसवें दशक में आता है । इसके बाद श्रीकृष्ण का गोकुल गमन, पूतना उद्धार, शकटासुर वध, तृणावर्त वध, श्रीकृष्ण का जातकर्म संस्कार, कृष्ण की बाल लीला, विश्वरूप दर्शन, उलूखल बंधन, यमलार्जुन उद्धार, वृन्दावन गमन, वत्सासुर वध, बकासुर वध, अघासुर वध, ब्रह्मा का मोह, वत्स हरण, धेनुकासुर वध, कालिय दमन, दावानल पान, प्रलंबासुर वध, गौओं का दावानल से उद्धार, वेणुगीत, चीरहरण, द्विज पत्नियों का मोक्ष, गोवर्धन धारण, वरुण लोक से नन्दजी को लाना, रासक्रीडा, शंखचूड वध, वृषभासुर वध, केशी वध, व्योमासुर वध, मथुरा यात्रा, रजक वध, दर्जी, माली और कुब्जा पर कृपा, धनुर्भंग, कुवलयापीड वध, चाणूर-मुष्टिक और कंस का वध, उद्धव गमन, कालयवन उद्धार,

मुचुकुन्द पर कृपा, रुक्मिणी स्वयंवर, स्यमन्तकोपाख्यान, कृष्ण के अन्य विवाह, नृग मोक्ष, पौण्ड्रक वध, शाल्व और दन्तवक्त्र उद्धार, सुदामा चरित तथा वृकासुर वध । इस प्रकार सैंतीसवें दशक से लेकर नब्बे दशक तक कृष्ण कथा का वर्णन हुआ है ।

नारायणीयम् में भक्ति रस के साथ साथ काव्य रस का भी प्रमुख स्थान है । भाषा साहित्यिक संस्कृत है । नारायणीयम् एक प्रबंध काव्य भी है तथा मुक्तक भी । रस तथा भावानुकूल वर्णों और शब्दों का प्रयोग करने में भट्टतिरि सिद्धहस्त थे । जहाँ वात्सल्य, शृंगारादि कोमल भावों की अभिव्यक्ति अपेक्षित है, वहाँ मृदुल वर्णों, अक्षरों तथा समस्त पदों का प्रयोग देखा जाता है । जहाँ रौद्र या वीर रसों का प्रयोग हुआ है वहाँ स्वर तथा संयुक्त वर्ण और लंबे लंबे समासों का प्रयोग देखा जाता है । कवि ने परिस्थिति और शब्दों के माध्यम से रस-भाव जागृत किया है । कवि के विशाल शब्द भण्डार के कारण काव्य शैली अत्यंत प्रौढ और गंभीर बनी है । शृंगार, वीर, हास्य आदि रसों ने रसिकजनों का रंजन करने के लिए वे अद्वितीय थे । संस्कृत विद्वान कुञ्जुणी राजा का कहना है कि नारायणीयम् की संगीत भरी शैली, दार्शनिक तत्वों की सरलतम व्याख्या और भक्ति की सर्वव्यापकता के कारण इसे संस्कृत साहित्य की सबसे अच्छा भक्त्यात्मक गीत कहा जा सकता है ।[1] नारायण कवि संदर्भानुसार छंदों और अलंकारों का प्रयोग किया करते थे । वैदर्भी और गौडी शैली को प्रस्तुत करने में वे सिद्धहस्त

---

1. The melody of the meters, the sweet diction, the lucid exposition of sublime philosophical ideas and above all the favour of intease and sincere faith and devotion pervading throughout, make the poem one of the best devotional lyrics in Sanskrit literature-
The contribution of Kerala to *Sans.* literature - K.Kunjunni Raja - P.131

थे । अनोखे और निराले छंदों का प्रयोग भी इस कृति में देखा जाता है । शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के प्रयोग में वे बेजोड़ माने जाते हैं ।

नारायण कवि के लोकोत्तर कवित्व, विद्वता, सच्चरित्रता एवं स्तोत्र रचना से प्रभावित होकर अम्बलपुर नरेश राजा देवनारायण ने इनका विशेष सम्मान किया और इन्हें अपना सभा पण्डित बनाया । इन्हीं राजा की प्रेरणा से इन्होंने प्रक्रियासर्वस्व नाम का प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ लिखा । नारायणीयम् के अतिरिक्त इस कवि की अन्य रचनाएँ हैं - मानमेयोदय, प्रक्रिया सर्वस्व, धातुकाव्य, अष्टमीचंपूकाव्य, कैलास शैलवर्णना, कान्तेयाष्टक, अहल्याशापमोक्ष, पृष्पोद्भेद, शूर्पणखप्रलाप, राम कथा, दूतवाक्य प्रबंध, नालायनी चरित, नृगमोक्ष प्रबंध, राजसूय प्रबंध, सुभद्राहरण प्रबंध, स्वाहा सुधाकर और संगीतकेतु श्रृंगारलीला चरित । इतनी रचनाओं में उनका नारायणीयम् ही अधिक प्रसिद्ध, सर्वमान्य और पूज्य माना जाता है । नारायणीयम् को संस्कृत का सबसे बड़ा स्तोत्र काव्य कहा जाता है ।[1]

बिल्वमंगल और श्रीकृष्णकर्णामृत

बिल्वमंगल जो विल्वमंगल, लीलाशुक या कृष्ण लीलाशुक के नाम से भी जाने जाते हैं, संस्कृत में भक्त्यात्मक गीत लिखने में अग्रगण्य हैं । लीलाशुक दामोदर और नीलि के बेटे थे और इशानदेव के शिष्य । इसका उल्लेख हमें उनकी कृति कृष्णकर्णामृत के प्रथम आश्वास के अंतिम श्लोक में प्राप्त होता है -

---

1. Narayaniya is the greatest of his stotra kavyas - M.Krishnamachariyar - History of classical sans. Literature - P.254

ईशानदेव चरणाभरणेन नीवी दामोदरस्थिर यशःस्तब कोद्गमेन ।
लीलाशुकेन रुचिरं तव देव कृष्णकर्णामृतं वहतु कल्पशतान्तरेऽपि ।।[1]

कृष्ण लीलाशुक मलबार में भारती नदी के किनारे मुक्तिस्थल या मुक्कुन्तले नामक स्थान पर निवास करते थे । वे श्रीकृष्ण के परम भक्त थे । कृष्ण का कीर्तन करते करते अपनी सुध बुध खो बैठते थे ।

कृष्णकर्णामृत के पहले श्लोक में बिल्वमंगल के गुरु का नाम सोमगिरि या चिंतामणि दिया गया है । कुछ विद्वानों के अनुसार यह इशानदेव का ही दूसरा नाम है ।[2]

कृष्णदास कविराज के अनुसार चिंतामणि एक नर्तकी थी जिस पर बिल्वमंगल आसक्त थे । बिल्वमंगल कृष्णवेना नदी के पश्चिमी तट पर रहते थे और चिंतामणि नदी के पूर्वी तट पर । एक तूफानी रात को उससे मिलने के लिए बिल्वमंगल ने एक शव पर चढ़कर एक नदी पार की थी और एक साँप के सहारे जिसे उन्होंने रस्सी समझा था, चिंतामणि के कमरे में पहुँच गया था । आधीरात को बिल्वमंगल को देखकर चिंतामणि ने उन्हें फटकारा और कहा कि इतनी आसक्ति किसी शाश्वत वस्तु के ही योग्य है । यह सुनते ही बिल्वमंगल के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ । तुरंत संन्यास लेने का फैसला किया । सोमगिरि ने उन्हें दीक्षित किया । उसके बाद वे वृन्दावन चले गये ।[3]

बिल्वमंगल की विशेषता उनके लौकिक अलौकिक रूप समाहार में सन्निहित है । मध्ययुग में भागवत कृष्ण का भावगत कृष्ण में परिवर्तित होना बिल्वमंगल की समाहार प्रतिभा में परिलक्षित होता है ।

---

1. कृष्णकर्णामृत - बिल्वमंगल प्रथम आश्वास श्लोक - पृ. 110
2. Introduction to K.K. - Dr.S.K.De - P-7
3. Introduction to the Krishna Karnamrita - Dr.S.K.De - P. 27 note

लीलाशुक के सन्यास ग्रहण करने के बाद बिल्वमंगल नाम से विख्यात हुए।[1] एक विद्वान के अनुसार बिल्वमंगल उनका पारिवारिक नाम था, कृष्ण उनका निजी नाम था तथा सन्यास ग्रहण करने के बाद उनका नाम लीलाशुक हो गया।[2] "सम्प्रदायकुल दीपिका" नामक ग्रंथ में कहा है कि बिल्वमंगल नाम के तीन भक्त तमिलनाडु, काशी तथा ओडिसा में रहते थे। वे सब वैष्णव भक्त थे। इनमें काशीनिवासी बिल्वमंगल के पहले जन्म का नाम माधवानल, दूसरे जन्म का नाम बिह्लण, तीसरे जन्म का बिल्वमंगल तथा चतुर्थ जन्म का नाम जयदेव था।

बिल्वमंगल के समय के बारे में ठीक तरह से किसी को भी मालूम नहीं है। फ्रेंच विद्वान फर्कुहर के अनुसार बिल्वमंगल पन्द्रहवीं शताब्दी के थे और विष्णु स्वामी संप्रदाय के अनुयायी थे।[3] विटर्निस और कीन्त का मानना है कि बिल्वमंगल ग्यारहवीं शताब्दी के थे।[4] उल्लूर भी बिल्वमंगल को ग्यारहवीं शताब्दी के मानते हैं।[5]

कृष्णकर्णामृत के अलावा उनकी अन्य कृतियाँ है - त्रिभुवनसुभगा, गणपति स्तुति, कारकोटक स्तुति, विष्णु स्तुति, रामचन्द्र स्तुति, अभावस्तुति, कृष्णस्तुति, विश्वाधिकस्तुति, सुमंगलस्तोत्र, बिल्वमंगल स्तोत्र, बिल्वमंगलकोशकाव्य, कृष्णचरित, कृष्णबालक्रीडा, अभिनवकौस्तुभमाला, क्रमदीपिका और शंकर हृदयगाना।

---

1. डॉ. राममूर्ति शर्मा का लेख - संस्कृत कृष्णकाव्य और सूरसागर, भारतीय कृष्ण काव्य और सूरसागर - सं. डॉ. नगेन्द्र - पृ. 39
2. The Contribution of Kerala to Sanskrit Literature Dr.K.Kunjunni Raja - P.33
3. An Outline of religious Literature in India - P.304
4. The Contribution of Kerala to Sanskrit Literature- K.Kunjunni Raja - P.41
5. Saint Vilvamangala - Ullur S.Parameswara Iyer - P.40

श्रीकृष्णकर्णामृतम्

यह उनकी सबसे प्रमुख कृति है । कहते हैं कि इसका एक एक श्लोक उन्होंने कृष्ण भगवान के विग्रह के सामने बैठकर रचा था और वे ही श्लोक दर्ज किये जो कृष्ण ने सर हिलाकर स्वीकार किये थे ।[1] कहते हैं चैतन्य संप्रदाय की उत्पत्ति तथा प्रगति पर कृष्णकर्णामृत स्तोत्र काव्य का गहरा प्रभाव पड़ा है ।[2] इसकी लोकप्रसिद्धि तथा सरसता पर रीझकर चैतन्य महाप्रभु ने उसकी टीका करवा लायी थी ।[3]

श्रीकृष्णकर्णामृत रहस्यात्मक तथा श्रृंगार परक भक्त्यात्मक गीत है जो श्रीकृष्ण की लीलाओं पर आधारित है । मुक्तक शैली में रचे गये इस काव्य में अपने प्रिय भगवान का साक्षात्कार पाने के लिए एक भक्त की पुकार की गूंज सर्वत्र सुनाई पडती है । सरल और सरस होने के साथ साथ इसका प्रणयन एक प्रौढ़ कृति के रूप में हुआ है । यह भक्ति रस और श्रृंगार का विलक्षण काव्य है ।[4]

श्रीकृष्णकर्णामृत का अंतर्भाव स्तोत्र साहित्य में किया गया है । कृष्ण के संबंध में तो सैकड़ों स्तोत्र रचे गये हैं । कृष्णकर्णामृत से स्तोत्रात्मक काव्य विरले ही मिलता है । इसकी चित्रात्मकता

---

1. Contribution of Kerala to Sans.Literature - C.Kunjunni Raja - P.32
   Hinduism - Nirad C-Chaudhari - P.87
   Survey of Sans.Literature - C.Kunjunni Raja - P-227
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास - लौकिक खण्ड - डा.प्रीति प्रभा गोयल - पृ. 187
3. चैतन्य चरितामृत - मध्यलीला -9
4. डॉ. राममूर्ति शर्मा लिखित संस्कृत कृष्णकाव्य और सूरसागर नामक लेख से

भावपूर्णता और गेयता के कारण संस्कृत साहित्य में यह कृति बेजोड है । एक आलोचक के अनुसार इस काव्य को आत्माश्रयी काव्य का उदाहरण माना जा सकता है ।

इस काव्य में कृष्ण का दिव्य रूप, उनकी दिव्य शक्ति, उनका अलौकिक सौंदर्य और उनकी भक्तों के उद्धार करने की करुणामयता का वर्णन किया गया है । इसमें गोपियों की अनुरागिणी वृत्ति, उनकी विरह व्यथा और कृष्ण के अप्रतिम माधुर्य का वर्णन हुआ है । दूसरे आश्वास में रास क्रीडा के कुछ श्लोक मिलते हैं । कृष्ण की बाँसुरी की मधुर तानों तथा उनकी वेषभूषाओं के उल्लेख यत्र-तत्र मिलते हैं । इसमें कवि ने जगह-जगह अपने इष्टदेव कृष्ण को देखने और उनकी लीलाओं का रस ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की है । यह काव्य मधुराभक्ति के उद्गाताओं के लिए आदर्श रहा है । बिल्वमंगल ने कृष्णकर्णामृत में कृष्ण के रंजक रूप के साथ तेजस्वी रूप का, राधारमण रूप के साथ शेषशयन रूप का नमन किया है ।[1]

कृष्णकर्णामृत काव्य में भागवत में वर्णित कतिपय कृष्णलीलाओं का मनोरम वर्णन मिलता है । साथ ही कुछ लीलाओं का वर्णन कवि ने अपनी प्रतिभा से स्वतंत्र रूप में किया है । बाल लीला, गोपियों की अनुरागिणी वृत्ति, विरह वर्णन, कृष्ण का माधुर्य वर्णन आदि भागवत के अनुरूप किया है ।

भक्त कवि बिल्वमंगल ने अत्यंत मनोरम ढंग से कृष्ण की बाल लीला का वर्णन किया है । कृष्ण की प्रत्येक बाल क्रीडा भक्त को अलौकिक आनन्द प्रदान करती है । कवि ने श्रीकृष्ण के सघन केशपाश,

---

1. श्रीकृष्णकर्णामृत - 1/75

मन्दस्मिति, मयूरपिच्छ शोभा, सौन्दर्य युक्त आँखें, वंशीवादन तथा व्रजांगनाओं के साथ क्रीडाओं का वर्णन अत्यंत कमनीयता एवं विलक्षणता से किया है । भगवान श्रीकृष्ण की बाल छवि का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि श्रीकृष्ण का शैशव, वह मुख कमल, कारुण्य, उनका लीला कटाक्ष, बाल सौंदर्य, मन्द मुस्कुराहट देवताओं में भी उपलब्ध नहीं है ।[1]

संस्कृत के कृष्ण भक्त कवियों का मन अधिकतर कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं के वर्णन में ही रमा है । कहीं कहीं तो कामुकता एवं अश्लीलता की झलक मिलती है । लेकिन भक्ति का आवरण होने के नाते वे भाव उभरकर नहीं आते । कृष्णकर्णामृत में कवि उन श्रीकृष्ण के ध्यान में लीन हैं जिनका वक्षस्थल, मदन-बाणों से लड़े गये रति संग्राम में क्रुद्ध, मतवाली गोपियों के पुष्ट स्तनों के कुंकुम से मण्डित होने के कारण, अत्यंत सुशोभित हो रहा है ।

श्रीकृष्ण की संयोग लीलाओं का वर्णन कवि बिल्वमंगल ने बड़े ही मनोहर ढंग से किया है । एक जगह पर कवि व्रजांगनाओं के स्तनों पर विहार करनेवाले श्रीकृष्ण में असीम उल्लास की परमावस्था का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं । श्रीकृष्ण तो प्रतिदिन नई-नई प्रणय पद्धतियाँ ढूँढ निकालते हैं । मन्द हास से चमकनेवाले अपने शरीर कांति से अरुन्धती का मन भी खींच लेते हैं तथा एक प्रकार की अपूर्व सौंदर्य-चेष्टा की सृष्टि करते हैं जिसे किसी अन्य प्रकार से प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता ।[2] कवि का चीर हरण प्रसंग भी अपने ढंग का निराला है । इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि यमुना के निर्मल जल में गोते लगानेवाली, कृष्ण के द्वारा चुराए गए वस्त्रों को माँगते हुए दीन शब्दों से गिड़गिड़ानेवाली गोपियाँ, लज्जा में

---

1. श्रीकृष्णकर्णामृत - 1/53
2. वही - 1/86

झूलनेवाली, आलस्य सम्बलित मदन को उमंगों को व्यक्त करनेवाली अपनी आँखों के पुष्प चढ़ाकर जिनकी पूजा करती हैं, वे कृष्ण हमारी रक्षा करें।[1] प्रिया के केश ग्रहण की लीला, प्रणय कलह आदि लीलाओं का वर्णन भी श्रीकृष्णकर्णामृत में उपलब्ध होता है।[2]

प्रेमजन्य अनन्यमनस्कता के वर्णन में तो कवि ने कलम ही तोड दी है। श्रीकृष्ण के प्रेम में अन्यमनस्क राधा की स्थिति ऐसी विचित्र हो गयी है कि वह रिक्त मटके में दधि मन्थन करने लग जाती है तथा अपने पुष्ट स्तनों पर चुलबुली चितवन लग जाने के कारण दूध दुहने के लिए गौ के स्थान पर एक बैल को ही बाँध लेती है।[3] उसी प्रकार गोपियाँ दधि बेचने जाती है। अन्यमनस्क की स्थिति में वे भूल जाती हैं कि दधि बेचने आयी थीं और गलियों में पूछ फिरती हैं कि क्या गोविन्द चाहिए, दामोदर चाहिए, माधव चाहिए।[4]

इस प्रकार बिल्वमंगल ने संयोग शृंगार की विविध लीलाओं का सहज एवं सजीव रूप में वर्णन किया है। लेकिन कवि ने वियोग शृंगार को अछूता ही छोड दिया है।

श्रीकृष्णकर्णामृत में श्रीकृष्णलीला के वर्णन के अंतर्गत माधुर्य के साथ साथ वात्सल्य का भी मनोरम परिपोष हुआ है। कुछ लीलाएँ भागवत के अनुसार वर्णित है कुछ कवि की अपनी मौलिक प्रतिभा के परिचायक हैं। भगवान के अद्वितीय सौंदर्य से आकृष्ट होनेवाले भक्त उनको

---

1. श्रीकृष्ण कर्णामृत काव्य - 2/2
2. वही - 1/90
3. वही - 2/25
4. वही - 1/55

सौंदर्याराधना करने और उनकी मुरली की मधुर ध्वनि सुनने में ही जीवन को कृतार्थता समझने लगे। श्रीकृष्ण का गोपवेष, उनकी मुरली और उनकी दिव्यरूप माधुरी इस काव्य का आलंबन बन गये हैं। दिव्य श्रृंगार जो तरल, भावरम्य और हृदय की पिपासा बढ़ानेवाला नितान्त मधुर रूप श्रीकृष्णकर्णामृत में प्रस्तुत हुआ है, वह "सद्य:परनिवृत्ति" का जनक अमृतसमान है ही ; ब्रह्मानन्द सहोदर भी है।

श्रीकृष्ण कर्णामृत में कवि ने रसानुकूल और प्रसंगानुकूल छन्दों का प्रयोग किया है। मुक्तक शैली में रचा गया है। अमरनाथ रे के अनुसार बिल्वमंगल या लीलाशुक अलंकारों और छंदों के महान विद्वान हैं।[1] बिल्वमंगल का भक्तपारवश्य, पदघटना वैभव, हृदय द्रावक उल्लेख, वैचित्र्य आदि कृष्णकर्णामृत के एक एक श्लोक में द्रष्टव्य है। श्रीकृष्णकर्णामृत को पढ़कर भक्त सब कुछ भूलकर अनिर्वचनीय आनन्द सागर में लहरें लेते हैं, यही इस काव्य की सफलता है। श्रीकृष्णकर्णामृत का कृष्ण पूर्णत: ईश्वर है। बिल्वमंगल ने संपूर्ण व्रजलीला को कृष्ण के सभी भावात्मक स्वरूपों का आकलन प्रस्तुत किया है।

जयदेव और उनका गीत गोविन्द

जयदेव बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि हैं। संप्रदाय कुल दीपिका के अनुसार बिल्वमंगल ही जयदेव के रूप में अवतरित हुए थे।[2] जयदेव, भोजदेव और रामदेवी के बेटे थे। वे बंगाल के वीरभूमि जिले के

---

1. Amarnath Ray - Indian Historical quarterly XV -P.149
2. Sampradaya Kuladipika Gada SR I.15
   History of classical Sanskrit Literature - M.Krishna-nachariyar - P.390

अजय नामक नदी के उत्तरी किनारे के केन्दुली नामक ग्राम में पैदा हुए थे। वे राजा लक्ष्मणसेन के दरबार के कवि थे। उन्होंने पद्मावती नामक ब्राह्मण कन्या से परिणय किया। राधा कृष्ण लीलाओं से प्रेरित होकर उनकी क्रीडास्थली मथुरा और वृन्दावन में जयदेव कवि घूमे थे। जिस ग्राम में उन्होंने गीत गोविन्द की रचना की, वह जयदेवपुर नाम से जाना जाता है।

गीत गोविन्द कृष्ण लीला का अमर गीत है। जयदेव कवि इसके बारे में स्वयं इस प्रकार कहते हैं - "यदि आप का अन्तःकरण हरि की चर्चा की ओर ललायित है तथा आप के कान हरि की सुललित लीलाओं का श्रवण करना चाहते हैं तो अति मधुर तथा मनोहर एवं सुललित पदरचनावली जयदेव कवि की पदावली सुनिये।"[1] गीत गोविन्द के टीकाकार केदारनाथ शर्मा का कहना है कि जहाँ गीत गोविन्द है वहीं वैष्णव गोष्टी है, वहीं रसिक समाज है, वहीं वृन्दावन है, वहीं प्रेमसरोवर है, वहीं भाव समुद्र है, वहीं गोलोक है तथा वहीं प्रत्यक्ष परमानन्द है। जयदेव ने जन भावना के स्तर पर व्याप्त कृष्णचरित को देववाणी में इस विदग्धता से चित्रित किया कि उसकी समस्त सुकुमारता और सांगीतिकता धूमिल होने के बजाय और निखर उठी। उनका "गीत गोविन्द" कृष्ण की शृंगार लीला का काव्य में संचित रस-कोश है।[2]

गीत गोविन्द में बारह सर्ग तथा चौबीस अष्टपदियाँ हैं। यह एक नाटकीय शैली में विरचित है जिसमें कृष्ण, राधा और राधा

---

1. यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
   मधुर कोमल कान्त पदावलीं शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥
   गीतगोविन्द - 1/3

2. हिन्दी काव्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास -
   डॉ. तपेश्वरनाथ - पृ. 174

की एक सहेली के बीच संवाद चलता रहता है । ललित पद विन्यास तथा श्रुति मनोहर अनुप्रास छटा-निबंध से जयदेव कवि की रचना अत्यन्त चमत्कारिणी रही है । गीतगोविन्द में पहले श्लोक तथा बाद में गीत, क्रम से रखे गये हैं । इसमें परस्पर विरह, दूती, मान, गुण कथन, नायक का अनुनय फिर मिलन वर्णित है ।

जयदेव परम वैष्णव भक्त थे । उन्होंने जो कुछ भी प्रस्तुत किया अत्यन्त पुनीत भक्ति भाव से किया । उन्होंने गीत गोविन्द में रसमयी रचना शक्ति तथा आकर्षक सद्भावशीलत्व का प्रदर्शन किया है । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का कहना है कि "इस महाकाव्य गीत गोविन्द की रचना जैसी मधुर, कोमल तथा ललित है उस तरह की दूसरी कविता संस्कृत भाषा में बहुत कम है । अपितु ऐसे मनोहर पद विन्यास, श्रवण, ललित अनुप्रास छटा तथा प्रसाद गुण अन्य स्थान में कहीं नहीं ।" राधा के चरित को प्रेममय तथा मधुर बनाकर साहित्य में पहली बार प्रस्तुत करने का श्रेय जयदेव को जाता है ।

गीत गोविन्द की शुरूआत कृष्ण की यौवन लीला से होता है । इसके बारह सर्गों को प्रसंगानुकूल नामों से जाना जाता है तथा इनमें से कृष्ण लीला का आभास भी मिलता है । ये हैं - {1}सामोद दामोदर {2} अक्लेश केशव {3} मुग्ध मधुसूदन {4} स्निग्ध मधुसूदन {5} साकांक्ष पुण्डरीकाक्ष {6} धन्य वैकुण्ठ {7} नागर नारायण {8} विलक्षण लक्ष्मीपति {9} मुग्ध मुकुन्द {10} चतुर चतुर्भुज {11} सानंद दामोदर तथा {12} सुप्रीत पीतांबर ।

गीत गोविन्द में वर्णित राधाकृष्ण प्रेम की प्रारंभिक भूमिका इस प्रकार है - बादलों से घिरा आकाश श्यामल है । काले मेघों से

आवृत होने के कारण उसकी कालिमा और बढ़ी है । वृन्दावन की भूमि इस प्रकार बनी छाया के कारण श्यामल है । आकाश और धरती की इस श्यामलता को और गहरा करने के लिए रात घिर जाती है । दसों दिशाएँ श्याम हैं । इसी समय नन्द बालकृष्ण को लेकर गोचारण करते हैं । नन्द मन ही मन अंधकार से घबराए हुए हैं । घनी श्यामलता में श्याम कहाँ जाए, ऐसा नन्द को लगता है । ऐसे में नन्द सयानी राधा को पास देखकर कृष्ण को यशोदा के पास पहुँचाने के लिए कहते हैं । राधा आगे आगे चलती है कृष्ण पीछे पीछे । रास्ते में जितने कुंज पड़ते हैं उनमें प्रत्येक में निभृत एकांत में राधा और कृष्ण की लीलाएँ होती हैं । दोनों एक दूसरे के प्रति अत्यंत आकर्षित हो जाते हैं । दोनों के मन में परस्पर प्रेम उत्पन्न होता है और यहीं से राधा कृष्ण लीला आरंभ होती है ।

नन्द के कृष्ण को राधा को सौंपने के प्रस्ताव पर कुछ टीकाकारों ने टीका टिप्पणी की है । कुछ लोग इसे ठीक समझते हैं तो कुछ अनौचित्य मानते हैं । पर विद्यानिवास मिश्र के अनुसार काव्य की मनोरमता, अभिभावक के द्वारा श्रीकृष्ण के राधा के हाथ सौंपे जाने में ही अधिक प्रस्फुटित होती है ।[1]

इस वर्णन के बाद कवि अपने काव्य की ओर सब का मन आकर्षित करना चाहते हैं । जयदेव पहले श्लोक के ज़रिए अपने को राधा का उपासक सिद्ध करना चाहते हैं और इसलिए वे राधा और कृष्ण का लीला गान करते हैं । राधा कवि के हृदय में निवास करती है और उसे श्रीराधा की सेवा का अखण्ड सौभाग्य प्राप्त है ।

---

1. भावपुरुष श्रीकृष्ण - विद्यानिवास मिश्र - पृ. 7।

फिर कवि अपने पाठकों का चयन करते हुए कहते हैं कि यदि आप का मन हरि स्मरण में सरस है और यदि आपके भीतर विलास कलाओं के लिए कौतूहल है, तब आप जयदेव की मधुर कोमल कान्त पदावली से युक्त वाणी सुनें ।[1] इसका मतलब यह भी है कि यदि पाठक सिर्फ भक्ति रस में डूबे हुए हैं या सिर्फ शृंगार में डूबे हुए हैं तो वे इस काव्य के अधिकारी नहीं है । इसका अधिकारी वही है जो शृंगार और भक्ति दोनों का अतिक्रमण कर चुका हो, जिसकी भक्ति अलौकिक न हो और जिसका शृंगार लौकिक न हो । जयदेव यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि भक्ति पर ही अटल विश्वास रखनेवाले इस काव्य से उद्विग्न हो सकते हैं और शृंगार को विलास समझनेवाले इसका अनर्थ कर सकते हैं । इस काव्य में दृश्य और श्रव्य का, मूर्त और अमूर्त का, भाव और विभाव का, उद्दीपन और आलंबन का, संचारी और स्थायी का एकीकरण है । वह ऊँचे रसमयी भूमिकावाले चित्त में ही ठीक तरह प्रतिबिंबित हो सकती है ।[2]

इसके बाद दो अष्टपदियों में दशावतार वर्णन से मंगलाचरण किया गया है । पहली अष्टपदी में दशावतार का क्रमिक चित्रण है । इसमें श्रीकृष्णावतार सम्मिलित नहीं है । श्रीकृष्ण तो पूर्णावतार है । वे ही पूर्ण परब्रह्म है । वे ही सब अवतारों के मूलभूत तत्व है । इस वर्णन के ज़रिए तो कवि का मतलब यही था । दूसरी अष्टपदी में राम और कृष्ण का वर्णन मिलता है । जयदेव ने दशावतार वर्णन से श्रीकृष्ण का संपूर्णत्व व्यंजित किया है । ऐसे संपूर्ण का असंपूर्ण, खंडित व्यष्टि चित्त राधा पर न्योछावर किया जाता है । यह असीम का अपना विशिष्ट

---

1. गीतगोविन्द - 1/3
2. भावपुरुष श्रीकृष्ण - विद्यानिवास मिश्र - पृ. 72

सौभाग्य है । श्रीकृष्ण का भाव नारी की भावप्रतिमा राधा में स्वत्व पाता है । यह विराट का लघु की ओर समर्पण माना जा सकता है ।

इसके बाद दोनों के हृदयों में नित नूतन प्रेम का संचार होता है । इसी बीच कृष्ण का अन्य गोपियों से प्रेम संबंध बढ़ जाने के कारण राधा का एकान्तिक प्रेम सहसा उपेक्षित पड़ जाता है । यहाँ कृष्ण का चरित्र अविश्वसनीय है । राधा का हृदय खंडित और विरही है । जब राधा की सखी उससे वसन्तकाल में गोपी कृष्ण लीला का वर्णन करती है तो राधा का विरह-कातर मन उन्मथित हो जाता है । राधा गोपियों से घिरे कृष्ण के पास जाती है और नाना भाँति की प्रणयचेष्टाएँ प्रदर्शित करती है । तब कृष्ण उसे कुंज तक ले जाते हैं और फिर उसकी उपेक्षा करते है । कृष्ण की इस उपेक्षा से राधा को अपार दुख होता है । उधर कृष्ण भी भीतर ही भीतर अतृप्त और क्षुब्ध रहते हैं । राधा के विरह से उनके मन में उत्कंठा जाग उठती है । कृष्ण अनुताप से आक्रान्त होकर राधा को ढूँढते हैं । कृष्ण मन ही मन राधा से क्षमा माँगते हैं और प्रकट होने का आग्रह करते हैं । इसी बीच राधा की सखी कृष्ण के पास आकर राधा की विरह व्यथा को बखान करती है । इससे कृष्ण और भी अधिक मिलनातुर हो उठते हैं । वह सखी से राधा के पास पहुँचा देने का आग्रह करते हैं । आगे की लीला में राधा को मानिनी और कृष्ण को धीरललित नायक के रुप में दर्शाये गये हैं । दोनों ओर से दूती-व्यापार निष्फल हो जाता है । इससे कृष्ण राधा से मिलने के लिए और आतुर हो जाते हैं । कृष्ण जितना राधा से मिलने के लिए आतुर होते हैं, राधा का मान उतना ही बढ़ता जाता है ।

एक बार कृष्ण साहस पूर्वक राधा के पास पहुँचते हैं । राधा उनके मुख पर संभोग चिह्नों का लक्षण देखकर वापस चले जाने को

कहती है । यह सुनकर कृष्ण वहाँ से खिसक जाते हैं । इसके बाद भी कृष्ण अपने धीर लालित्य का परिचय देते हुए पुनः राधा का मान शमन करने का आग्रह करते हैं । कृष्ण के द्वारा राधा को बताया गया जो प्रणय दण्ड विधान है उसमें उनकी शृंगारिकता कूट-कूट कर भरी हुई है । अन्त में राधा के पाद सेवन से राधा के मान का शमन होता है । गोपियाँ कृष्ण के कुंज में राधा को प्रवेश करने की अनुमति देती हैं । राधा प्रवेश करती है । प्रतीक्षातुर कृष्ण राधा से कुछ आग्रह करते हैं । राधा मान जाती है । ज्यों ज्यों रात बीतती है, दोनों संवादों में उलझ जाते हैं । अन्त में जब काम ज्वर उतर जाता है, राधा कृष्ण से फिर उसका शृंगार कर देने का आग्रह करती है ।

इस प्रकार गीत गोविन्द की कृष्ण लीला मिलनान्त है । यह मूलतः यमुना के तटवर्ती केलि कुंजों में निरंतर चलनेवाले गोपी कृष्ण की लीलाओं तक सीमित है । यह कुल सवा दो दिनों की कहानी है ।

गीत गोविन्द के सर्गों के नाम भी अपने आप में व्यंजक हैं । पहले सर्ग का नाम "सामोद दामोदर" है । इसमें चार अष्टपदियाँ हैं । पहली दशावतार वन्दना है और दूसरी श्रीपति वन्दना । तीसरी और चौथी में वसन्त रास का वर्णन है । इसमें राधा नहीं है । इस सर्ग के नामकरण में दो व्यंजनाएँ हैं । दामोदर - जिसका उदर दाम से बँधा हुआ हो । यहाँ कृष्ण का प्रेमाबद्ध रूप प्रमुख है । वे सामोद भी हैं क्योंकि वसंत रास है । इस नामकरण से श्रीकृष्ण का अन्तर्द्वन्द्व प्रकट रूप में है और अप्रकट रूप में राधा का अन्तर्द्वन्द्व है जो देर से रास के लिए आयी । देर हो गयी इसलिए रास समाप्त हो गया, उन्हें केवल रास की झंकार

सुनाई पड़ी । इस प्रकार कृष्ण से न मिलने के कारण राधा नाराज़ है और राधा के न आने के कारण कृष्ण उत्कंठित है । ऐसी स्थिति में सामोद-दामोदर नाम व्यंग्य बनकर रह जाता है । कैसा आमोद जब दो प्रेमी एक दूसरे से न मिले तो ।

दूसरे सर्ग का नाम अक्लेश केशव है । इसमें दो अष्टपदियाँ हैं । पहली में राधा का मन रास में, श्रीकृष्ण में चला जाता है । दूसरी में राधा सखी से आग्रह करती है कि ऐसा कुछ करो कि कृष्ण मेरे साथ रमण करें । राधा के भीतर मिलन की उत्कंठा जगे, यही केशव के क्लेश को काटने का साधन है । इसलिए इस सर्ग का युक्ति संगत नामकरण हुआ है ।

तीसरे सर्ग का नाम "विमुग्ध-मधुसूदन" है । कृष्ण राधा को खोजने निकलते हैं । वे कहीं दिखाई नहीं देती । इस बात से कृष्ण परेशान हो जाते हैं । मुझे गोपियों में घिरा देखकर वह चली गयी, मैं उसे रोक नहीं सका । उसके बिना रास किया । इस प्रकार "मधु" {वसंत} को मथने वाले मधुसूदन स्वयं विमुग्ध हो जाते हैं । दूसरे और तीसरे सर्गों में दोनों की परस्पर उत्कण्ठा के अंकुरण का वृत्त पूरा हो जाता है ।

चौथे सर्ग में सखी राधा की उत्कंठा का चित्र खींचती है तो श्रीकृष्ण को लगता है कि केवल वे ही उत्कण्ठा करनेवाले नहीं हैं, उत्कण्ठा के विषय भी हैं । यह अनुभव उन्हें स्निग्ध कर देता है । वसंत को मथनेवाले मधुसूदन, इस अनुभव से स्निग्ध हो जाता है । इससे इस सर्ग को "स्निग्ध मधुसूदन" नाम मिला । इस सर्ग में दो अष्टपदियाँ हैं जो राधा के विरह के द्रावक चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

पाँचवें सर्ग में दो अष्टपदियाँ हैं । पहली में श्रीकृष्ण के विरह का वर्णन है तो दूसरी में राधा से मिलने के लिए अनुरोध है । इस सर्ग का नाम "साकांक्ष पुण्डरीकाक्ष" है । श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य की सबसे बड़ी विशेषता उनका साकांक्ष अर्थात् कमलनयन होना है । जिस प्रकार कमल सूर्य के प्रकाश को आकांक्षा रखता है, उसी प्रकार विरहाकुल श्रीकृष्ण राधा को आकांक्षा रखता है । इसीलिए इसे साकांक्ष पुण्डरीकांक्ष नाम रखा गया है ।

छठे सर्ग का नाम कुण्ठ वैकुण्ठ है । इसमें एक अष्टपदी है । विरहाकुल राधा चल नहीं पा रही है । सखी राधा के इस दशा का वर्णन कृष्ण से कर रही है । राधा की विरहावस्था के बारे में सुनकर निर्द्वन्द्व कृष्ण कुंठित हो जाते हैं । "राधा नहीं आ पाई । मैं ने संदेश दिया और वे तैयारी करके बैठी रही आ नहीं पायी ।" "कहीं मेरी आकांक्षा में कमी थी ।" कुण्ठ वैकुण्ठ का अर्थ है कुण्ठारहित ।

सातवें सर्ग में चार अष्टपदियाँ हैं । इनमें विप्रलब्धा नायिका राधिका का मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है । विरह को और उद्दीप्त करने के लिए विप्रलब्धा भाव की उत्थापना की गयी है । इस सर्ग का नाम "नगर नारायण" है । नारायण तो व्यष्टि चित्तवृत्तियों में एक साथ रमनेवाले हैं । लेकिन कृष्ण राधा की ठगी गयी चित्तवृत्ति को जान नहीं पाये या जानकर भी अनजान बने रहते हैं । इस प्रकार जल में रहनेवाले जड़ नारायण नगर के छल छन्द से परिचित हो गये हैं । इसीलिए इस सर्ग का यह नाम रखा गया ।

सुबह होते ही श्रीकृष्ण का अभिमान टूटता है । वे राधा को मनाने के लिए स्वयं निकुंज में आकर राधा के चरणों में पड़ते हैं ।

यहीं से आठवाँ सर्ग शुरू होता है । कृष्ण राधा को मना रहे हैं और आर्त राधा उन्हें झिड़क रही हैं । वह कृष्ण से उसी के पास जाने के लिए कहती है जो उनका दुःख हरती है । इस सर्ग में विप्रलब्धा की स्थिति खण्डिता के रूप में बदल जाती है । राधा यह मानती है कि वह मेरे रहे नहीं, किसी दूसरे के हो गये हैं । इस सर्ग का नाम विलक्ष्य लक्ष्मीपति है । लक्ष्मी पति होते हुए भी जब लख लिए जाते हैं तो वे विलक्ष्य हो जाते हैं । वे अलक्षित नहीं रह पाते क्योंकि अनेक लक्ष्य {चिह्न} उभर कर आते हैं कि वे लक्ष्मीपति हैं, राधा के प्रिय नहीं है । उस लक्ष्मी के पति हैं जो राधा की छाया है ।

नवें सर्ग का नाम मन्द मुकुन्द है । इस सर्ग में सखी झगड़े पर उतर आयी राधा को मनाती है । श्रीकृष्ण तुम्हारे पास आये हैं और तुम मानकर रही हो, यह ठीक नहीं है । श्रीकृष्ण राधा के पैरों तले पड़कर मनाते हैं । फिर भी मानिनी राधा मानती ही नहीं । राधा के इस मान से श्रीकृष्ण की अकल गुम हो जाती है । उन्हें यह सूझता ही नहीं कि राधा को किस तरह मनाया जाए । इसीलिए इस सर्ग का नाम मन्द मुकुन्द रखा गया ।

जब दिन ढलता है तो राधा का क्रोध शिथिल हो जाता है । तब श्रीकृष्ण को अपनी चतुराई का परिचय देने का अवसर मिलता है । बड़ी चतुराई से कृष्ण राधा को वश में करते हैं । इसीलिए इस दसवें सर्ग का नाम चतुर चतुर्भुज रखा है ।

ग्यारहवें सर्ग में तीन अष्टपदियाँ हैं । पहली अष्टपदी में राधा को श्रीकृष्ण के पीछे चलने का अनुरोध है । दूसरी अष्टपदी में कुंज में प्रवेश करने का अनुरोध है और तीसरी में दोनों का आँख मिलने का

वर्णन है । राधा जब श्रीकृष्ण को देखती है तो उन्हें लगता है कि कृष्ण साज शृंगार में राधामय बन जाते हैं । आनन्द के दाम से बँधे हैं । कृष्ण के इस रूप पर राधा का प्यार उमड़ आता है और अपने पर उसे पूरा भरोसा हो जाता है । इसीलिए इस सर्ग का नाम सानन्द दामोदर रखा गया है । इसमें श्रीकृष्ण की जितनी उपमाएँ दी गयी है, वे सभी विश्व सृष्टि के साथ एकाकार होने का कार्य करनेवाली है । ये सारी उपमाएँ इस बात को रेखांकित करती है कि श्रीकृष्ण पूरी समष्टि के चैतन्य तत्व है । आनन्द तत्व है और पूरी समष्टि की सत्ता के ही सघन पुंजित रूपांतर है ।

बारहवें सर्ग में सखियों का निकुंज से बाहर जाने की सूचना मिलती है । यह सुनकर राधा को लाज आती है । श्रीकृष्ण से मिलने की उनकी आशा दुगुनी हो जाती है । फिर राधा और कृष्ण दोनों का मिलन होता है । राधा मिलन के लिए कृष्णमय होकर आयी थीं और देखने में भी कृष्णमय होना चाहती थी । इसलिए कृष्ण से वे उन्हीं की तरह सजाने का अनुरोध करती हैं । इस सर्ग का नाम सुप्रीत पीतांबर है । राधा ही पीतांबर है । जब संपूर्ण भाव से राधामय श्रीकृष्ण से राधा के श्रीकृष्णमय होने की फरमाइश पेश की जाती है तो प्रीति की सफलता सुनिश्चित हो जाती है ।

गीत गोविन्द की कृष्ण कथा कवि कल्पित अधिक है पुराण वर्णित कम । श्रीमद् भागवत और गीत गोविन्द की तुलना करते हुए डॉ. विद्यानिवास मिश्र का कहना है कि श्रीमद् भागवत भक्त की अतृप्ति का काव्य है और गीत गोविन्द भजनीय परब्रह्म की अतृप्ति और विकलता का काव्य है ।[1] इस काव्य पर ब्रह्मवैवर्त पुराण के

---

1. गीत गोविन्द की बुनावट - डॉ. विद्यानिवास मिश्र - पृ. 18

श्रीकृष्ण जन्म खण्ड के पन्द्रहवें अध्याय का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है । साथ ही संस्कृत में प्रणीत बिल्वमंगल के श्रीकृष्णकर्णामृत का प्रभाव भी इस पर स्पष्ट परिलक्षित है । इस काव्य में राधा और कृष्ण की प्रधानता है । यहाँ का कृष्ण मानवीय ईश्वर है । राधा कृष्ण के प्रेम में अतिरिक्त गरिष्ठता लाने के लिए कवि ने कृष्ण को बहुवल्लभ रूप में वर्णित किया है । इसके फलस्वरूप राधा के मन में असूया, सौतिया डाह और मान वृत्ति का सुन्दर समावेश करने में कवि सफल हुए हैं । इस वजह से कथा के मध्य में एक कृत्रिम मानसिक तनाव सा दिखाई देता है । किन्तु, राधा और कृष्ण की परस्पर अनुकूलता अविच्छिन्न बनी रहती है । यही अनुकूलता गीतगोविन्द काव्य के शृंगार की अन्तर्धारा है । इसके प्रबल संवाहक स्वयं कृष्ण हैं । कृष्ण की काम-दशा तथा वासकसज्जा रूप इसके प्रमाण हैं । नायक पक्ष की यह सक्रियता कृष्ण की भावात्मकता का नूतन मानदण्ड है ।

गीतगोविन्द में शृंगार की विविध प्रणय केलियों का सरस चित्रण मिलता है । आशा, निराशा, ईर्ष्या, मन, कोप, विरह, मान भंग, मिलन आदि विभिन्न शृंगारिक दशाएँ इस काव्य में सर्वत्र सरसतया उपनिबद्ध हैं । अलंकार शास्त्र के आधार पर शृंगार के जो आठ भेद वर्णित हैं, जैसे स्वाधीन पति का, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, विप्रलब्धा, अभिसारिका आदि वे सभी राधा में प्राप्त होते हैं । इसमें जयदेव ने प्रिय के विरह में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथा, उद्वेग, प्रलाप, आवेग, दैन्य, अधिमरण आदि दशाओं का सुन्दर चित्रण किया है । शृंगार के विभिन्न पक्षों का चित्रण करके भी राधा कृष्ण की भक्ति के रूप में जयदेव ने शृंगारिक काव्य लीला गान तथा स्तोत्र का एक अनुपम समन्वय प्रस्तुत किया है । जयदेव के काव्य की तन्मयता, मधुरता और संगीतमयता इसे स्थूल शृंगार से बहुत ऊँचा उठा देती है ।[1]

---

1. सूर समीक्षा - राम रतन भटनागर - पृ. 16

गीत गोविन्द के कृष्ण का स्वरूप भागवत न होकर भावगत है । यहाँ कृष्ण लौकिक प्रेम रस के अलौकिक आलंबन हैं । इसमें वर्णित रास वसन्त रास है । राधा इसमें परकीया है । कृष्ण प्रेमी है । राधावल्लभ है तथा है बहु वल्लभ । इन तत्वों के मिश्रण से उनका चरित्र विलासी नागर और प्रियतम भगवान का सम्मिलित प्रतिरूप बन गया है । कृष्ण मानव मन की समस्त वासनाओं के पुंजीभूत स्वरूप से लगते हैं ।

किसी विद्वान का कहना है कि जयदेव का गीत गोविन्द लोक प्रचलित राधा कृष्ण स्फुट श्रृंगार लीला का व्यवस्थित रूप है । यह देववाणी में गुंजित लोक वाणी का ही सरस संगीत है । जयदेव ने इसमें लौकिक रस को अलौकिक धरातल पर तथा अलौकिक रस को लौकिक धरातल पर प्रवाहित करने का सजग प्रयास किया है ।

गीत गोविन्द में भक्ति और दर्शन कूट-कूट कर भरा हुआ है । काव्य के आरंभ और अंत में दर्शन का संकेत अवश्य मिलता है जबकि दर्शन का पूर्ण विश्लेषण काव्य के मध्य में आता है । राधा सिर्फ एक लौकिक नारी नहीं है । वह जीवात्मा है जो निरंतर परमात्मा से मिलने के लिए आतुर रहती है । कहते हैं जब भक्त को भगवान मिलता है तो दोनों एक दूसरे के हो जाते हैं और अगर किसी कारण वश भक्त भगवान को छोड़ता भी है तो भगवान भक्त को नहीं छोड़ता । इसका संकेत भी राधा कृष्ण लीला के माध्यम से इस काव्य में मिलता है ।

गीत गोविन्द काव्य में हमें अनेक स्तर दिखाई देते हैं । इनमें से तीन स्तर प्रमुख हैं । पहला है पूर्णतया वर्णन का, दूसरा प्रकृति का और तीसरा श्रृंगार का । अत्यधिक श्रृंगारिक पक्ष को लेकर बहुत से

समीक्षकों ने इस काव्य को अश्लील काव्य की कोटि में रखा है । इस काव्य में श्रृंगार का पक्ष बहुत महत्वपूर्ण है । इसी श्रृंगार में से भक्ति का निर्माण होता है । इस काव्य का मानवीय तथा आध्यात्मिक स्तर भी महत्वपूर्ण है । मानवीय स्तर पर यह वियोग और संभोग का काव्य है और आध्यात्मिक स्तर पर जीवात्मा और परमात्मा के अलगाव और मिलन का । इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इसमें जो कहा गया है वह किसी भी प्रकार से विशुद्ध श्रृंगार की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है । यह श्रृंगार नाम और रूप की अभिव्यक्ति है । यह पाँचों इन्द्रियों की अभिव्यक्ति है जो इन्द्रियों से परे उस परारूप की ओर संकेत करते हैं । राधा इन्द्रियों के प्रतीक हैं । ये परमात्मा से अलग हो जाती हैं और फिर उन्हीं से मिल जाती हैं । इस काव्य में श्रृंगार और भक्ति का परस्पर द्वन्द्व नहीं है । यहाँ शरीर और मन का, बुद्धि का, आत्मा का परस्पर विरोध नहीं है । यह सृष्टि के अनेक स्तर हैं जो अंत में परब्रह्म में विलीन होते हैं । श्रृंगार, भक्ति तक पहुँचने का एक ज़रिया है । भारतीय दर्शन में शरीर की कभी अवहेलना नहीं हुई है । "इस शरीर के शुद्ध एवं पवित्र रूप को देखने का यहाँ प्रयत्न किया गया है । इन सब इन्द्रियों, शरीर, मन, आदि के जितने भाव हैं, संचारी भाव, व्यभिचारी भाव, उसका संदेह, उसकी ईर्ष्या, उसका वियोग, उसका संशय इन सब अनुभवों से राधा भी गुज़रती है और कृष्ण भी गुज़रते हैं । और उसके पश्चात् वे एक भावनात्मक स्तर पर एक हो जाते हैं ।"[1]

गीत गोविन्द का कला पक्ष अत्यंत प्रबल है । कवि स्वयं इसे कोमल कान्त पदावली से युक्त मानते हैं । शब्दावली केलिविलास की है । इसमें कवि ने तीव्र भावानुभूति के स्थलों पर गीत का प्रयोग किया है । गद्य का प्रयोग अधिकांशतः संवादों में है तथा वर्णनात्मक स्थलों

---

1. गीत गोविन्द - डॉ. कपिला वात्स्यायन - पृ. 13

पर श्लोकों का प्रयोग किया है । विभिन्न पाश्चात्य विद्वानों ने इस काव्य शैली को विविध नाम प्रदान किये हैं । किसी ने शुद्ध गीति कहा है तो किसी ने ग्राम्य रूपक और किसी ने गीत रूपक कहा है । कतिपय भारतीय विद्वानों ने इसे दरबारी काव्य कहा है । यह एक प्रबंध गीति है जिसमें मनोहर पद विन्यास, छंदों और अलंकारों का मनोहर योग दिखाई देता है । हर अष्टपदी के पहले उसका राग और ताल दिया गया है । एक सर्ग में कम से कम एक और अधिक से अधिक चार अष्टपदियाँ हैं । प्रत्येक अष्टपदी के पूर्व और अंत में कथायोजक सूत्र के रूप में श्लोक मिलता है । अष्टपदी गायी भी जा सकती है साथ ही अभिनय भी हो सकता है । गीत गोविन्द का एक-एक टुकड़ा किसी न किसी संचारी, किसी न किसी अनुभाव, विभाव आदि पक्षों को व्यंजित करता है और वह पक्ष अर्थों की पर्तों में लिपटा हुआ रहता है । यह काव्य प्रसाद गुण से युक्त है । इसमें विरह वर्णन, प्रकृति वर्णन, श्रृंगार वर्णन आदि सुन्दर ढंग से वर्णित है । पर्यायवाची शब्दों की भरमार है ।[1]

गीत गोविन्द की शैली एक नितान्त अभिनव शैली है । सारे संस्कृत के काव्य साहित्य में वह शैली और कहीं नहीं मिलती । कहा जाता है कि यह प्राचीन मार्ग संगीत की शैली का अनुसरण करती है । भाषा के सारे सम्मोहन अस्त्रों का प्रयोग कवि ने इस काव्य में किया है । संगीत ही जैसे इस काव्य की आत्मा है ।[2] अपूर्व गेयता तथा कोमल भाषा संयोजन के कारण गीत गोविन्द जैसा सरस, सुन्दर एवं मधुर काव्य विश्व साहित्य में भी ढूँढे नहीं मिलता ।[3]

---

1. सूर समीक्षा : पृष्ठभूमि - राम रतन भटनागर - पृ. 14
2. वही - पृ. 15
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास - लौकिक खण्ड - डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल - पृ. 194.

सुकुमार कवि और श्रीकृष्णविलास काव्य

सुकुमार कवि का जन्म केरल में कुट्टुली नंपुत्तिरि परिवार में हुआ था।[1] कुछ विद्वान उन्हें बारहवीं शताब्दी के मानते हैं[2] तो कुछ पन्द्रहवी शताब्दी के। उल्लूर ने सुकुमार कवि और भट्टसुकुमार को जिन्होंने रघुवीरचरित नामक नाटक लिखा था, एक ही व्यक्ति माना है।[3] सुकुमार कवि और भट्टसुकुमार दोनों को एक ही व्यक्ति मानने का हालाँकि कोई ठोस सबूत नहीं है। फिर भी इस कवि के चोल देश के होने के दावे से इनकार नहीं किया जा सकता है। मेलपुत्तूर नारायण भट्टत्तिरी ने इस कवि के बारे में अपनी रचना प्रक्रियासर्वस्व में संकेत किया है।

कहा जाता है कि सुकुमार होनहार विद्यार्थी थे। जब वे अध्ययन कर रहे थे, गुरु हमेशा उसे डाँटा करते थे। इससे उसे बहुत दुःख होता था। एक दिन तंग आकर उन्होंने गुरु की हत्या करने का संकल्प किया और रात को एक पत्थर लेकर घर के ऊपर चढ़ गये। उस समय गुरु अपनी पत्नी से सुकुमार के बारे में अच्छी अच्छी बातें कर रहे थे। यह सुनकर उनका मन पिघल गया। अपने पर गुरु की कृपा और प्रेम के बारे में सुनकर अपने इरादे पर उसे शर्म आयी। घर के ऊपर से उतरकर सीधे गुरु के चरणों पर गिर पड़े और माफी माँगी और गुरु से अपनी हीन वृत्ति के लिए दण्ड देने का आग्रह किया। गुरु ने उसे दण्ड खुद चुनने की छूट दे दी। तब सुकुमार ने पाप परिहारार्थ धीमी आग में घुट घुट कर मरने का फैसला किया।

---

1. Historical survey of sanskrit Mahakavyas - L.Sulochana Devi - Chapter 2 - P.1
2. Kerala Sahitya Charitam - Ullur Parameshwara Iyer - P.165
3. K S C - Ullur Parameswara Iyer - P.165

श्रीकृष्ण विलास काव्य उन्होंने इसी दौरान लिखा था ।
त्यंत पश्चाताप से यह काव्य लिखा था । ऐसा माना जाता है
ो मारना घोर पाप है । कवि ने इस घोर पाप से मुक्त होने
पापों को हरण करनेवाले कृष्ण की स्तुति में इस काव्य का प्रणयन
इसमें बारह सर्ग है । लेकिन बारहवाँ सर्ग अपूर्ण है । छिहत्तरवें
द्धि पर काव्य समाप्त हो जाता है । कहते हैं कि छिहत्तरवें पद्य
आते उनकी जिह्वा जल गयी और वे पद्य पूर्ण नहीं कर सके ।

श्रीकृष्णविलास काव्य अति सरल पद रचना से रचा[1]
शब्द रचना वैभव से यह ग्रंथ बहुचर्चित है । उल्लूर का कहना
काव्य किसी भी कवि ने पूरा करने की कोशिश नहीं की । इसी[2]
सके वैभव का पता चलता है ।

श्रीकृष्ण विलास का प्रतिपाद्य विषय श्रीकृष्ण की मधुर
का गान है । पहले सर्ग में कवि मेरु पर्वत का वर्णन करके विष्णु
प में अवतार ग्रहण करने का कारण बताते हैं । असुरों के अत्याचार
कर पृथ्वी ब्रह्मा से शिकायत करती है । ब्रह्मा दूसरे देवों को
लेकर विष्णु से मिलने वैकुण्ठ जाते हैं और दानवों से पीड़ित पृथ्वी
सुनाते हैं । भगवान विष्णु माया के साथ अवतार लेने का वादा
ा को आश्वस्त करते हैं ।

दूसरे सर्ग के विष्णु के अवतार ग्रहण करके पृथ्वी पर आने
है । भगवान विष्णु का एक अंश बलराम के रूप में रोहिणी से पैदा

---

liya Sanskrita sahitya charitram - Vadakkumkur

होता है और विष्णु स्वयं देवकी का आठवाँ पुत्र बनकर जन्म लेते हैं । यशोदा एक बेटी को जन्म देती है जो असल में विष्णु की माया शक्ति या योग माया थी । कृष्ण के कहे अनुसार वासुदेव नन्द के घर जाकर लड़के को यशोदा के पास छोड़कर लड़की को मथुरा ले जाते हैं । एक बार भविष्यवाणी हुई थी कि देवकी का आठवाँ बेटा कंस को मारेगा । इस भय से कंस देवकी की बेटी को मारने के इरादे से उठाते हैं लेकिन वह उसके हाथ से फिसल जाती है और आकाश में जाकर दिव्य रूप धारण करके कंस से कहती है कि उसे मारनेवाला पैदा हो चुका है ।

तीसरे सर्ग में कृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन है । इसमें शकटासुर, पूतना तथा वृषभासुर के वध का वर्णन मिलता है । साथ ही अत्यंत मनोहर रूप में कृष्ण के माखन चोरी का प्रसंग भी मिलता है ।

चौथे सर्ग में गौ-चारण लीला का वर्णन है । पाँचवें और छटे सर्ग में गोवर्धन लीला का वर्णन है । सातवें सर्ग में कृष्ण की रास-क्रीड़ा का वर्णन है । फिर अक्रूर आगमन, मुष्टिक चाणूर वध, कंस वध आदि का वर्णन मिलता है ।

बाकी के सर्गों में कृष्ण और बलराम के संदीपनी आश्रम में विद्याध्ययन के लिए जाने का वर्णन, यम के यहाँ से गुरु के पुत्र को वापस लाने आदि का वर्णन है । कंस की हत्या का समाचार सुनकर उसके ससुर जरासंध का कृष्ण के साथ युद्ध के लिए आना, बलराम का रेवती के साथ विवाह, रुक्मिणी का कृष्ण को पत्र भेजना, रुक्मिणी हरण, रुक्मिणी स्वयंवर, सत्या और सत्यभामा स्वयंवर, सत्यभामा का श्रीकृष्ण के साथ प्राक्ज्योतिषपुर जाना, मुरासुर और नरकासुर का वध, कृष्ण की अदिति के कुंडल लौटाने के लिए स्वर्ग की यात्रा, पारिजातापहरण आदि का वर्णन है । फिर सत्यभामा के साथ कृष्ण के वापस द्वारका चलने के वर्णन से काव्य समाप्त हो जाता है ।

सुकुमार कवि ने इस काव्य में श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार माना है । कृष्ण - जन्म के वर्णन के साथ ही साथ कवि ने कृष्ण के देवत्व पर बल दिया है । कवि ने कृष्ण को दिव्य शक्ति से संपन्न माना है । सुकुमार कवि ने अपनी मन चाही, चुनी हुई कृष्ण लीलाओं का ही वर्णन किया है । काव्य की रचना श्रीमद् भागवत से प्रेरणा ग्रहण कर किया है । यह काव्य अपनी मौलिकता लिए हुए हैं । कवि ने कृष्ण लीला से वे ही प्रसंग चुने हैं जो काव्य का सौंदर्य बढा सके । ऐसी मौलिकता जो स्वयं सुकुमार कवि ही दे सकते हैं । कृष्ण लीला से संबंधित सब के सब काव्यों में माखन चोरी दिन में की जाती है । लेकिन सुकुमार कवि के कृष्ण माखन चोरी रात को करते हैं । इसी प्रकार बाकी लीलाएँ भी अपनी मौलिकता लिए हुए हैं ।

इस काव्य में कवि ने कंस के निरंकुश, नृशंस तथा अत्याचारी शासन का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है । लोग बिना कुछ बोले सब कुछ सहते रहते थे । व्रज के लोग कृष्ण को अपना पुत्र और सखा मानते थे । वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि कृष्ण स्वयं भगवान हैं । फिर भी वे मनसा वाचा कर्मणा श्रीकृष्ण के भक्त थे । जब कृष्ण मथुरा चले जाते हैं तो वे श्रीकृष्ण के विरह में तड़पते रहते हैं ।

सुकुमार कवि उच्चकोटि के भक्त हैं । वे कृष्ण को साक्षात् ईश्वर मानते थे जो साधुओं की रक्षा तथा दुष्टों को दंड देने के लिए अवतरित होते हैं । उनके कृष्ण अवतारी हैं जो अपने पूजनेवालों पर हर तरह की कृपा करते हैं और अतीव सौंदर्य से युक्त हैं । उनके कृष्ण हर तरह के पापों को हरनेवाले हैं ।

इस काव्य का प्रधान रस वीर है । इसमें शृंगार रस और भक्ति रस भी यत्र तत्र मिलते हैं । इसमें अत्यंत रमणीय रूप में प्रकृति चित्रण मिलता है । इस काव्य में अलंकारों की भरमार सी मिलती है । प्रसंगानुकूल छंदों और अलंकारों का प्रयोग करने में सुकुमार कवि सिद्धहस्त है । श्रीकृष्णविलास की शैली अत्यंत रमणीय, सरल तथा लचीली है । कृष्णमाचार्य का कहना है कि यह काव्य कवि के नाम की तरह ही सुकुमार है ।[1] यह वैदर्भी रीति में लिखा गया है । कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कृष्णविलास काव्य अत्यंत मनोरम, सुन्दर तथा सुकुमार काव्य है ।

निष्कर्ष

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण कवियों और संस्कृत के कवियों ने अपनी अपनी इच्छा और संप्रदाय के अनुरूप काव्य की रचना की । सूर ने मानवीय धरातल पर कृष्ण का अंकन किया तो तुलसी ने अवतारी के रूप में किया है । मीरा तथा रसखान ने अपने इष्टदेव का लीला गान किया है । नारायण कवि ने भागवत के अनुरूप कृष्ण काव्य की रचना की तो बिल्वमंगल ने स्फुट पदों की मौलिक रचना की । जयदेव ने गेय पदों की रचना करके सहृदयों के मन को आनन्दित किया । सुकुमार कवि ने अत्यंत ओजस्वी तथा वीर रस मण्डित शैली से कृष्ण की स्तुति की । सभी कवियों ने समान रूप से कृष्ण की कथा के कतिपय प्रसंगों को अपने काव्य का विषय बनाया ।

---

1. The poem is as beautiful as signified by the poet's name-Krishnamachariar, History of Classical Sanskrit Literature, p.251

तीसरा अध्याय

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्यों और संस्कृत के कृष्ण काव्यों में कृष्ण कथा प्रसंग - ।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना चाहता है । इसी लालसा के साथ वह प्रत्येक दृश्यमान तथा अदृश्यमान वस्तु के प्रति सौंदर्यात्मक बिंब अपने मन में स्थापित करता है । इसी सौंदर्यात्मक बिंब का प्रकटीकरण वह सहज एवं सुन्दर अभिव्यक्ति के ज़रिए साहित्य में करता है ।

प्राचीन काल में भारत में लीला गान की वाचिक परंपरा थी । वह परंपरा पुराणों से संरचित हुई थी । आम जनता लीलाओं का गान लोक गीतों या गेय पदों के रूप में करती थीं । आचार्य द्विवेदी के अनुसार "संभवतः दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में भागवत परंपरा से भिन्न भी कोई लीला गान की शास्त्रीय परंपरा थी ।"[1] फिर धीरे धीरे साहित्य का सृजन हुआ । लोक गीतों की परंपरा धीरे धीरे लुप्त होने लगी और गीतों और लोक कथाओं को साहित्य में लिपिबद्ध किया गया । इस प्रकार कथा-प्रसंगों का अत्यंत विस्तृत भंडार उपस्थित हुआ ।

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण की व्रजलीला, मथुरालीला और द्वारिका लीला इन तीनों लीलाओं का गान किया है । वल्लभ संप्रदाय के कवियों ने तो श्रीकृष्ण की समस्त लीला-माधुरी को कथा रूप में पिरोने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । इन कवियों ने श्रीमदभागवत पुराण को आधार मानकर कृष्ण काव्य की रचना की है । साथ ही अपनी सहजानुभूति और स्वतंत्र मनोवेगों का प्रयोग करके कृष्ण लीला को नये रंगों में रंगने का प्रयास किया है । श्रीकृष्ण की बाल सुलभ लीलाओं को वास्तविकता के आधार पर, बाल मनोविज्ञान का

---

1. हिन्दी साहित्य - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 167

सहारा लेकर जन समुदाय के सामने प्रस्तुत किया है । निंबार्क संप्रदाय के कवियों ने भागवत को आधार मानकर कृष्ण चरित की रचना की है । लेकिन इन संप्रदायों ने कृष्ण लीला के माधुर्य पक्ष पर अधिक बल दिया है । राधा-वल्लभ संप्रदाय, सखी संप्रदाय, श्री शुक संप्रदाय और ललित संप्रदाय के कवियों ने तो केवल श्रीकृष्ण की माधुर्य लीलाओं का ही गुणगान किया है । प्राणनाथी संप्रदाय के कवियों ने तो भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण की व्यावहारिकी, प्रतिभासिकी और वास्तविकी लीला का वर्णन किया है । भक्तिकालीन कवियों ने अपने काव्यों में कृष्ण कथा से संबंधित निम्न प्रसंगों का वर्णन किया है । व्रज में कृष्ण जन्म, महोत्सव, नारछेदन, कृष्ण को पालने में झुलाना, पूतनावध, श्रीधर अंग भंग, बकासुरवध, शकटासुर वध, तृणावर्त वध, कृष्ण का नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगाँठ, घुटनों चलना, पावों चलना, कृष्ण के हाथों से कौए का माखन-रोटी चुराना, मृत्तिका भक्षण, गोचारण, बकासुरवध, अघासुरवध, वत्स हरण, धेनुक वध, कालिय दमन, दावानल पान, प्रलंब वध, मुरली वादन, राधा से मिलन, दूध दुहना, कृष्ण का गारुडी बनना, गोवर्धन धारण, वरूण से नन्द को छुडाना, चीर हरण, यज्ञपत्नियों पर अनुग्रह, पनघट लीला, राधाकृष्ण विवाह, संभोग प्रसंग, रास पंचाध्यायी, जल विहार, राधा कृष्ण का क्रीडा कौतुक, शंखचूड वध, वृषभासुर वध, केशी वध, व्योमासुर वध, दान लीला और मान लीला । ये प्रसंग व्रजलीला के अंतर्गत आते हैं ।

अक्रूर संग मथुरा गमन, रजक वध, कुब्जा प्रसंग, धनुर्भंग, कुवलयापीडवध, मुष्टिक चाणूर वध, कंस वध, उग्रसेन को राजा बनाना, यज्ञोपवीत उत्सव, गोपियों का विरह, भ्रमर गीत प्रसंग, जरासंध विजय, कालयवन वध, मुचुकुंद प्रसंग और द्वारका प्रस्थान आदि मथुरा लीला के अंतर्गत आते हैं ।

द्वारिका लीला में द्वारका प्रवेश, चौगान खेलना, रुक्मिणी हरण, जांभवती और सत्यभामा विवाह, पंचपटरानी विवाह, शतधन्वा वध, भौमासुर वध, कल्पवृक्ष आनयन, नृगोद्धार, पौण्ड्रक वध, जरासंध वध, शिशुपाल वध, शाल्व वध, दंतवक्रवध, सुदामा चरित, व्रज की स्मृति, कृष्ण का कुरुक्षेत्र आगमन, महाभारत के कृष्ण आदि प्रसंग आते हैं ।

इस प्रकार भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने उपर्युक्त शीर्षकों के अंतर्गत आनेवाले प्रसंगों को अपनी अपनी रुचि के अनुसार चुनकर कृष्ण काव्य की रचना की है । जैसे की ऊपर कहा गया है वल्लभ संप्रदाय के कवियों ने तो उपर्युक्त प्रसंगों में से प्राय: सभी प्रसंगों का गान किया है । बाकि संप्रदाय के कवियों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार प्रसंगों को चुनकर उनका वर्णन किया है । मध्यकाल में ऐसे भी कवि रहे हैं जिन्होंने स्वतंत्र रूप से कृष्ण चरित का गान किया है जैसे मीरा और रसखान । उन्होंने कृष्ण को अपना आराध्य मानकर अपनी इच्छा के अनुसार कृष्ण लीला का, कृष्ण के सौन्दर्य का और कृष्ण कथा का मनोरंजक वर्णन किया है । इस प्रकार भक्तिकालीन साहित्य के अधिकांश भाग कृष्ण कथा साहित्य से भरपूर दिखाई पड़ते हैं ।

संस्कृत के कृष्ण काव्यों में कृष्ण कथा प्रसंग

संस्कृत में कृष्ण कथा साहित्य का आरंभ पौराणिक काल से शुरू होता है । जैसे कि पहले अध्याय में कहा जा चुका है, कृष्ण कथा से संबंधित सबसे प्रमुख पुराण श्रीमद् भागवत रहा है । ब्रह्मवैवर्त पुराण, विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण में कृष्ण कथा का वर्णन व्यापक रूप में मिलता है । बाकी पुराणों तथा महाभारत में भी यत्र-तत्र श्रीकृष्ण का उल्लेख और वर्णन मिलता है ।

श्रीमद् भागवत पुराण में आदि से अंत तक विष्णु के अवतारों का ही गुण गान मिलता है । दशम स्कंध में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन मिलता है।

इन्हीं कृष्ण-लीला प्रसंगों से परवर्ती कवियों ने प्रेरणा ग्रहण कर कृष्ण-लीला काव्यों का प्रणयन किया । जैसे कि ऊपर कृष्ण कथा प्रसंगों के बारे में कहा गया संस्कृत में भी मूल रूप से वे ही प्रसंग मिलते हैं । अंतर सिर्फ इतना ही है कि हिन्दी के कवियों ने मूल प्रसंगों में कुछ अपने विचारों को जोडकर उसे प्रस्तुत किया है । यह तो सर्वविदित है कि तत्कालीन परिस्थितियों तथा प्रादेशिक रहन-सहन का असर व्यक्ति पर पडता है । इसलिए हिन्दी के कवियों ने मूल संस्कृत के प्रसंगों को अपनी परिस्थितियों के अनुरूप ढाला है और उसमें तत्कालीन समय की सभ्यता और संस्कृति को दर्शाने की कोशिश भी की है । लेकिन हिन्दी कवियों का कृष्ण काव्य संस्कृत के पौराणिक कृष्ण कथाओं की छाया में ही पला है और बढ़कर इतने बडे साहित्य का रूप ले लिया है ।

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्य और कृष्ण कथा प्रसंग

कृष्ण काव्य भक्तिकालीन साहित्य में एक अलग पहचान बनाए हुए हैं । सूरदास इस साहित्य के प्रमुख कवि रहे हैं । उनका सूरसागर, "मनोरागों पर आधारित विशाल महाकाव्य"[1] है जिसमें बाल कृष्ण की अनन्य चेष्टाओं का चित्रण कवि ने कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण से चित्रित किया है । इतना ही नहीं कृष्ण की यौवन लीला, दान लीला, मान लीला, श्रृंगार लीला आदि का भी चित्रण इसमें किया है । आधार तो इसका भागवत पुराण ही रहा है, लेकिन सूर ने कुछ मौलिक और काल्पनिक लीलाओं को भी इसमें स्थान दिया है ।

मीरा और रसखान ने कृष्ण कथा का वर्णन अपनी इच्छा के अनुरूप किया है । मीरा ने कृष्ण का पहले पहल बोलना, माटी भक्षण प्रसंग,

---

1. हिन्दी साहित्य - डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - पृ. 113

माखन चोरी, रूठना, नटखटपन, जिद्द, गोपी उलाहना, गोचारण, चीर हरण, दान लीला, जल भरण, कालिय दमन, गोवर्धन धारण, मान लीला, नौका लीला, रास लीला, उद्धव लीला आदि का चित्रण किया है । रसखान ने कृष्ण का गोचारण, चीर हरण, कुंज विलास, कालिय दमन, कंस का क्रोध, वन लीला, दधि दान, फाग लीला, रास लीला, वंशी वादन, प्रेम लीला, भ्रमर गीत आदि प्रसंगों पर अपनी लेखनी चलाई है ।

तुलसीदास ने श्रीकृष्ण गीतावली में भागवत पुराण से प्रेरणा ग्रहण कर अपने भावानुकूल कृष्ण लीला का चित्रण किया है । उन्होंने कृष्ण की बाल लीला, यशोदा का वात्सल्य चित्रण, कृष्ण का माँखन रोटी माँगना, गोवर्धन धारण और भ्रमर गीत प्रसंग को अपने काव्य में स्थान दिया है । गीति काव्य होने के नाते इसमें कृष्ण कथा का संकेत मात्र मिलता है ।

संस्कृत के कृष्ण काव्य और कृष्ण कथा प्रसंग

नारायणीयम् में भागवत के अनुरूप ही कृष्ण लीला प्रसंग मिलते हैं । भागवत में कृष्ण लीला का विस्तृत वर्णन मिलता है लेकिन नारायणीयम् में लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन ही मिलता है । लेकिन भागवत के सभी कृष्ण लीलाओं को इसमें स्थान दिया गया है । दार्शनिकता इस ग्रंथ की मूल विशेषता रही है । बिल्वमंगल स्वामी के कृष्णकर्णामृत का आधार भी मूलतः श्रीमद् भागवत ही रहा है, लेकिन इसमें कवि ने अपनी भावना के अनुसार कुछ मौलिक लीलाओं को स्थान दिया है । बाल लीला, माखन चोरी प्रसंग, कृष्ण का नटखटपन आदि कृष्ण प्रेमी बिल्वमंगल स्वामी के प्रिय विषय रहे हैं । इसका प्रभावात्मक ढंग से, संक्षिप्त रूप में चित्रण इस काव्य में प्राप्त होता है । श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का चित्रण इस ग्रंथ की विशेषता है । जयदेव ने गीत गोविन्द में राधाकृष्ण की श्रृंगार लीला का वर्णन किया है जो अपने आप में अत्यंत मनोहर तथा रसात्मक बन गया है । इसमें राधा और कृष्ण का

प्रेमालाप, सौंदर्य चित्रण, विरह चित्रण तथा मिलन लीला का दृश्य जयदेव कवि ने प्रस्तुत किया है । इसे श्रृंगार लीला का अत्युच्चतम काव्य कहते हैं । सुकुमार कवि ने अपनी मन चाही लीलाओं का श्रीकृष्णविलास काव्य में स्थान दिया है ।

वसुदेव और देवकी का विवाह होते ही एक आकाशवाणी हुई कि इनका आठवाँ बेटा अपने मामा कंस का वध करेगा । कंस अपनी बहन देवकी को अपने प्राणों से भी अधिक चाहते थे । बहन के प्रति अपने स्नेह के कारण ही उसके विवाह के तुरंत बाद कंस ने खुद वसुदेव और देवकी को रथ में बिठाकर रथ का संचालन किया था । आकाशवाणी सुनकर कंस एकदम भयभीत हुआ । अचानक देवकी के प्रति उसका स्नेह क्रोध में बदल गया और वह देवकी को मारने के लिए उद्यत हुआ । वसुदेव ने उसे सांत्वना दी और देवकी को कंस के हाथों से बचाया । साथ ही यह वादा भी किया कि उनका जना हर बच्चा वह कंस के हवाले कर देगा । कंस ने वसुदेव और देवकी को कारागार में डाल दिया और एक-एक करके उनके छः बेटों को पैदा होते ही मार दिया । सातवाँ पेट से गायब हो गया । फिर धीरे धीरे आठवें पुत्र के जन्म का समय निकट आता गया ।

श्रीकृष्ण जन्म

श्रीमद् भागवत के दशमस्कंध के तीसरे अध्याय में श्रीकृष्ण जन्म का वर्णन आता है । श्रीकृष्ण के जन्म के समय समस्त पृथ्वी मंगलमय बन गई । आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं। अप्सराएँ नृत्य करने तथा किन्नर-गन्धर्व गान करने लगे । विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण चतुर्भुज रूप में अवतरित हुए ।[1] वसुदेव और देवकी ने उनको परब्रह्म मानकर उनकी स्तुति की । वसुदेव तथा देवकी को अपने वास्तविक रूप का ज्ञान कराकर विष्णु ने उन्हें पुत्र भाव से देखने का आदेश दिया । फिर भगवान ने उन्हें गोकुल ले जाने तथा यशोदा की कन्या योग-माया

---

1. श्रीमद् भागवत - 10/3/8-9

को उनके बदले मथुरा ले आने को कहा । यह कहकर विष्णु ने एक शिशु का रूप धारण किया । वसुदेव शिशुरूपी भगवान को लेकर चले तो कारावास के कवाड़ स्वतः खुल गये । गोकुल जाने के लिए यमुना ने मार्ग दिया और पार करने में शेष ने फणमंडल से छाया की । वसुदेव ने व्रज पहुँचकर शिशु को यशोदा की शय्या पर सुलाया तथा कन्या रूपी योग-माया को लेकर पुनः मथुरा के बंदी गृह में लौट आए । यशोदा तो योग-माया के प्रभाव से गहरी नींद में डूबी हुई थी इसलिए यह जान नहीं पायी कि बच्चा कौन सा है । जब यशोदा की नींद खुली तो उसने एक सुन्दर बालक को अपने बगल में लेटे हुए देखा । फिर व्रज के घर-घर में यह बात फैल गई कि यशोदा ने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया है ।

पुत्र जन्म का समाचार पाकर नन्द ने गोकुल में महान उत्सव मनाया । ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर विधिपूर्वक पुत्र का जातकर्म संस्कार कराया । ब्राह्मणों को गाएँ तथा धन दान दिया गया । व्रज में सब घरों में चन्दनादि का छिड़काव किया गया । गोपगण बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण पहन कर बहुमूल्य उपहार लेकर नन्द के द्वार आने लगे । वे अत्यंत संतुष्ट होकर आपस में दूध, दही, घी और जल छिड़कने और मुख पर माखन मलने लगे ।[1]

सूरदास ने भी अपने सूरसागर में कृष्ण के जन्मोत्सव का वर्णन किया है । सूरसागर में कृष्ण जन्म का वर्णन संक्षिप्त है पर कृष्ण जन्म के बाद व्रज में होनेवाले उत्सव का अत्यंत विस्तृत रूप में वर्णन मिलता है । कृष्ण जन्म का वर्णन सूरदास यों करते हैं - बुधवार, रोहिनी नक्षत्र तथा अष्टमी का संगम था । ऐसे पावन अवसर पर श्री हरि विष्णु माथे पर मुकुट धारण किए पीतांबर ओटे, शंख,चक्र,गदा तथा पद्म हाथ में लिए हुए श्रीकृष्ण भगवान के

---

1. श्रीमद् भागवत - 10/5/9, 12, 14

रूप में प्रकट हुए ।[1] कृष्ण जन्म के बाद व्रज के घर-घर में आनन्द मनाया गया । नन्द बाबा को जैसे नवनिधि मिल गई । उन्होंने सब लोगों को दान दिया ।[2] व्रज में वृद्ध, तरुण तथा बालक सब नाचने-गाने लगे । गोरस का कीच मचाकर एक दूसरे पर छिटकते हुए खुशियाँ मनाने लगे ।[3] दाई का नार छेदन के समय कंचन का हार पाने के लिए झगडा करने का प्रसंग मौलिक है ।[4]

भागवत और सूरसागर में कृष्ण जन्म का वर्णन एक जैसा है । एक प्रमुख अंतर यह है कि भागवत में श्रीकृष्ण के अवतार पर बल दिया गया है और सूरसागर में जन्म के बाद हुए आनन्द महोत्सव पर । सूरदास ने आनन्द महोत्सव का अत्यंत बृहत् वर्णन किया है जिसमें विविधता एवं मौलिकता है ।

---

1. बुध रोहिनी अष्टमी संगम, वसुदेव निकट बुलायौ ।
   सकल लोकनायक सुखदायक अजन जन्म धरि आयौ ।
   माथैं मुकुट, सुभग पीतांबर, उर सोभित भृगु रेखा ।
   संख चक्र गदा पद्म बिराजत, अति प्रताप सिसु भेषा ।
   सूरसागर - पद 622 - नं.प्र.स.
2. नंदराई कैं नवनिधि आई ।.......
   छिरकत हरद दही, हिय हरषत, गिरत अंक भरि लेत उठाई ।
   सूरदास सब मिलत परस्पर, दान देत नहीं नंद अघाई ।।
   - 637 सूरसागर - न.प्र.सं.
3. अति आनंद होत गोकुल मैं, रतण भूमि सब छाई ।
   नाचत वृद्ध, तरुण अरु बालक, गोरस कीच मचाई
   सूरदास स्वामी सुख सागर सुन्दर स्याम कन्हाई ।।
   पद 639 - सूरसागर - नं.प्र.सं.
4. वही - दशम स्कंध पद - 18

शिशु कृष्ण को देख कर व्रजवासियों के दिल कैसे मचल उठते हैं । वे कैसे इसे प्रकट करते हैं, खुशी के अवसर पर क्या क्या करते है ये सब सूरदास के वर्णन की खासियत है ।

मीरा ने एक पद में श्रीकृष्ण जन्म का चित्र खींचा है । उन्होंने कृष्ण जन्म के बाद गोकुल में जो आनन्द उत्सव माना गया उसका चित्रण भी किया है ।

जसुमति पुत्र जायो, रूप गुण अगरो ।
गोविन्द पुरणचंद , तारण जुग सघरो ।।
मेरे श्रवण भनक पडी, बाजत है घुघरो ।
आधि रेन अंधियारी में, आयो तारण जुगरो ।।
श्री गोकुल में भीड भई, मीलत नहीं डगरो ।
एक आवे एक जावे, एक मचावे झगरो ।।
प्रात समे धुम ऐसी मची, चल सके न पगरो ।
मीरा मुखारविंद निरखे, जीवननंद नन्द रो ।।[1]

यहाँ मीरा ने कृष्ण जन्म के बाद गोकुल में जो घटनाएँ घटी उसका विवरण दिया है । मीरा कहती है कि यशोदा का रूप गुण से भरपूर एक पुत्र जना है । वह आधी रात को पृथ्वी के जनों को तारण करने के लिए आया है । गोकल में बड़ी भीड लगी है । एक आदमी आता है, एक जाता है और भीड में एक दूसरे से टकरा भी जाते हैं, इस वजह से झगडते भी हैं । वहाँ इतनी भीड इकट्ठी हुई है कि कोई आसानी से चल नहीं सकता । मीरा कहती है कि उस सुन्दर बालक का मुख देखकर जीवनानंद मिल जाता है ।

---

1. मीरा सुधा सिंधु - व्रजभाव के पद - 285

यहाँ मीरा के कृष्ण जन्मोत्सव वर्णन के साथ-साथ इस बात की ओर भी संकेत किया है कि कृष्ण गोविन्द है, पूर्णचन्द्र है । वे पृथ्वी के लोगों को तारण करने के लिए आये हैं । यहाँ मीरा ने कृष्ण के अवतार रहस्य का उद्घाटन किया है । वह कृष्ण अपना मुख कमल देखनेवालों को अर्थात् अपने भजनेवालों को जीवन का आनन्द देनेवाले हैं । यहाँ मीरा ने ऐसी बात कहकर भक्ति पर बल देने की कोशिश की है ।

नारायणीयम् के कर्ता नारायण कवि ने श्रीकृष्ण जन्म का वर्णन किया है । नारायण कवि ने भी भागवत के अनुरूप ही श्रीकृष्ण जन्म का वर्णन किया है । अठतीसवें और उनतालीसवें दशक में श्रीकृष्ण जन्म के साथ-साथ प्रकृति का भी अत्यंत रमणीय वर्णन मिलता है । नारायण भट्टत्तिरी कहते हैं कि जब दिशाएँ मेघों के बरसने से अत्यंत शीतल हो चुकी थी, तब रात में चन्द्रोदय के समय भगवान अवतरित हुए । भगवान ने वसुदेव और देवकी को विष्णु रूप में दर्शन दिया । फिर दोनों ने भगवान की स्तुति की । फिर माता के कहने पर भगवान ने शिशु का रूप धारण किया । इसके बाद वसुदेव ने योगमाया के साथ भगवान का स्थानान्तरण किया ।[1] कारागार में बच्चे के रोने की आवाज़ सुनकर कंस दौड़ा हुआ आया । फिर कंस ने आकर बच्ची को हठात् छीन लिया और भूमि पर पटकने वाला ही था कि बच्ची हाथ से छूट गयी और आकाश में जाकर उसने देवी का रूप धारण किया । फिर देवी ने कंस को चेतावनी दी कि उसका हत्यारा भूमि पर अवतरित हो चुका है । इतना कहकर योगमाया अप्रत्यक्ष हो गई ।[2]

नारायणीयम् में कवि ने कृष्ण जन्म के समय का प्रकृति चित्रण अत्यंत मनोरम ढंग से किया है । लेकिन सूरसागर में प्रकृति का इतना

---

1. नारायणीयम् - दशक - 38
2. वही - 39

वर्णन नहीं मिलता । सूरसागर में कृष्ण जन्म के बाद हुए आनन्दोत्सव पर बल दिया गया है । लेकिन नारायणीयम् में भगवान के अवतार पर बल दिया गया है । साथ ही कृष्ण को विष्णु का अवतार भी मान लिया गया है ।

यही भाव सुकुमार कवि ने भी अपने श्रीकृष्ण विलास काव्य में व्यक्त किया है । श्रीकृष्णविलास काव्य के द्वितीय सर्ग में उन्होंने अत्यंत रमणीय तथा संक्षिप्त रूप में श्रीकृष्णजन्म का वर्णन किया है । सुकुमार कवि ने अत्यंत रमणीय ढंग से श्रीकृष्ण जन्म का चित्रण किया है । उनका कहना है कि कृष्ण ने असुरों के संहार हेतु अवतार ग्रहण किया है ।[1] कृष्ण अपने माता पिता के समक्ष श्यामल वर्ण में चतुर्भुज रूप में प्रत्यक्ष हुए । उनके मस्तक पर किरीट, कानों में कुंडल तथा गले में हार था । वसुदेव और देवकी पुत्र को देखकर आनन्द-मग्न हो गये ।[2] फिर अतिभीत होकर कंस से उनकी रक्षा करने की प्रार्थना की और विष्णु का वह रूप परित्याग करने का आग्रह किया ।[3] इसके बाद वसुदव कृष्ण को गोकुल में ले गये और वहाँ यशोदा की कन्या से कृष्ण का स्थानान्तरण किया ।[4] कृष्ण जन्म के बाद नन्द की खुशी को एक श्लोक में सुकुमार कवि ने व्यक्त किया है ।[5]

---

1. जाते हरौ दैत्य विमर्दनेन विश्वम्भराभारमपाचिकीर्षौ ।
   मुनेः प्रहर्षः कलहप्रियस्य जगतत्प्रहर्षश्च समावभूताम् ।। श्रीकृष्णविलास-2/62
2. श्यामं चतुर्बाहुमुदारहारं किरीटिनं कुण्डलदीपगण्डम् ।
   पिताऽपि माता च विलोक्य पुत्रं आनन्दमग्नौ विवशाव भूताम् ।।
   वही - 2/64
3. प्रसीद भीतौऽस्मतीव कंसात्
   इदं तु रूपं प्रतिसंहरेति ।। श्रीकृष्णविलास - 2/65
4. तं शाययित्वा शयने तदीये
   कन्यां समादाय निपत्य गच्छन् । - वही - 2/73
5. लब्ध्वा निधानं न तथा दरिद्रो गतिं समासाद्य तथा न पंगुः ।
   तथा न चान्धो दृशमान्य हृदयेत् यथाऽऽप्तपुत्रस्य जहर्ष नन्दः ।।
   कृष्णविलासं - 3/18

नारायणीयम् तथा श्रीकृष्णविलास काव्यम् में श्रीकृष्ण अवतार चित्रण भागवत के अनुरूप ही रहा है । कृष्ण विलास में कवि ने कंस के भय को अत्यंत बढ़ा चढ़ाकर वर्णित किया है । यह उस काव्य की एक मौलिकता है । सुकुमार कवि ने कृष्ण के दुष्ट दलन और शिष्ट संरक्षण की वृत्ति पर अधिक बल दिया है । कृष्ण जन्म के बाद नन्द की खुशी एक ही श्लोक में सुकुमार कवि ने व्यक्त की है जब कि नारायणीयम् में इसका उल्लेख नहीं है ।

पूतना वध

सूरदास ने पूतना वध का वर्णन तीन पदों में किया है । यह प्रसंग श्रीमद् भागवत के छठे अध्याय में, श्री विष्णु पुराण में पंचम अंश के पाँचवें अध्याय में, ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण जन्म खंड के दसवें अध्याय में, हरिवंश पुराण में विष्णु पर्व के छठे अध्याय में, नारायणीयम् में चालीसवें दशक में तथा श्रीकृष्णविलास काव्य के तीसरे सर्ग में वर्णित है ।

बालघातिनी पूतना कृष्ण को मारने के उद्देश्य से गोकुल में आती है । वह मनोहर श्रृंगार करके नन्द भवन में आती है । उसने छल पूर्वक स्तनों पर विष लगाया था । श्रीकृष्ण उसके कपट को जानते थे । पूतना ने कृष्ण को उठाकर विषयुक्त स्तन पान कराया । परमात्मा ने दूध के साथ-साथ उसके प्राण भी ले लिये । वह राक्षसी अपना असली रूप लेकर योजन पर्यन्त दूर जाकर गिर पड़ी ।

सूरदास का कृष्ण लीला वर्णन अपने ढंग का अलग है । सूर वर्णन करते करते कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने पूतना को माता का पद दिया है

तथा विष्णु लोक भेज दिया - सूरज दै जननी गति ताकौं कृपा करी निज धाम पठाई ।।[1]

भगवान का ऐसा स्वभाव है कि वे अपने भजनेवालों को मोक्ष प्रदान करते हैं । भगवान इस बात पर भेद भाव नहीं करते कि भजनेवाले उन्हें प्यार से भजते है या शत्रु भाव से । जिस किसी तरह भी भजा जाए भगवान उसे स्वीकारते हैं । पूतना ने कृष्ण को मारने के लिए अपना दूध पिलाया । दूध पिलाना माता का काम है । भले ही वह मारने के लिए ही पिलाया हो, लेकिन पिलाया तो ज़रूर है । इसलिए कृष्ण ने पूतना को माता का पद दे दिया और उसे वैकुण्ठ धाम अथवा मोक्ष प्रदान किया । पूतना को मोक्ष देने की बात सब पुराणों में भी वर्णित है । सूर ने यहाँ कृष्ण को अवतारी मानते हुए मोक्ष की बात कही है ।

नारायण कवि ने भी पूतना मोक्ष का प्रसंग इसी तरह वर्णित किया है । इसके साथ ही नारायण कवि ने इस बात पर भी संकेत किया है कि भगवान बालकों का वध करने की वजह से पूतना पर रुष्ट थे । इस प्रसंग से नारायण कवि ने इस बात पर भी संकेत किया है कि बालक वध बहुत बड़ा पाप है ।

समधिरुह्य तदङ्कमशङ्कितस्त्वमथ बालकलोपन रोषितः ।
महदिवाम्रफलं कुचमंडलं प्रतिचुचूषिथ दुर्विषदूषितम् ।।[2]

इस प्रसंग के वर्णन पर श्रीमद् भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित पूतना मोक्ष प्रसंग का असर देखा जाता है ।

---

1. सूरसागर - पद 50 (दशम स्कंध)
2. नारायणीयम् - 40/7

सुकुमार कवि ने अपने श्रीकृष्णविलास काव्य में पूतना वध का वर्णन अत्यंत रोचक ढंग से किया है । इस काव्य के अनुसार पूतना रात को आती है । जब कृष्ण और यशोदा दोनों सो जाते हैं तो पूतना धीरे धीरे आकर कृष्ण को अपने गोद में लिटाकर स्तन्य पान कराती है । कृष्ण उसके स्तन्य को पांचजन्य शंख की तरह पकड़कर दूध के साथ-साथ उसके प्राणों को भी पीते हैं ।[1] फिर पूतना भयंकर आवाज़ के साथ हताश होकर भूमि पर गिरती है । आवाज़ सुनकर नन्द गोपों के साथ दौड़कर आते हैं । वहाँ वे देखते हैं कि कृष्ण पूतना के मृत देह पर खेल रहे हैं । यह देखकर वे अवाक् रह जाते हैं ।[2]

सुकुमार कवि की यह लीला अपनी मौलिकता लिए हुए है । सभी ग्रंथों और पुराणों में पूतना दिन को आती है जबकि इस काव्य में पूतना रात को आती है । सुकुमार कवि इतना ऊँचा सोचते हैं कि उनके कृष्ण को पूतना का स्तन्य पांचजन्य शंख की तरह लगता है । उसी प्रकार पूतना वध के बाद कृष्ण पूतना के मृत शरीर पर खेलते हैं जबकि अन्य ग्रंथों में पूतना के बगल में लेटे हुए वर्णित किया है । उसी प्रकार पूतना व्रज में यशोदा की लोरी सुनकर आकाश मार्ग से आती है । लोरी से उसे बच्चा होने का अनुमान लगता है । यह भी सुकुमार कवि की कल्पना का कमाल है । श्रीमद् भागवत में पूतना को मोक्ष देने का उल्लेख है । लेकिन कृष्ण-विलास काव्य में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है । पूतना वध का भाव तो भागवत से लिया है । लेकिन उसका वर्णन अपनी मौलिकता लिए हुए है । यह बात भी उल्लेखनीय है कि लीलाओं के वर्णन क्रम में अन्तर है । भागवतादि ग्रंथों में कृष्ण की पहली लीला पूतना वध है तो श्रीकृष्णविलास काव्य में शकटासुर भंजन है । इसके बाद ही पूतना वध का वर्णन आता है । कवि

---

1. श्रीकृष्णविलास काव्य - 3/48, 49, 50

2. वही - 3/51, 52, 53

का वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी असरदार है । पांचजन्य शंख के उल्लेख से कवि ने पाठकों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया है कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं ।

कृष्णोपनिषद् के अनुसार पूतना को अविद्या का प्रतीक माना गया है । कृष्ण यानि ज्ञान, अविद्या या अज्ञान रूपी पूतना का वध अर्थात् नाश करते हैं ।

<u>कृष्ण को पालने में झुलाना</u>

बालक कृष्ण को पालने में झुलाने का प्रसंग सूरसागर में सुन्दरता के साथ वर्णित है । यशोदा मैया हरि को पालने में झुला रही है । सूरदास का वर्णन देखिए -

जसोदा हरि पालनैं झुलावै ।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै ।।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया काहैं न आनि सुवावै ।
तू काहैं नहिं बेगहिं आवै तोकौं कान्ह बुलावै ।
कबहुं पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ।।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि करि करि सैन बतावै ।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नँद भामिनि पावै ।।[1]

इन पंक्तियों में सूर ने कृष्ण को पालने में झुलाने का जो दृश्य चित्रित किया है वह सचमुच जीता जागता बन पड़ा है । यशोदा के मातृ हृदय का चित्रण, यशोदा द्वारा कृष्ण को हिलाना, डुलाना, दुलारना, चूमना, लोरी गाना आदि स्वाभाविक लगते हैं । यशोदा द्वारा निंदिया

---

1. सूरसागर - पद 43

को बुलाना और कृष्ण को जल्दी सुलाने को कहना मर्मस्पर्शी बन गया है । इस चित्रण के साथ ही सूर ने बाल मनोविज्ञान का आश्रय लेकर बालकों की चेष्टाओं का वर्णन भी किया है । जिस प्रकार बालक सुलाते समय, कभी अपनी पलकें बंद करते हैं, कभी खोल के देखते हैं, कभी होंठ फड़काते हैं, उसी प्रकार कृष्ण भी कभी पलकें बंद करते और कभी खोलते दिखाई देते हैं । जिस प्रकार माता बालक को सोता देखकर उनको न जगाने के लिए इशारों से बातें करती हैं और उनके अचानक आँखें खोलते ही लोरी गुनगुनाने लगती है, उसी प्रकार यशोदा भी इशारों से बातें करती है और कृष्ण के आँखें खोलके देखते ही लोरी गुनगुनाते लगती हैं ।

सूरदास ने बड़ा ही स्वाभाविक चित्र खींचा है । कृष्ण की चेष्टाओं तथा यशोदा के मातृ हृदय का कौतूहलपूर्ण और जीवन्त चित्रण करने में सूरदास सफल हुए हैं । साथ ही सूरदास यह भी कहते हैं कि देवताओं और मुनियों को भी जो सुख दुर्लभ है वह यशोदा को प्राप्त हुआ है । अवतारी कृष्ण के लोकरंजक रूप की ओर सूक्ष्म रूप से इसमें सूरदास ने संकेत किया है । इस लीला को सूरदास की मौलिक लीला कह सकते हैं । इसका चित्रण किसी भी पौराणिक ग्रंथों में नहीं मिलता ।

श्रीधर अंग-भंग

यह प्रसंग सूरदास द्वारा कल्पित है । पुराणों में इसका चित्रण नहीं मिलता ।

मथुरा नगरी में श्रीधर नामक एक ब्राह्मण रहता था जो कंस का हितैषी था । वह कसाई का काम करता था । वह श्रीकृष्ण को मारने के उद्देश्य से गोकुल में आ गया । ब्राह्मण को आते देखा तो यशोदा

ने उसका स्वागत किया और भोजन परोस कर यमुना में जल भरने के लिए चली गई । श्रीधर मौका पाकर कृष्ण को मारने के लिए उद्यत हुआ तो कृष्ण ने उसे ताड़ दिया । श्रीकृष्ण ने उसे ब्राह्मण माना इसलिए उसको नहीं मारा । सिर्फ अंग भंग करने का निश्चय किया । जब कृष्ण को मारने के लिए श्रीधर कृष्ण के पास आया, तो कृष्ण ने उसका हाथ पकड़कर गिरा दिया । उसकी गर्दन को दबाकर जीभ मरोड दी और उस पर दही के मटके ढुलकाकर फोड दिये । कुछ दही उसके मुख पर लिपटा कर स्वयं पालने में लेटकर रोने लगे । इतने में यशोदा पानी लेकर आई । कृष्ण को रोते देखकर व्याकुल हो उठी और ब्राह्मण को डाँटने-फटकारने लगी । जीभ मरोडने की वजह से ब्राह्मण कुछ कह ही नहीं पा रहा था । यशोदा ने ब्राह्मण को घर से बाहर निकाल दिया ।

यहाँ सूरदास ने कृष्ण की अलौकिकता पर प्रकाश डाला है । कृष्ण भगवान हैं । वे कुछ भी कर सकते हैं । तभी तो इस छोटे से बालक के रूप में ही सही पालने से उठकर ये कार्य किए । अन्यायी का संहार करके धर्म स्थापना करना ही श्रीकृष्ण के अवतार का उद्देश्य रहा है । इस प्रसंग के ज़रिए सूरदास ने भगवान के इस उद्देश्य पर प्रकाश डालने की कोशिश की है । भगवान के अवतार के उद्देश्य को सफल देखने के लिए व्रज के लोग दौडे आये और सूरदास भगवान के गुणों का गान करने में लगे रहे । डॉ. अवन्तिका कुलकर्णी का कहना है कि सूरदास ने यह कथा नामदेव के पदों से ग्रहण की होगी ।[1]

विविध असुरों का वध

भगवान दुष्टों का संहार करने तथा शिष्टों का परिपालन करने के लिए अवतरित होते हैं । "परित्राणाय साधूनां विनाशाय चदुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।" यही तो गीता का वचन है ।

---

1. सूर एवं तुलसी का बाल चित्रण - डॉ. अवन्तिका कुलकर्णी - पृ. 28

कृष्णावतार के संबंध में भी यह सच है । कृष्ण ने जन्म लेते ही असुरों का संहार शुरू किया था । उनमें से मुख्य हैं शकटासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर तथा धेनुकासुर । इन असुर निग्रहों की कथा पुराणों में मिलती है । भागवत पुराण में शकटासुर और तृणावर्त वध दशम स्कंध के सातवें अध्याय में, वत्सासुर और बकासुर वध ग्यारहवें अध्याय में, अघासुर वध बारहवें अध्याय में तथा धेनुकासुर का वध पन्द्रहवें अध्याय में वर्णित है । हरिवंश पुराण के विष्णुपर्व में छठे अध्याय में शकटासुर वध का प्रसंग आता है । पद्म पुराण में उत्तर खण्ड में शकटासुर, अघासुर, धेनुकासुर आदि के वध का प्रसंग मिलता है । ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में शकटासुर, तृणावर्त, बकासुर और धेनुकासुर वध का वर्णन है ।

सूरदास ने सूरसागर में शकटासुर, कागासुर, तृणावर्त, बकासुर तथा अघासुर के वधों का वर्णन किया है । तो नारायण कवि ने नारायणीयम् में शकटासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर और धेनुकासुर आदि के वधों का वर्णन किया है । सुकुमार कवि ने शकटासुर और वत्सासुर वध का वर्णन किया है ।

शकटासुर वध

एक दिन नन्दगेह में कोई उत्सव था । यशोदा घर के काम काज़ में व्यस्त थी । कृष्ण आँगन में शकटों के बीच सो रहा था । कृष्ण के पास किसी को न पाकर शकटासुर ने शकट[1] का रूप धारण कर लिया । कृष्ण ने अपने शत्रु को पहचानकर पैर उछालकर एक लात मार दी । इस चोट से शकटासुर गिरकर मर गया ।

---

1. हिरण्याक्ष का उत्कच नाम का बलवान पुत्र था । एक बार उसने लोमश ऋषि के आश्रम के वृक्षों को कुचल डाला । लोमश ऋषि ने क्रोधवश उसे देहरहित होने का शाप दिया । ऋषि से प्रार्थना करने पर ऋषि ने उसे शाप मोक्ष देते हुए कहा कि श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श से उसकी मुक्ति हो जाएगी । वही असुर शकट का रूप धारण करके आया था । महाभागवत - दशम स्कंध - सप्तम अध्याय - [illegible] पृ. 157

सूरदास ने शकटासुर वध लीला का वर्णन इसी प्रकार किया है । सूरदास की इस लीला वर्णन की विशेषता यह है कि शकटासुर के आने का कोलाहल सुनकर ब्रजवासी घबराते हैं । वे डर के मारे अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं । अन्य कहीं भी इस प्रकार का वर्णन नहीं मिलता । भागवत पुराण के अनुसार कृष्ण ने रोकर शकटासुर को लात मारी थी तो सूर के अनुसार कृष्ण ने हँस हँस कर किलकारी मार कर लात मारी थी ।[1]

नारायण कवि ने भागवत पुराण के आधार पर शकटासुर वध लीला का वर्णन किया है । यहाँ कृष्ण ने दूध पीने की इच्छा से रोते हुए पैरों को उछाला और उससे आहत होकर शकट उलट गया । इससे उनका उद्देश्य दुष्ट दलन तथा शिष्ट संरक्षण रहा है ।

सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने शकटासुर का वध करके ब्रज के समस्त लोगों का राक्षसों से उद्धार किया । इस प्रकार वर्णन करके सूर ने कृष्ण के भक्तवत्सल रूप की ओर सूक्ष्म रूप से यहाँ संकेत किया है । सूर के अनुसार कृष्ण ने यह लीला अपने लिए नहीं, समस्त ब्रजवासियों के उद्धार के लिए की है । तो दूसरे कवियों का कहना है कि कृष्ण ने शकटासुर को अपना शत्रु होने के नाते मारा है । सूरदास ने अपने वर्णन के ज़रिए ब्रजवासियों की मंगल कामना भी की है ।

सुकुमार कवि ने शकटासुर वध का वर्णन अनोखे ढंग से किया है । उनके अनुसार कृष्ण ने लीला के लिए शकटासुर का वध किया था । कृष्ण ने खेल खेल में अपने पावों से शकट को उछाला तो शकट आकाश तक

---

1. सूरसागर - सभा संस्करण - 10/680

जाकर सीधा नीचे धरती पर अत्यंत भयंकर शब्द के साथ आ गिरा ।[1]

यहाँ सुकुमार कवि ने कहा है कि कृष्ण ने खेल-खेल में शकटासुर का वध किया है । इसमें कवि पाठकों को यह ध्यान दिलाना चाहते हैं भगवान इतने बलशाली हैं कि असुरों का वध करना उन्हें खेल के समान है । कृष्ण विलास काव्य में भगवान द्वारा वध किए गए असुरों को मोक्ष देने का कोई उल्लेख नहीं है । कवि का उद्देश्य दुष्ट दलन तथा शिष्ट संरक्षण दिखाना मात्र है ।

कृष्ण विलास काव्य की यह विलक्षणता है कि इसमें शकटासुर वध पूतना वध के पहले आता है । जब कि दूसरे ग्रंथों में यह पूतना वध के बाद आता है ।

शकटासुर वध का वर्णन सूरदास और सुकुमार कवि ने किया है । बाकि के कवियों ने इसे छोड दिया है ।

सुबोधिनी टीका के अनुसार शकट को असुर का प्रतीक माना गया है । कृष्ण के चरणस्पर्श से वह टूट जाता है । संसार व काल चक्र को जोडनेवाला अक्षदंड यानि अहंकार टूट जाता है । इस प्रकार संसार व कालचक्र का बंधन नष्ट हो जाता है ।[2] संसार व काल चक्र के बंधन को नष्ट करना तथा अहंकार को तोडना श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं । यही इस लीला का उद्देश्य रहा है ।

---

1. अथ: कदाचिच्छकटस्य शायित:
   स्वकार्यपर्याकुलया यशोदया ।
   स लीलया पादसरोरुहं शनै: ।
   उदञ्चयामास सरोजलोचन: ।। 3/3।
   मधुभिदश्चरणांबुजताडितं शकटमाशुसमुत्थितमम्बरे ।
   विपरिवृत्य पपात महीतले, पटतर ध्वनिपूरितदिङ्मुखम् ।। 3/32
2. सुबोधिनी टीका - वल्लभाचार्य - 10/7/7

कागासुर वध

इस प्रसंग का सूरदास ने मौलिक वर्णन प्रस्तुत किया है । इसका वर्णन किसी भी पुराण या किसी कवि ने भी नहीं किया ।

सूरदास कहते हैं कि एक बार एक राक्षस ने कृष्ण को मारने के लिए कौए का रूप धारण कर लिया । वह मथुरा से गोकुल चला आया । वह राक्षस नन्द के घर के छत पर आकर बैठ गया । पालने में लेटे हुए कृष्ण को देखकर कृष्ण की आँखें निकालने के लिए कृष्ण की आँखों पर आ अड़ा । कृष्ण ने उसका गला दबाकर बहुत बार घुमाया और ऐसा पटका कि वह कंस के सामने जा गिरा ।

यहाँ सूरदास ने कृष्ण के पृथ्वी पर आने का उद्देश्य व्यक्त किया है । वे कहते हैं -"सूरदास प्रभु कंस निकंदन भक्त हेत अवतार धरयौ ।"[1] यहाँ भी सूर ने सूक्ष्म रूप से कृष्ण की भक्तवत्सलता की ओर संकेत किया है ।

तृणावर्त वध

इसका वर्णन भागवत दशम स्कंद के सातवें अध्याय में और ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड के ग्यारहवें अध्याय में मिलता है । सूरदास ने सूरसागर में 6 पदों में इसका वर्णन किया है । कृष्ण को मारने के लिए कंस द्वारा भेजा गया एक और असुर है तृणावर्त ।

---

1. सूरसागर - दशम स्कंध - पद 59

तृणावर्त[1] नामक राक्षस कंस का निजी सेवक था । वह कृष्ण को मारने के लिए बवंडर के रूप में गोकुल में आया । श्रीकृष्ण पृथ्वी पर लेटे हुए थे । वह बालक कृष्ण को उठाकर आकाश में ले गया । उसने धूल से सारे व्रज को ढक लिया । कृष्ण के भारी बोझ को सम्हाल न सकने के कारण तृणावर्त का वेग कम हो गया । कृष्ण का बोझ बढ़ता गया, बढ़ता गया । भगवान ने ज़ोर से उसका गला पकड़ लिया । इससे तृणावर्त निश्चेष्ट हो गया । वह भूमि पर गिरकर मर गया ।[2]

सूरदास का वर्णन देखिए -

अति बिपरीत तुनावर्त आयौ ।
बातचक्र मिस व्रज ऊपर परि नंद पौरि के भीतर धायौ ।
पौढ़े स्याम अकेले आँगन लै उड़यौ आकास चढ़ायौ ।
अंधाधुंध भयौ सब गोकुल जो जहँ रहयौ सो नहीं छपायौ ।
जसुमति धाइ आइ जो देखै स्याम स्याम कहि टेर लगायौ ।
धावहूं नंद गोहारि लगौ किन तेरौ सुत अंधवाइ उडायौ ।
इहि अंतर अकास तैं आवत परबत सम कहि सबनै बतायौ ।
मारयौ असुर सिला सौं पटक्यौ आपु चढ़यौ ता ऊपर भयौ ।[3]

---

1. पाण्डुदेश में सहस्राक्ष नामक राजा थे । एक दिन अपनी रानियों के साथ विहार कर रहे थे तो दुर्वासा ऋषि वहाँ से जा रहे थे । राजा ने ऋषि को प्रणाम नहीं किया, इससे ऋषि रूष्ट हो गये और राजा को राक्षस होने का शाप दिया । ऋषि से प्रार्थना करने पर ऋषि ने राजा को कृष्ण का संस्पर्श करते ही मुक्त होने का आशीर्वाद दिया । वही राजा तृणावर्त राक्षस बन गया । भागवत 10/7/पादटिप्पणी - पृ. 159
2. भागवत दशम स्कंद पूर्वार्द्ध - अध्याय - 7.
3. सूरसागर - दशम स्कंद - पद 77

नारायण कवि ने नारायणीयम् के तैंतालीसवें दशक में तृणावर्त वध का वर्णन किया है ।[1] यह वर्णन श्रीमद् भागवत के वर्णन से मिलता जुलता है ।[2]

सूरदास का वर्णन ब्रह्मवैवर्त पुराण के वर्णन से अधिक मिलता है ।[3] तृणावर्त के आने से जो उत्पात ब्रज में मचा था, उसका थोड़ा सा संकेत सूर के वर्णन में मिलता है । यह ब्रह्मवैवर्त पुराण का असर है ।

तृणावर्त उद्धार का वर्णन केवल सूरदास और नारायण कवि ने किया है ।

सुबोधिनी टीका के अनुसार तृणावर्त को अज्ञान का प्रतीक माना गया है । चेतन स्वरूप कृष्ण द्वारा अज्ञान का नाश किया जाता है । अज्ञान अपने ज्ञानस्वरूप आश्रय को आवृत किए रहता है और ज्ञान के सक्रिय होने पर अज्ञान तिरोहित हो जाता है ।[4] कृष्णोपनिषद के अनुसार तृणावर्त रज और तमो गुण का मूर्त रूप है जो शुद्ध सत्व गुण के स्वरूप (श्रीकृष्ण) को आच्छादित किए रहता है । परब्रह्म कृष्ण उसकी हत्या करते हैं ।[5] अर्थात् रजो और तमो गुण का नाश कर आत्मा का उद्धार करना श्रीकृष्ण के द्वारा ही संभव है ।

<u>बकासुर वध</u>

इसका वर्णन महाभागवत के ग्यारहवें अध्याय में, ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड के सोलहवें अध्याय में नारायणीयम् के पचासवें दशक में मिलता है ।

---

1. नारायणीयम् - 43/4,5
2. श्रीमद् भागवत - 10/7/26, 27, 28
3. ब्रह्मवैवर्त पुराण श्रीकृष्ण जन्म खंड - 11
4. सुबोधिनी टीका - 10/7/7
5. कृष्णोपनिषद - 1/2/23

एक दिन कृष्ण ग्वाल बालों के साथ गोचारण के लिए गए थे। प्यास लगने के कारण बछडों के झुंड को पानी पिलाने के लिए एक जलाशय के तट पर ले गये। वहाँ ग्वालबालों ने बगुले का रूप धारण किये हुए एक बहुत बडे जीव को देखा। उसकी चोंच बहुत लंबी तथा तीखी थी। ग्वाल बाल उसे देखकर डर गये। उस बगुले ने झपटकर श्रीकृष्ण को निगल लिया। कृष्ण जब बगुले के तालु के नीचे पहुँचे तो कृष्ण के ब्रह्म तेज के कारण आग के समान बगुले का तालु जलने लगा। जलन न सह सकने की वजह से बगुले ने चोंच से श्रीकृष्ण को चोट पहुँचाने की कोशिश की। श्रीकृष्ण ने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों ठोर पकड लिए और उसे चीर डाला। इस प्रकार कंस द्वारा भेजा हुआ बकासुर कृष्ण के हाथों मारा गया। यह देखकर ग्वाल बाल अत्यंत संतुष्ट हो गये।[1]

सूरदास ने सूरसागर दशम स्कंध के 427 वें पद में इसका वर्णन किया है। सूर ने तो इसका वर्णन अलग ढंग से किया है जो मौलिक तथा रोचक बन गया है।[2] इस वर्णन पर किसी भी पुराण के वर्णन का असर नहीं देखा जाता। इसमें सूर ने बकासुर का अपना मुँह खोलकर लेटने का दृश्य प्रस्तुत किया है। बकासुर की एक चोंच पृथ्वी को छू रही थी तो दूसरी आकाश को। मुँह एक बहुत बडी गुफा की तरह लग रहा था। यह चित्रण स्वाभाविक न होते हुए भी राक्षस का शरीर होने के नाते असरदार लग रहा है। कृष्ण ने बकासुर के मुँह में प्रवेश कर अति विस्तृत रूप धारण करके बकासुर को मार डाला। यहाँ कृष्ण के परब्रह्मत्व की ओर संकेत है।

इस प्रसंग का वर्णन सूर ने तत्कालीन परिस्थिति, सभ्यता और लोक संस्कृति को आधार बनाकर किया है। यहाँ

---

1. भागवत - दशम स्कंध - अध्याय ।।
2. बकासुर रचि रूप माया रह्यौ छल करि आइ ।

   ....

   मरत असुर चिकार पारयो मारयौ नंदकुमार ।।

   सूरसागर -दशम स्कंध पद - 427

ग्वाल बालक कृष्ण से कहते हैं कि आगे एक "बला" है । बला यानि हौआ, एक भयंकर चीज़ । ग्रामीण लोग बच्चों को डराने के लिए "हौआ" शब्द का प्रयोग किया करते थे । यही शब्द ग्वाल बालों ने प्रयोग किया है । सूर ने वर्णन में स्वाभाविकता लाने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया होगा ।

नारायण कवि ने नारायणीयम् के पचासवें दशक में बकासुर वध का वर्णन किया । यह वर्णन महाभागवत के वर्णन से बहुत कुछ मिलता जुलता है । वर्णन के दौरान कवि कृष्ण के दुष्ट दमन कार्य की ओर भी सूक्ष्म रूप से संकेत करते हैं।[1] बकासुर को दंभ का प्रतीक माना गया है । यह दंभ साधना में निरंतर विघ्न उत्पन्न करता है । यह भगवान को भी निगलकर साधक से छुपा लेता है । बकासुर के वध से कृष्ण दंभ का नाश करते हैं ।[2]

अघासुर वध

इसका वर्णन महाभागवत - दशम स्कंध के बारहवें अध्याय में तथा पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में मिलता है । सूरदास ने इसका वर्णन रोचक ढंग से किया है ।[3] इसमें सूर ने कृष्ण के दैत्यारी रूप का वर्णन प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत प्रभावोत्पादक बन गया है । ग्वाल बालों को सांत्वना देना तथा अघासुर जैसे दैत्य से अपने सखाओं को बचाना कृष्ण के भक्तवत्सल रूप की ओर संकेत है । साथ ही यहाँ कृष्ण को विष्णु का अवतार भी माना गया है । उनकी अलौकिक शक्ति एवं लीला की ओर संकेत भी हुआ है ।

---

1. नारायणीयम् - 50/8
2. सुबोधिनी 10/11/36
3. असुर कुलहिं संहारि धरनि कौ भार उतारौं ।
   धन्य लियौ अवतार कोखि धनि जहँ दैतारी ।। सूरसागर - पद 431

नारायणीयम् में अघासुर वध वर्णन सूर के वर्णन से थोड़ा सा भिन्न है । नारायण कवि का वर्णन देखिए -

कृष्ण ग्वाल बालों के साथ बछड़ों को चरा रहे थे । अघासुर अजगर का रूप धारण करके उनका मार्ग रोककर खड़ा था । उसका शरीर महान पर्वत के समान था । उसने अपना मुख गुहा सदृश भली भाँति फैला रखा था । ग्वाल बाल कुतूहल वश असुर के मुख में प्रविष्ट हो गये । अजगर के पेट में प्रवेश करते ही वत्स समूह सहित ग्वाल बालों के शरीर विषाग्नि से तप्त होने लगे । कृष्ण ने अपने सखाओं की रक्षा के लिए अजगर के मुख में प्रवेश किया । उसके पेट में पहुँचकर कृष्ण ने अपना शरीर बढ़ा लिया जिससे उसकी प्राणवायु रुक गयी । इससे वह छटपटाने लगा । तब कृष्ण शीघ्र उसके कण्ठ को विदीर्ण कर अपने सखाओं सहित बाहर निकल आये । अघासुर के शरीर से निकला हुआ तेज पुंज कृष्ण में विलीन हो गया ।[1]

यहाँ ग्वाल बाल कुतूहल वश अजगर के मुँह में प्रवेश करते हैं । सूर ने अज्ञान वश अजगर के मुँह में प्रवेश करने की बात कही है । सूर ने अजगर के मुँह में विशाल वन, हरी-भरी भूमि, वनस्पतियाँ और वृक्ष होने की बात कही है जो नारायणीयम् में नहीं मिलती । नारायणीयम् में अजगर के मुक्त होने की बात कही गयी है । इससे कृष्ण के परब्रह्मत्व की ओर संकेत मिलता है । नारायणीयम् का वर्णन हू-ब-हू भागवत के वर्णन से मिलता जुलता है ।

अघासुर को कामरूपी महाव्याधि के प्रतीक माना गया है । यह सभी पापों का आधार है । भागवत में इसे अजगर का स्वरूप

---

1. नारायणीयम् - 51/3-7

दिया गया है । इससे काम की व्यापकता का बोध होता है । इस असुर का ग्वालों को निगलना, काम द्वारा भक्तों को प्रभावित कर उन्हें अपनी साधना से हटाना है । कृष्ण इस कामरूपी अघासुर का वध करते हैं और अपने भक्तों को कामरूपी असुर से छुटकारा देते हैं ।[1]

कृष्ण का अंगूठा चूसना

अक्सर देखा जाता है कि छोटे बच्चे अपना अंगूठा चूसने में मशहूर होते हैं । सूर के कृष्ण भी इस बात में पीछे नहीं है । सूर ने अंगूठा चूसनेवाले कृष्ण का जीता-जागता वर्णन सूरसागर में प्रस्तुत किया है ।

सूर कहते हैं कि कृष्ण पैर का अँगूठा हाथ से पकडकर मुँह में डालते हैं । कृष्ण पालने में लेटकर अपने आप ही खेल रहे हैं । यह देखकर शिव और ब्रह्मा चिंता में पड़ जाते हैं । वट वृक्ष बढ़ने लगता है । बादल तितर-बितर होने लगते हैं, दिग्पाल दिग्गजों को इकट्ठा करने में जुट जाते हैं । मुनि लोग भयभीत होते हैं । पृथ्वी काँप उठती हैं । शेष नाग अपने सहस्रों फन फैलाये रखता है । सूरदास कहते हैं कि यह सब बातें व्रजवासी समझ नहीं पाये । कृष्ण सोचते हैं कि जो चरणारविन्द लक्ष्मी अपने उर से हर वक्त लगाए रखती है, उसका स्वाद क्या है ? और जिस चरणारविन्द के रस के लिए सुरमुनि दौड़े फिरते हैं, वह रस मेरे लिए दुर्लभ क्यों है ? उसे ज़रा चखके तो देखे क्या स्वाद है, यह सोचकर कृष्ण अंगूठा चूसने में व्यस्त है ।[2]

---

1. सूरसागर - दशम स्कंध - 681
2. वही - 682

यहाँ सूर के कृष्ण कौतूहलवश अपना अंगूठा चूसने लगता है । यह देखकर सुर-मुनि किस प्रकार घबराए हुए हैं, इसका जीता-जागता वर्णन सूर ने किया है । देवता, मुनि आदि यह समझते हैं कि प्रलय काल समीप आ गया है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि प्रलय के समय ही परमात्मा कृष्ण अंगूठा चूसने लगते हैं । कृष्ण के अंगूठा चूसने पर देवताओं की घबराहट सूर के वर्णन की मौलिकता है ।

बिल्वमंगल स्वामी ने अपने कृष्णकर्णामृत में कृष्ण के अंगूठा चूसने का वर्णन किया है । उन्होंने उस मुकुन्द का अपने मन में स्मरण किया है जो वट पत्र के सेज पर सोते समय अपना चरण कमल, कमल समान कोमल हथेली से, कमल जैसे लुभावने मुँह में डालता है ।[1]

यहाँ बिल्वमंगल ने कृष्ण के अंगूठा चूसनेवाली रूपमाधुरी का वर्णन किया है । स्वामीजी सदा उस रूप का स्मरण करते रहते हैं । यहाँ कृष्ण के प्रति उनका पूज्य भाव प्रकट होता है ।

सुकुमार कवि ने अपने श्रीकृष्णविलास काव्य में भी कृष्ण के अंगूठा चूसने का वर्णन किया है । सुकुमार कवि कहते हैं कि कृष्ण अंगूठा चूसने की इच्छा से अपना पाँव दोनों हाथों से पकड कर मुँह की ओर ले आये । तब ऐसा लगा कि कृष्ण के नखों से गंगा बह रही हो ।[2]

---

1. करारविन्देन पदारविन्दं
   मुखारविन्देन विनिवेशयन्तम् ।
   वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं
   बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ।। 2/57 - कृष्णकर्णामृतम्
2. वदनं मधुसूदनः कराभ्यां
   चरणांगुष्ठमुपानयत् पिपासुः ।
   गळितेव ततस्सुरस्रवन्ती
   नखमुक्तामणिदीधितिच्छलेन ।। कृष्णविलास - 3/29

यहाँ सुकुमार कवि के कृष्ण दोनों हाथों से पाँव को पकड कर मुँह की ओर ले आते हैं । यह कार्य कृष्ण प्रयत्न पूर्वक करते हैं । किस प्रकार कृष्ण पाँव को मुँह की ओर ले आते हैं इसका वर्णन अतिसूक्ष्म रूप से यहाँ हुआ है । इस प्रकार का वर्णन न सूर ने किया है न बिल्वमंगल ने । उन दोनों ने "अंगूठा चूस रहे हैं" कहकर उसके बाद का वर्णन किया है । यहाँ सुकुमार कवि के निरीक्षण करने की सूक्ष्म दृष्टि का पता चलता है । सुकुमार कवि को इस बात का पता था कि बच्चे दोनों हाथों से पाँव को पकडते हैं । उसी प्रकार कवि को ऐसा लगता है कि कृष्ण के नखों से गंगा बह रही हो । मतलब यह कि कृष्ण के नख इतने सुन्दर हैं कि ऐसा प्रतीत होता है मानो उनसे गंगा बह रही हो । इस बात से सुकुमार कवि ने इस बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है कि गंगा भगवान विष्णु के अंगूठे से निकली है । इससे एक बात यहाँ स्पष्ट हो जाती है कि सुकुमार कवि कृष्ण को विष्णु का अवतार मानते हैं ।

<u>चन्द्रप्रस्ताव</u>

चन्द्रमा हमेशा बच्चों का आकर्षण केन्द्र रहा है । ऐसा कौन बच्चा है जो चन्द्रमा से आकर्षित न हुआ हो ? सूर के कृष्ण भी इसके अपवाद नहीं है ।

यशोदा अपने आँगन में खडी होकर भगवान कृष्ण को चन्द्रमा का दर्शन कराती है । कृष्ण चाँद को देखकर हाथ बढाते हैं और कहते हैं कि वह मीठा हो या खट्टा, देखने में सुन्दर तथा मन को मोहित करनेवाला है । कृष्ण यशोदा से कहते हैं कि उन्हें भूख लगी है और चन्द्रमा को खाना है । चाँद को पृथ्वी पर ले आने की हठ करते रहते हैं । यह सुनकर यशोदा उलझन में पडती है कि अब क्या किया जाए ? सूरदास

कहते हैं कि इस प्रकार हठ करते हुए कृष्ण को यशोदा यह कह कर समझाती है कि वह गगन का पक्षी है जो आसमान में उड़ रहा है ।[1]

यहाँ सूरदास ने बच्चों की मनोवैज्ञानिकता पर बल दिया है । यशोदा रोते हुए कृष्ण को चुप कराने के लिए चाँद दिखाती है । चाँद को देखकर कृष्ण का मन चाँद की ओर आकर्षित होता है । रोना रूक जाता है और मन एक दूसरी वस्तु पर केन्द्रित होता है । इसी सूर इस बात की ओर इशारा करते हैं कि कोई सुन्दर वस्तु या चीज़ दिखाने से बच्चों का मन रोने से मुकर जाता है और वे खुश हो जाते हैं फिर कृष्ण चाँद को मंगाने की जिद्द करते हैं । ये भी बच्चों का स्वभाव है । बच्चों को जो चीज़ अच्छी लगती है उसे पाने के लिए वे हठ करते हैं । उसी प्रकार कृष्ण समझते हैं चाँद कोई खाने की चीज़ है यह भी छोटे बच्चों का स्वभाव है । छोटे बच्चे समझते हैं कि सब चीज़ें खाने की है । इसीलिए जो कुछ भी हाथ लगता है वे पहले मुँह में डालते हैं । यह बात व्यक्त करके सूर ने बच्चों के बाल मनोविज्ञान पर बल दिया है । सूरदास ने चन्द्रप्रस्ताव का वर्णन नौ पदों में किया है ।

सुकुमार कवि ने भी अपने कृष्णविलास महाकाव्य में इसी प्रकार का एक प्रसंग प्रस्तुत किया है ।

यशोदा कृष्ण को लेकर चाँद दिखा रही है और कह रही है - "देखो बेटा, आकाश के मामा को देखो ।" चाँद को देखकर कृष्ण दोनों बाँहें फैलाकर उसे बुलाने लगता है ।[2]

---

1. सूरसागर - दशम स्कंध - 188
2. पश्य मातुलमिति प्रदर्शितं
   यामिनीषु गगने यशोदया ।
   आजुहाव लळितेन पाणिना
   शीत भानुमरविन्दलोचनः ।। कृष्णविलास - 3/73

यहाँ सुकुमार कवि ने चाँद को "मामा" कहकर संबोधित किया है । यह स्थानीय प्रभाव है । केरल में चाँद को मामा कहकर बुलाने की प्रथा है । यहाँ यशोदा कृष्ण से कहती है कि चंदा "मामा" है । यह बात कहकर सुकुमार कवि ने इस बात की ओर सूक्ष्म संकेत किया है कि माता ही बच्चों को दूसरों का आदर कराना सिखाती है ।

सूरदास ने अति विस्तृत ढंग से इस प्रसंग का वर्णन किया है तो सुकुमार कवि ने संक्षिप्त रूप में । सूर का कृष्ण जिद्दी है, मनचला है, नटखटी है तो सुकुमार कवि का कृष्ण माँ की आज्ञा का पालन करनेवाला है । यद्यपि दोनों कवियों ने एक ही प्रसंग का वर्णन किया है अवस्था भेद, स्थानीय प्रभाव और अपनी अपनी रुचि के अनुसार उसमें अन्तर दृष्टिगोचर होता है ।

बच्चों का स्वभाव है कि वे अपनी परछाई देखकर कभी कभी खुश होते हैं, कभी कभी रूठते हैं तो कभी कभी परछाई को दूसरा व्यक्ति समझने लगते हैं । कृष्ण के संदर्भ में भी यह बात ठीक है ।

सूरदास ने बच्चों के इस स्वभाव का कृष्ण के ज़रिए अच्छा खासा वर्णन किया है । सूरदास कहते हैं कि कृष्ण खेलते समय खम्भे में अपनी ही परछाई देखकर नवनीत लेकर उसे खिलाते हैं ।[1] यहाँ सूर का कृष्ण खंभे के कृष्ण को कोई और व्यक्ति समझता है और उसे माखन खिलाने की कोशिश करता है । यहाँ सूर ने इस वर्णन से एक महत्त्वपूर्ण बात की ओर सूक्ष्म रूप से संकेत किया है कि उनके कृष्ण सभी के प्रति उदार हैं । तभी तो वे खंभे के कृष्ण को माखन खिलाना चाहते हैं ।

---

1. कबहुँक चित प्रतिबिंब खंभ में, लौनी लिए खवावत ।
   सूरसागर - दशम स्कंध - 177

बिल्वमंगल स्वामी ने अपने कृष्णकर्णामृत में इस प्रकार का प्रसंग प्रस्तुत किया है । बिल्वमंगल स्वामी कहते हैं कि एक दिन घुटनों के बल रेंगनेवाले बालकृष्ण ने मणियों से जड़ी हुई दीवार में अपने ही कमल वदन का प्रतिबिंब देखा । उसने उसे पकड़ने को चाहा, पर हाथ नहीं लगा । बेचारा कृष्ण दुःखी होकर अपनी धाय का मुँह ताकने लगा और बाद में ज़ोर से रो पड़ा ।[1]

लीलाशुक का कृष्ण प्रतिबिंब को खेलने की वस्तु समझकर पकड़ना चाहता था । जब नहीं मिला तो अत्यंत दुःखी हुआ । इस वजह से ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा ।

यहाँ लीलाशुक ने बच्चों के स्वभाव पर प्रकाश डाला है । चाहने पर भी जब कोई वस्तु बच्चों को नहीं मिलती तो वे दुःखी होकर रोते हैं । बच्चों का मन इतना कोमल होता है कि ज़रा-सा दुःख भी वे बरदाश्त नहीं कर पाते ।

सुकुमार कवि ने अपने कृष्णविलास काव्य में इस वर्णन से मिलते जुलते प्रसंग का वर्णन किया है ।

सुकुमार कवि कहते हैं कि अपनी माता के दर्पण में कृष्ण अपनी ही परछाई देखकर कौतूहलवश कहता है कि "आओ दोस्त, वहाँ क्यों खड़े हो ?"[2]

---

1. रत्नस्थले जानुचर: कुमार:
   सङ्क्रान्तमात्मीय मुखारविन्दम् ।
   आदातुकामस्तदलाभखेदा -
   द्विलोक्य धात्रीबदनं सरोद ।। - कृष्ण कर्णामृत - 2/52
2. आत्मन: प्रतिकृतिं विलोकयन् मातृहस्त मणिदर्पणोदरे ।
   एहि मित्र किमिहेति कौतुकात् व्याजहार शतपत्रलोचन: ।।
   कृष्णविलास - 3/74

यहाँ सुकुमार कवि ने भी बच्चों के स्वभाव पर प्रकाश डाला है। सुकुमार कवि का कृष्ण परछाई को "दोस्त" समझता है और उसे खेलने के लिए बुलाता है। कृष्ण परछाई को कौतूहलवश देखता है।

यद्यपि सूरदास, बिल्वमंगल और सुकुमार कवि एक ही प्रसंग प्रस्तुत कर रहे हैं तो भी उनके प्रस्तुतीकरण में अन्तर है। सूरदास के कृष्ण प्रतिबिंब को "दूसरा व्यक्ति" समझकर माखन खिलाता है तो बिल्वमंगल स्वामी का कृष्ण प्रतिबिंब को खेलने की चीज़ समझकर उसे ज़बरदस्ती लेने की कोशिश करता है। सुकुमार कवि का कृष्ण परछाई को दोस्त समझकर आईने से बाहर आने का अनुरोध करता है। उसी प्रकार सूर का कृष्ण खेल खेल में प्रतिबिंब को माखन खिलाना चाहता है। सूर और बिल्वमंगल का कृष्ण खंभे में अपनी परछाई देखता है तो सुकुमार कवि का कृष्ण आइने में देखता है। बिल्वमंगल का कृष्ण बहुत जिद्दी है। परछाई न मिलने से रूठता है। सुकुमार कवि का कृष्ण कौतूहलवश परछाई को बुलाता है। इस प्रकार तीनों कवियों ने यद्यपि एक ही प्रसंग का वर्णन किया है फिर भी अपनी अपनी रुचि के अनुसार उसमें अन्तर दिखाई देता है।

<u>कृष्ण का घुटरवों चलना तथा पावों चलना</u>

छोटा बालक जब पहले पहल स्वाभाविक चेष्टाएँ करने लगता है तो देखनेवाले के मन में अतीव आनन्द का संचार होता है। सूरदास बालकों की स्वाभाविक चेष्टाएँ वर्णन करने में सिद्ध हस्त रहे हैं। बालक कृष्ण घुटनों चलने लगते हैं। इसका वर्णन सूर कैसे करते हैं ज़रा देखिए -

सोभित कर नवनीत लिए। घुटुरनि चलत रेनु
तन मंडित मुख दधि लेप किए।।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहिं पिए।[1]

---

1. सूरसागर - 10/99

देखिए कितना सुन्दर वर्णन है । कृष्ण का धूल धूसरित शरीर और मुख में दही लपटाये चलना बहुत ही स्वाभाविक और मनोहर वर्णन है । अपनी कोशिश से कृष्ण अत्यन्त संतुष्ट दीख पड़ते हैं । लटक लटक के घुटनों पर चलने के वर्णन से सूर आँखों देखा हाल वर्णित करते जान पड़ते हैं । चित्रण, घुटनों के चलने के शब्द उपयोग से चित्रमय सा बन गया है । इसी प्रकार सूर ने कृष्ण के पावों चलने का भी चित्रण किया है ।

धनि जसुमति बड़भागिनी लिये कान्ह खिलावै ।
तनक तनक भुज पकरि कै ठाढ़ौ होन सिखावै ।।
लरखरात गिरि परत है चलि घुटुरनि धावै ।
पुनि क्रम क्रम भुज टेकि कै पग द्वैक चलावै ।।
अपने पाइनि कबहिं लौं मोहिं देखन धावै ।
सूरदास जसुमति इहै बिधि सौं जु मनावै ।।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में कृष्ण के पावों चलने के साथ साथ यशोदा का चित्रण भी हुआ । यशोदा का, कृष्ण की बांह पकड़ कर उन्हें खड़ा होना सिखाना, कृष्ण का लड़खड़ाकर गिर पड़ना और घुटनों के बल रेंगना, फिर बांह पकड़कर यशोदा का कृष्ण को दो-एक पग चलाना आदि का चित्रण सराहनीय रहा है । एक माता अपने बच्चे को किस प्रकार चलना सिखाती है इसका भली-भाँति चित्रण सूर ने इन पंक्तियों में किया है ।

नारायणीयम् में कृष्ण के घुटनों तथा पावों चलने का वर्णन इस प्रकार मिलता है -

कृष्ण बलराम के साथ घुटनों और हाथों के बल बकैयाँ चलते थे । उस समय चरणकमल के हिलने से नूपुरों की झंकार होती थी,

---

1. सूरसागर - पद 10/112

जिसे सुनने से कौतुकवश कृष्ण बड़े सुन्दर ढंग से वेगपूर्वक विचरने लगते थे। कभी कभी शीघ्रता से भागते समय व्रज की कीच में गिर पड़ते, फिर पंकलिप्त शरीर से ही उठ कर भागते थे।[1]

यहाँ नारायण कवि का चित्रण स्वाभाविक ही रहा है। बच्चे किस प्रकार नूपुरों की झनकार सुनकर संतुष्ट होते हैं और वह आवाज़ बार बार करने की कोशिश करते हैं, इसका जीता जागता वर्णन कवि ने कृष्ण के ज़रिए किया है। बच्चे किस प्रकार चलते हैं और पहले पहल चलते वक्त गिर पड़ते हैं फिर उठकर दौड़ने या चलने लगते इसका भी यहाँ ज़िक्र हुआ है।

बिल्वमंगल स्वामी ने अपने कृष्णकर्णामृत में यह बात स्वीकार की है कि कृष्ण का घुटनों और हाथों के बल चलना अत्यंत मनोहर है। वे कहते हैं -

जानुभ्यामभिधावन्तं
पाणिभ्यामतिसुन्दरम् ।।[2]

अर्थात् घुटनों और हाथों के बल जब कृष्ण रेंगता है, तब तो वह मन को बरबस खींच लेता है।

सुकुमार कवि ने बड़े ही विलक्षण तरीके से कृष्ण के चलने का वर्णन किया है। उनका कहना है कि कृष्ण अत्यंत सावधान होकर एक-एक कदम रखने लगे इस डर से कि पृथ्वी कैसे उनका भार सहन कर सकती है?[3]

---

1. नारायणीयम् - 45/1,4
2. कृष्णकर्णामृत - 3/93
3. गौरवं कथमिदं सहेत मे
   मेदिनीति कृपयेव चिन्तयन् ।
   माधवः पतनभीतिमुद्वहन्
   मन्दमेव निदधे पदाम्बुजम् ।। कृष्णविलास - 3/75

कवि ने इस पद के ज़रिए बच्चों के पहली बार कदम रखके चलने का वर्णन किया है । बच्चे पहली बार चलते समय एक कदम रखते है फिर धीरे से दूसरा पाँव उठाके दूसरा कदम रखते हैं । कृष्ण के ऐसे चलने पर कवि को ऐसा लगता है कि कहीं कृष्ण इस डर से कि पृथ्वी उनका भार सहन नहीं कर सकतीं, धीरे धीरे पाँव रख रहे हैं । यहाँ कवि की कल्पना अत्यंत उच्च शिखर पर विचरण कर रही है । बच्चे कैसे चलते है इसका सूक्ष्म चित्रण कवि ने किया है । साथ ही इस बात पर भी इशारा किया है कि कृष्ण साक्षात् ईश्वर है । कोई साधारण मनुष्य नहीं है । यहाँ कवि ने यह भी दिखाने की कोशिश की है कि कृष्ण अत्यंत दयावान है । इसीलिए अपना भार सहन न कर सकने के पृथ्वी की ओर से अत्यंत चिंतित है ।

सुकुमार कवि का चित्रण अत्यंत स्वाभाविक रहा है । किसी भी ग्रंथ में इस प्रकार का सरस तथा निराला चित्रण नहीं मिल सकता । यही इस कवि की महानता का प्रमाण है ।

कृष्ण को राम की कहानी सुनाना

अक्सर यह देखा जाता है कि बच्चों को सुलाने के लिए माताएँ उन्हें कहानी सुनाया करती है । बच्चों का मन कहानी में खो जाता है और वे जल्दी सोने लगते है । इस मानसिकता का प्रयोग सूरदास तथा बिल्वमंगल स्वामी ने अपने-अपने काव्यों में किया है ।

यशोदा माता अपने लाड़ले कृष्ण को सुलाने के लिए राम की कहानी सुनाती है । कृष्ण "हूँ हूँ" करके कहानी सुन रहे हैं । जब सीता हरण का प्रसंग आया तो अचानक कृष्ण चिल्ला उठे "लक्ष्मण, धनुष दो, धनुष ।"[1] यह सुनकर माता यशोदा डर गयी और कुछ मंत्र पढ़कर कृष्ण के शरीर का दोष दूर करने लगी ।

---

1. सूरसागर - पद 10/198

बिल्वमंगल स्वामी ने भी इसी प्रकार का प्रसंग अपने कृष्णकर्णामृत में प्रस्तुत किया है । उनका वर्णन देखिए -

रामो नाम बभूव हुँ तदबला सीतेति हुं तौ पितु -
र्वाचा पञ्चवटीतटे विहरत तामाहरद्रावण: ।
निद्रार्थं जननीकथामिति हरेर्हुंकारत: श्रृण्वत:
सौमित्रे क्व धनुर्धनुर्धनु रिति व्यग्रता गिर: पान्तु: व: ।।[1]

इस प्रसंग के ज़रिए सूरदास और बिल्वमंगल स्वामी ने इस बात की ओर संकेत किया है कि मूलत: राम और कृष्ण एक ही भगवान के दो नाम हैं । यह इस बात पर भी बल देता है कि दोनों कवि अवतारवाद पर विश्वास करते थे । साथ ही बाल मनोविज्ञान का सहारा लेकर बालकों के मन को कहानी द्वारा आकर्षित करके उन्हें सुलाने की जो प्रथा भारतवर्ष में सदियों से चली आती थीं, उसे उजागर करने की यहाँ कोशिश हुई है ।

यशोदा का जादु-टोना ग्रामीण संस्कृति की ओर संकेत है ।

सूरदास के इस प्रसंग पर बिल्वमंगल का प्रभाव देखा जाता है ।

श्रीकृष्ण विलास में भी कृष्ण के कथा सुनने का उल्लेख मिलता है । सुकुमार कवि कहते हैं कि कृष्ण यशोदा की गोद में लेटकर, कथा सुनकर आराम से सो जाते थे ।[2]

---

1. कृष्णकर्णामृत - 2/71
2. देवो निशासु हरिरंङ्कगतो जनन्या:
   श्रृण्वन् कथा मधुमुचो महताऽऽदरेण ।
   मदं तदीय करपल्लवताडितोस:
   सुनवाप कुड्मलितलोचन पुण्डरीक: ।। कृष्णविलास - 3/76

सुकुमार कवि ने यहाँ बच्चों के स्वभाव की ओर इशारा किया है । बच्चे साधारणत: माँ की गोद में लेटकर, कथा सुनकर सो जाया करते हैं । यही बात यहाँ भी वर्णित है । वर्णन अत्यंत स्वाभाविक ढंग से हुआ है ।

माटी भक्षण प्रसंग

यह कृष्ण कथा साहित्य का एक प्रमुख प्रसंग रहा है । यह प्रसंग भागवत दशम स्कंध के आठवें अध्याय में तथा नारायणीयम् के छियालीसवें दशक में मिलता है ।

एक बार ग्वालबालों के साथ खेलते समय कृष्ण ने माटी भक्षण किया । ग्वालबालों ने जाकर माता यशोदा से शिकायत की । यशोदा ने कृष्ण को रंगे हाथों पकड़ा और माटी भक्षण का कारण पूछा । कृष्ण ने इस बात से इनकार किया और सफाई के लिए अपना मुँह खोलकर दिखा दिया । यशोदा ने कृष्ण के मुँह में संपूर्ण चराचर जगत के दर्शन किये ।

सूरदास, मीरा, बिल्वमंगल स्वामी और नारायण कवि ने इस प्रसंग का वर्णन अपने काव्यों में किया है । चारों का प्रस्तुत करने का अन्दाज़ अलग अलग रहा है ।

सूरदास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है ।

खेलत स्याम पौरि कैं बाहर व्रज लरिका संग जोरि ।
तैसेई आपु तैसेइ लरिका अइ सबनि मति थोरी ।।
गावत हाँक देत किलकारत दुरि देखत नँदरानी ।
अति पुलकित गदगद मुख बानी मन मन महरि सिहानी ।

माटी लै मुख मेलि दई हरि तबहिं जसोदा जानी
साँटी लिए दौरि भुज पकरयौ स्याम लँगरई ठानी ।।
लरिकनि कौ तुम सब दिन झुठवत मोसौं कहा कहौगे ।
मैया मैं माटी नहिं खाई मुख देखैं निबहौगे ।।
बदन उघारि दिखायौ त्रिभुवन बन धन नदी सुमेर ।
नभ ससि रवि मुख भीतर ही सब सागर धरनी फेर ।।
यह देखत जननी मन व्याकुल बालक मुख कहा आहि ।
नैन उघारि बदन हरि मूँधौ माता मन अवगाहि ।।
झुठै लोग लगावत मोकौं माटी मोहिं न सुहावै ।
सूरदास तब कहति जसोदा ब्रज लोगनि यह भावै ।।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में सूर ने जो प्रसंग प्रस्तुत किया है उसमें कृष्ण ग्वाल बालों के साथ खेल रहे हैं । कृष्ण अपने साथियों के साथ कुछ गा रहे और कभी किलकारी मारकर खेल रहे हैं । उनकी क्रीडा नन्दरानी छुप छुप कर देख रही है और तनमन में पुलकित हो रही है । तभी कृष्ण ने मिट्टी मुँह में डाल ली । यह देखकर यशोदा ने तुरंत आकर कृष्ण की बाँह पकड ली । लेकिन कृष्ण ने मिट्टी खाने से साफ इनकार किया । माँ ने मुँह खोलकर देखा तो उसमें तीनों लोकों के दर्शन पा लिए । यह देखकर यशोदा का मन व्याकुल हो गया ।

सूरदास ने इस प्रसंग के ज़रिए सूक्ष्म रूप से इस बात की ओर संकेत किया है कि हम जो कुछ खाते हैं मिट्टी के विविध रूपों के विकार हैं और अंत में मिट्टी में ही मिल जाते हैं ।

---

1. सूरसागर - 10/253

सूर इस पद के ज़रिए कृष्ण के भगवान होने का दावा किया है । कृष्ण ने यशोदा को अपने मुँह में विश्वरूप दर्शन कराया । यशोदा ने मुँह में रवि,शशि, आकाश, पाताल, सागर, पृथ्वी सभी कुछ देखा । इस प्रकार त्रिभुवन का अपने मुँह में दिखाकर यशोदा को अपना असली रूप दिखाया जिसे देखने के लिए सभी ललायित रहते हैं । सूर ने यहाँ गीता के इस प्रमाण को भी सूक्ष्म रूप से व्यक्त किया है कि यह रूप भगवान की इच्छा से ही दिखाई देता है और साधारण आदमी इसे नहीं देख पाते । सूर ने यशोदा को कृष्ण की परम भक्ता माना है । इसी योग्यता के आधार पर कृष्ण ने यशोदा को विश्वरूप दिखाया ।

मीरा ने माटी भक्षण प्रसंग का छोटा-सा संकेत अपने काव्य में किया है । वे कहती हैं -

कोई ना जाने साँवरिया तेरी गति कोई ना जाने साँवरिया ।
मिट्टी खात मुख देखा जसोदा, चौदह भुवन भरिया ।।[1]

मीरा ने समस्त माटी भक्षण लीला का वर्णन न करके सिर्फ एक पंक्ति में इस लीला का उल्लेख मात्र किया है । यहाँ मीरा कहती हैं कि कृष्ण की लीला माधुरी कृष्ण ही जानता है और कोई नहीं । यहाँ इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि कृष्ण परमात्मा है । उनके मुख में चौदहों भुवन देखे जाते हैं । यह भाग्य यशोदा को प्राप्त हुआ है । कृष्ण अपनी परम भक्ता यशोदा के प्रेम पाश से बंध गये थे और उन्हें अपने मुँह में चौदहों भुवनों का दर्शन कराया ।

बिल्वमंगल स्वामी ने अपने स्वान्त सुखाय के लिए कृष्णकर्णामृत की रचना की है । इसमें वे अपनी इच्छा और मन चाहे ढंग से

---

1. मीरा सुधा सिंधु - 9/6

पदों की रचना करते हैं । उनकी माटी भक्षण प्रसंग का चित्रण भी अपने ढंग का अलग है । यह यशोदा और कृष्ण के बीच संवाद के रूप में प्रस्तुत हुआ है । देखिए -

"माँ, कृष्ण अब खेलने के लिए गया था और यह देखो उसने जी भर मिट्टी खाई ।"

"बोलो कृष्ण, क्या यह सच है ?"

"कौन बोला माँ ?"

"बलराम भैया -"

"झूठ, बिलकुल झूठ माँ । मेरा मुँह तो देख लो ।"[1]

"अच्छा खोलो ।"

जब कृष्ण ने मुँह खोला तो उसमें पूरा विश्व समाया हुआ देखकर माँ भौंचक्की हुई । प्रस्तुत प्रसंग में कृष्ण के भोलेपन के साथ साथ सफेद झूठ बोलकर बचने की आदत भी दिखाई देती है । अपने झूठ को साबित करने के लिए कृष्ण मुँह खोलकर दिखला देते हैं । माँ भी वहाँ मिट्टी नहीं देख पाती लेकर पूरा विश्व देखकर चकरा जाती है ।

नारायण कवि ने नारायणीयम् में इस लीला का वर्णन छियालीसवें दशक में किया है । इस कवि का वर्णन भी बाकी कवियों के वर्णन से मिलता जुलता तो है लेकिन थोड़ा सा अन्तर भी है । इनके वर्णन में यशोदा कृष्ण के मिट्टी खाने से उन्हें कोई रोग हो जाएगा, इस आशंका तथा अत्यंत भय से कुपित होकर आती है और कृष्ण से यह बात पूछने लगती है ।[2] कृष्ण इस बात को बिलकुल नकारते हैं । तब यशोदा कृष्ण

---

1. कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया
   तथ्यं कृष्ण क एवमाह मुसली मिथ्याम्ब पश्याननं
   व्यादेहीति विदारिते शिशुमखे दृष्टवा समस्तं जग-
   न्माता यस्य जगाम विस्मयदं पायात्स नः केशवः ।
   कृष्णाकर्णामृत - 2/64
2. नारायणीयम् - 46/3

से मुँह खोलकर दिखाने का अनुरोध करती है । बाकी कवियों के अनुसार कृष्ण ने सफाई देते हुए खुद अपना मुँह खोला था । माँ ने कृष्ण के मुँह में संपूर्ण पृथ्वी तथा समस्त भुवनों को देखा ।

नारायण कवि ने कृष्ण के मुँह में देखे हुए भुवन का विस्तृत ढंग से वर्णन किया है । उन्होंने इसका छः श्लोकों में वर्णन किया है । सूर ने भी वर्णन किया है लेकिन नारायण कवि का वर्णन ज़ोरदार रहा है । नारायणीयम् का कृष्ण यशोदा माता से डरने का अभिनय करता है । माँ की मुँह खोलने की आज्ञा सुनकर तुरंत मुँह खोलता है ।[1] यहाँ यशोदा माता कृष्ण को डाँटती है, उनपर कुपित होती है ।[2] जिसमें मातृ-हृदय की आशंका का दर्शन होता है । माता हर वक्त अपने बच्चे का भला सोचती रहती है । यशोदा डर जाती है कि मिट्टी खाने से अगर कृष्ण को कोई रोग हो गया तो क्या करेगी । इसीलिए वह कृष्ण पर कुपित होती है ताकि आगे से कृष्ण इस वृत्ति का आवर्तन न करे ।

सूरदास और बिल्वमंगल स्वामी का कृष्ण तो माँ से बिलकुल नहीं डरता । कृष्ण माँ से कहते हैं कि उन्होंने मिट्टी खायी ही नहीं । अपने इस झूठ को साबित करने के लिए कृष्ण हर तरह से कोशिश करते हैं । अपना मुँह खोलकर विश्व को उसमें दिखलाकर कृष्ण ने माँ का मन पलट दिया । लेकिन यशोदा विश्व रूप दर्शन पाकर डर गयी और उसने अपनी आँखें बंद कर लीं ।

भगवान का विश्वरूप दर्शन मिलना इतना आसान नहीं है । यह भाग्य केवल इने गिने लोगों को ही सिद्ध हुआ है ।

---

1. नारायणीयम् - 46/4
2. वही - 46/3

अर्जुन, मार्कण्डेय मुनि और यशोदा इनमें से कुछ हैं । गीता में कहा गया है कि भगवान अपनी इच्छा के अनुसार ही भक्तों को विश्वरूप दर्शन देते हैं । वह और किसी प्रकार से प्राप्त नहीं है । यशोदा ने कृष्ण को अपने प्राणों से भी बढ़कर माना है । कृष्ण यशोदा के प्रेम पाश में बंध जाते हैं और वे कृपालु अपने भक्त को अपना निजी स्वरूप दिखलाकर उनका उद्धार करना चाहते हैं । यशोदा को विश्वरूप दर्शन दिखलाने का मकसद भी यही था । लेकिन यशोदा कृष्ण को अपना पुत्र मानती थी । वह मायापाश में आबद्ध थी । इसीलिए कृष्ण के परमात्मतत्व को आसानी से स्वीकार नहीं कर पाती थी । इसीलिए उन्होंने कृष्ण के मुख में संपूर्ण विश्व देखकर अपनी आँखें बंद कर ली ।

माखन चोरी

इसका वर्णन भागवत के आठवें अध्याय में, नारायणीयम् के पैंतालीसवें दशक में तथा श्रीकृष्णविलास के तीसरे सर्ग में आता है । सूरदास ने अतिविस्तृत रूप में इसका वर्णन किया है । भगवान की हरेक लीला दिव्य होती है, अप्राकृत होती है । भगवत् गीता में भी यही बात बताया गया है - "जन्म कर्म च मे दिव्यं ।"[1] भगवान में देह-देही का भेद नहीं है । महाभारत में कहा गया है कि परमात्मा का शरीर भूतसमुदाय से बना हुआ नहीं होता -

न भूतसंघसंस्थानो देवस्य परमात्मनः ।

भगवान जो करते हैं अपनी इच्छा के अनुसार करते हैं । भक्तों के रंजन के लिए करते हैं, उन पर अनुग्रह करने के लिए करते हैं । माखन चोरी प्रसंग भी श्रीकृष्ण भगवान की एक दिव्य लीला है । यह प्रसंग भागवत दशम स्कंध के आठवें अध्याय में वर्णित है ।

---

1. भगवत् गीता - 4/9

सूरसागर में सूरदास ने इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है । कृष्ण ग्वाल बालों के साथ मिलकर मक्खन चुराने निकलते थे । वे सखाओं सहित सूने घर में घुस जाते थे और सभी मिलकर छींके में रखा दही-मक्खन खा जाते थे और दही की मटकी को खाली छोड़कर हँसते-मुस्कुराते घर से बाहर आ जाते थे । कभी एक गोपी के घर माक्खन चुराते तो कभी दूसरी । गोपियाँ कृष्ण को प्राणों से भी प्रिय मानती थी । उनका तन, मन, धन - सभी कुछ प्राणप्रिय कृष्ण का था । वे कृष्ण के लिए जीती थीं, उन्हीं के लिए घर का सारा काम करती थीं । उनकी पवित्र तथा निर्मल बुद्धि में श्रीकृष्ण के सिवा कुछ था ही नहीं । श्रीकृष्ण को सुखी देखकर वे सुखी होती थीं । स्वप्न और सुषुप्ति दोनों में ही वे श्रीकृष्ण की मधुर लीला देखतीं और अनुभव करती थीं । रात को दही जमाते समय, हर गोपी यह अभिलाषा करती थी कि मेरा दही अच्छी तरह जमे, बहुत माक्खन निकले और उसे उतने ही ऊँचे छींके पर रक्खूँ, जितने पर श्रीकृष्ण के हाथ आसानी से पहुँचे । फिर कृष्ण घर में आकर माक्खन लूटें तथा अपने सखाओं और बंदरों को लुटाये, संतुष्ट होकर आँगन में नाचे और वह लीला देखकर जीवन साफल्य पाऊँ ।

एक दिन श्याम सुन्दर यशोदा से कह रहे थे - "मैया मुझे माखन भाता है, तू मेवा पकवान के लिए कहती है, लेकिन वह मुझे रूचता ही नहीं ।" सूरदास का वर्णन देखिए -

मैया री, मोहिं माखन भावै ।
जो मेवा पकवान कहती तू मोहि नहि रुचि आवै ।
व्रज जुवति इक पाछै ठाढ़ी सुनत स्याम की बात ।
मन मन कहति कबहुँ अपनै घर देखौ माखन खात ।

बैठ जाइ मथनियाँ कै ढिग मैं तब रहौ छपानी
सूरदास प्रभु अंतरजामी ग्वालिनि मन की जानी ।[1]

अन्तर्यामी कृष्ण ने गोपी के हृदय की बात सुन ली । उसके घर पहुँचकर माखन खाके उसे सुख प्रदान किया । "गये स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर ।"[2]

भगवान कृष्ण ब्रजवासियों को सुखी करने के लिए गोकुल में पधारे थे । माखन की कमी नन्द के घर में भी नहीं थी । वे चाहे जितने खाते लुटाते । परन्तु कृष्ण इस लीला के ज़रिए सबको सुख प्रदान करना चाहते थे । गोपियों की लालसा पूरी करने के लिए वे उनके घर जाकर, माखन चुरा-चुरा कर खाते थे ।[3] महात्माओं का कहना है कि कृष्ण की यह चोरी गोपियों की पूजा-पद्धति का भगवान के द्वारा स्वीकार दिखाना था । भाव तत्व की दृष्टि से यहाँ बड़ी सरस अभिव्यक्ति है । गोपियों के यहाँ कृष्ण उनकी उपस्थिति अनुपस्थिति में ही माखन चुराते थे । इस चोरी में प्रत्यक्ष-परोक्ष गोपियों की कृष्ण के सामीप्य की लालसा भी है । दूसरी बात तो यह है कि यह चोरी चोरी नहीं थी क्योंकि संसार की सभी वस्तुएँ भगवान की अपनी हैं और अगर वे कुछ उठाकर खा भी लेते हैं तो वह चोरी न होकर अपनी ही कोई चीज़ उठाकर खाने के समान है ।

गोपियाँ अपना नुकसान सहकर भी यह कामना करती हैं कि कृष्ण माखन चुराने के लिए आ जाए । इसीलिए गोपियाँ रात में

---

1. सूरसागर - 10/264
2. वही - 10/265
3. वही - 10/268

जागकर प्रात:काल होने की बाट देखतीं । सूरदास ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है -

चली व्रज घर घरनि यह बात ।
नंद सुत संग सखा लीन्हे चारि माखन खात ।।
कोऊ कहति मेरे भवन भीतर अबहि पैठे धाइ ।
कोउ कहति मोहि देखि द्वारै उनहिं गए पराई ।।
कोउ कहति किहिं भाँति हरि को देखौ अपने धाम
हरि माखन देउँ आछौ खाइ जितनौ स्याम ।
कोउ कहति मैं देखि पाऊँ भरि धरौं अँकवारि ।
कोउ कहति मैं बाँधि राखौं को सके निवारि
सूर प्रभु के मिलन कारन करति बुद्धि विचार ।
जोरि कर विधि कौं मनावति पुरुष नन्द कुमार ।।[1]

गोपियों के विचार कितने भव्य थे, यह बात ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट होती है ।

माखन की नित प्रति की हानि से गोपियाँ यशोदा से उपालम्भ भी करती थीं । लेकिन यह उपालम्भ कृष्ण को दण्ड देने या दु:ख पहुँचाने के लिए नहीं, उपालम्भ के लिए यशोदा के यहाँ आकर कृष्ण को देखने के लिए था ।[2]

एक बार यशोदा के पास आकर कोई गोपी उपालम्भ करने लगी कि कृष्ण ने माक्खन चुराकर बर्तन फोड़ दिया । तब कृष्ण ने यशोदा से कहा -

---

1. सूरसागर - 10/273

2. सूरसागर - 10/311

सुनु मैया याके गुन मोसों इन मोहिं लयो बुलाई ।
दधि में पड़ी सेंत की चींटी मोपै सबै कढ़ाई ।
टहल करत मैं याके घर को यह पति सँग मिलि सोई ।
सूर वचन सुनि हँसी जसोदा ग्वालिनि रही मुख गोई ।।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में सूर के कृष्ण ने जो यशोदा को बताया वह बहुत ही हृदयग्राहक बन गया है । कृष्ण का युक्तिसंगत उत्तर सुनकर यशोदा हँसने लगी । कृष्ण ने कहा कि इस गोपी ने मुझे बुलाकर दही में पड़ी सारी चीटियाँ मुफ्त में मुझसे निकलवायी । मैं तो इसके घर का काम कर रहा था और यह पति के साथ जाकर सो गई ।

कृष्ण ने यहाँ झूठ बोलकर अपनी सफाई प्रस्तुत की है । सूर ने इस चित्रण में बालमनोविज्ञान का सहारा लिया है । बालकों के निष्कलंक मन में अपने को सच्चा साबित करने की कोशिश पर यहाँ प्रकाश डाला गया है ।

कृष्ण कैसे माखन चुराते थे, इसका अच्छा खासा वर्णन सूरदास करते हैं । श्रीकृष्ण धीरे से सूने घर में प्रवेश करते हैं । सभी साथियों को बाहर ही छोड़कर वे घर के भीतर प्रवेश करते हैं और दही और माखन देखते हैं । ताज़ा माखन देखकर आनन्दित कृष्ण उसे खाने लग जाते हैं । इशारा करके अपने दोस्तों को भी बुलाते हैं और उन्हें अपने हाथ से भर-भर कर देने लगते हैं। दही की बूँद हृदय पर छिटक गयीं और इसलिए कृष्ण भयभीत होकर इधर उधर देखते हैं कि अगर किसी ने उन्हें देख लिया तो क्या होगा ? कृष्ण उठकर ओट लेकर चारों ओर सबको देख लेते हैं और यकीन करते हैं कि

---

1. सूरसागर - 10/322

कोई नहीं है । फिर माखन खाना शुरू करते हैं । ग्वाले भी वरदान रूप में माखन ग्रहण करते हैं । गोपी छिपकर यह सब देखती है और आनन्दमग्न हो जाती है । सूरदास कहते हैं कि गोपी श्याम के मुख को देखकर स्तब्ध हो गयी, उससे कुछ कहते नहीं बनता और उसने श्याम को अपना मन ही समर्पित कर दिया ।[1]

यहाँ सूर ने कृष्ण के माखन चोरी का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह अत्यंत सजीव बन गया है । कृष्ण सबके अगुआ है । एक काबिल नेता की तरह वे पहले जाते हैं, फिर साथियों को बुलाते हैं । इस बात का प्रमाण ही न रहे कि उन्होंने माखन चुराया है यही सोचकर शायद कृष्ण मटके भी तोड देते हैं । कृष्ण तो अंतर्यामी हैं । वे सब के मन की बात जानते हैं । गोपी तो माखन छिपाके रखती है लेकिन कृष्ण तो आसानी से उसे ढूँढ निकालते हैं । कृष्ण अकेले नहीं खाते । सब से मिल बाँटकर खाते हैं । खाने के बाद उन्हें याद आता है कि किसी ने उसे देखा तो नहीं ? यह चिंता उन्हें खाये जाती है । कृष्ण बाहर जाकर देख के यकीन करते हैं कि कोई नहीं है इसके बाद ही बाकी माखन खाते हैं । उसी प्रकार दही का छींटा शरीर पर गिरने पर कृष्ण भयभीत हो जाते हैं । जैसे छोटे बच्चे नटखटपन दिखाकर भयभीत होते हैं, उसी प्रकार कृष्ण भी भयभीत हुए बिना नहीं रहते ।

सूर ने यहाँ बालकों के नटखटपन का और उनके स्वभाव पर अच्छा प्रकाश डाला है । बालकों को पता है कि चोरी करना बुरी बात है । फिर भी तो करते रहते हैं । क्योंकि उन्हें उसमें मज़ा आता है । चोरी करके खाने का मज़ा माँगके खाने में कहाँ ? यही सोचकर सबको इकट्ठा करके कृष्ण माखन चुराते हैं । चोरी करते समय बालक की घबराहट का, सूर का वर्णन जीता जागता बना है ।

---

1. सूरसागर - 10/282

एक गोपी माखन चोरी का उपालंभ सुनाने के लिए यशोदा के पास पहुँचती है । गोपी कहती है कि हे यशोदा प्रतिदिन दूध और दही की हानी कैसे सही जाए ? कृष्ण तो प्रतिदिन हमारे घरों में से दूध और दही चुराता है । खुद भी खाता है, ग्वाल बालों को खिलाता है और बर्तन तोड़ कर भाग जाता है । मैं ने एक कोने में माखन संभालकर रखा था । लेकिन कृष्ण ने वह स्थान भी ढूँढ निकाला । जब गोपी ने कृष्ण से दूसरे के घर में आने का कारण पूछा तो कृष्ण ने बिना किसी शंका से कहा कि मैं अपने ही घर में आया हूँ । सूरदास वर्णन करते हैं कि जब गोपियों ने यह पूछा कि फिर मटके में हाथ क्यों डाला तो श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं हाथ से चीटियाँ निकाल रहा हूँ ।[1]

सूरदास ने कृष्ण को यहाँ नटखट बालक के रूप में उकेरा है । नटखटे कृष्ण के मुख से सूर ने इस सत्य का उद्घाटन कराया कि विश्व के सारे घर उनके हैं । वे ही विश्व के पालन कर्ता हैं । अपने किए का तर्क संगत उत्तर देने के लिए भी कृष्ण अत्यंत निपुण हैं । गोपियों के पूछने पर वे चीटियाँ निकालने का बहाना करते हैं । यह बात सुनकर गोपी कुछ बोल ही नहीं पाती । यहाँ सूर ने बालकों के भोलेपन की ओर इशारा करने की कोशिश की है ।

इसी प्रकार एक और प्रसंग में गोपी यशोदा से कृष्ण की शिकायत लेकर आती है और कहती है कि कृष्ण ने अपने साथियों के साथ आकर उसका माखन लूट लिया । तब कृष्ण ने यशोदा से कहा कि गोपी ने उन्हें बुलाया और दही में पड़ी हुई सभी चींटियाँ मुफ्त में निकलवा ली । मैं घर की रखवाली करता रहा और यह गोपी अपने पति के साथ जाकर सो गई ।[2]

---

1. सूरसागर - 10/280
2. वही - 10/322

देखिए कृष्ण ने कितना तर्कसंगत और भोला उत्तर दिया है । कृष्ण की मुँह से यह बात सुनकर शिकायत करनेवाली गोपी ने लाज से अपना मुँह छिपाया । यहाँ सूर ने कृष्ण के भोलेपन की ओर इशारा किया है । बालक अत्यंत भोले होते हैं । उन्हें चोट पहुँचाने पर वे अत्यंत दुःखी हो जाते हैं । लेकिन कृष्ण दुःख को नहीं दिखाते । वे गोपी की बात का अत्यंत धीर होकर तर्कसंगत उत्तर देते हैं । जवाब सुनकर गोपी लज्जित हो जाती है ।

कृष्ण माखन क्यों चुराते हैं इस पर मुंशीराम शर्मा यों कहते हैं - अध्यात्म पक्ष में माखन है जीवात्माओं के समस्त सुकृतों का फल । भगवान भक्त के इसी सुफल पर अनुरक्त है । इधर भक्त अपने समग्र पुण्य फल को प्रभु को भेंट करते जाते हैं, उधर भगवान उसे चुरा-चुरा कर अपने अन्दर रखते हैं । यदि फल-प्राप्ति भक्त के साथ बनी रहे तो किसी दिन अहंकार का कारण बन कर उसे नीचे गिरा सकती है अतः समर्पण होना ही चाहिए - यह भी भक्त पर उनका अनुग्रह ही है ।[1]

सूर ने इस प्रकार अनेक पदों में कृष्ण की माखन चोरी का प्रसंग प्रस्तुत किया है । सूर पर भागवत की माखन चोरी लीला का असर तो ज़रूर देखा जाता है साथ ही उन्होंने अपनी इच्छा और मनोभाव के अनुसार मौलिक लीलाओं की रचना भी की है ।

मीरा बाई ने भी कृष्ण की माखन चोरी लीला का वर्णन किया है । कोई गोपी रास्ते से जा रही थी । कृष्ण ने उसका मार्ग रोक लिया । कृष्ण ने उस गोपी की मटकी फोड़कर सारा दही ढुलका दिया ।

---

1. भारतीय साधना और सूर साहित्य - डॉ. मुंशीराम शर्मा - पृ. 27

गोपी का मन कृष्ण में रम गया था । वह कृष्ण से बार बार उसे घर जाने देने का अनुरोध कर रही थी ।

मारग रोक्यो सांवरा खड़ो काऊ छैल ।
अश्यो अनीतो जाणती जी मोहना ।
सखियाँ ने लाती मोरी गैल ।।
मटकी फोड़ी मेरो महिड़ो ढुलायो ।
चुंदड़ म्हारी कीधी रेला पेल ।।
छोड़ द्यो पलो घर जाणे दो मोहना ।
काहे को लगाया झूठा फेल ।।
मीरा बाई के हरि गिरिधर नागर ।
हरि चरणा में चित मेल ।।[1]

मीरा ने यहाँ अपने को स्वयं गोपी के स्थान पर रखा है । मीरा की माधुर्य भक्ति थी, इसलिए माखन चोरी प्रसंग में उन्हें गोपी ही रहना अधिक अच्छा लगा जिससे कि वे इसी बहाने कृष्ण का साथ पावे । यहाँ कृष्ण के किसी गोपी के घर जाकर माक्खन चुराने का प्रसंग तो नहीं मिलता, लेकिन कृष्ण द्वारा पत्थर फेंकर गोपियों के मटके फोड़ने का प्रसंग मिलता है । मीरा ने कृष्ण की बाल लीला प्रसंग बहुत कम रचे हैं ।

मुसलमान कृष्ण भक्त कवि रसखान की गोपियाँ कृष्ण को माक्खन देने की लालच देकर, उन्हें नचाती हैं -
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ।[2]

रसखान ने माखन चोरी प्रसंग का इस पंक्ति में संकेत मात्र किया है । उन्होंने कृष्ण कथा के अधिकांश प्रसंग संक्षिप्त रूप में संकेतों में ही सजाये हैं । फिर भी ये अत्यधिक प्रभावपूर्ण बन गए हैं ।

---

1. मीरा सुधा सिन्धु - पद 9/162
2. रसखान रचनावली - पद 3।

इसी भाव से साम्य रखनेवाला प्रसंग नारायणीयम् में नारायण कवि ने तथा श्रीकृष्णविलास काव्य में सुकुमार कवि ने प्रस्तुत किया है ।

नारायण कवि कहते हैं कि कृष्ण इस इच्छा से कि सद्यः निकाला हुआ ताजा माक्खन दें, मीठे सुरीले पद गाते थे और कहीं कहीं ठुमुक-ठुमुक कर नाचते थे । इससे आकृष्ट होकर युवतियाँ कृष्ण को माखन देती थीं । इस प्रकार कहीं माखन खाते थे तो कहीं ताज़ा दूध पीते थे ।[1]

सुकुमार कवि कहते हैं कि कृष्ण गोपियों के समक्ष अत्यंत लास्यपूर्वक नाचते थे । क्योंकि नाचने पर गोपियाँ कृष्ण को माखन दिया करती थीं ।[2]

यहाँ पर नारायण कवि और सुकुमार कवि ने एक ही भाव का प्रसंग वर्णित किया है । दोनों कवियों ने बच्चों की मानसिकता पर संकेत किया है । छोटे बच्चे अपनी पसंद की चीज़ें मिलती है तो कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं । यही बात इस प्रसंग में भी सच साबित होती है ।

---

1. प्रतिनवनवनीतं गोपिकादत्तमिच्छन्
   कलपदमुपगायन् कोमलं क्वापि नृत्यन् ।
   सदययुवतिलोकैरर्पितं सर्पिरश्नन्
   क्वचन नवविपक्वं दुग्धमप्यापिबस्त्वम् - नारायणीयम् - 45/8
2. कुरुष्व नृत्तं नवनीतमूल्यं
   कृष्णेति साभ्यर्थनमृषिषीणाम्
   व्रजाङ्गनानां स पुरस्सलीलं
   उदक्षिपयामास पदारविन्दम् ।। कृष्णविलास - 3/80

श्रीकृष्णगीतावली में तुलसीदास ने माखन चोरी प्रसंग का वर्णन तो नहीं किया, लेकिन इसकी ओर गोपी की उलाहना के ज़रिए संकेत अवश्य किया है । गोपियों के घरों में घुसकर कृष्ण माखन चोरी करते हैं । गोपियाँ बार बार शिकायत करती हैं और अंत में श्रीकृष्ण पकड़े जाते हैं । तुलसी ने गोपियों की इस उलाहना का सुन्दर वर्णन केवल एक पद में प्रस्तुत किया है ।

तोहि स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे ।
जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे ।।
गोरस हानि सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजवास बसेरे ।
दिन प्रति भाजन कौन बेसा है ? घर निधि काहू केरे ।
किए निहारो हँसत, खिझे ते डांटत नयन तरेरे ।
अबहिं ते ये सिखे कहा धौं चरित ललित सुत तेरे ।।
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातु बदन तन हेरे ।
तुलसीदास प्रभु कहौं तो बातैं जे कहि भजे सबेरे ।।[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में गोपियों की उलाहना का चित्रण तुलसी ने किया है । माखन चुराने के बाद कृष्ण क्या क्या करते हैं । बड़ों के प्रार्थना करने पर बालकों की बालसुलभ चेष्टा कैसी होती है, डाँटने पर क्या करते हैं - इन सब का चित्रमय चित्रण इसमें तुलसी ने किया है । शिकायत सुनने के बाद माता को ओर देखनेवाले कृष्ण की मुखमुद्रा का जीता जागता वर्णन तुलसी ने इस प्रकार किया है ।

मोकहूँ झूठेहु दोष लगावहिं ।
मैया ! इन्हहिं बानि पर गृह की, नाना जुगुति बनावहिं ।
इन्हके लिये खेलिबो छाँड्यो तऊ न उबरन पावहिं

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 3

भाजन फोरि, बोरि कर गोरस देन उराहनो आवहिं ।।
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि उठि धावहिं ।
करहु आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं ।।
मेरी टेव बूझि हलधर को संतत संग खेलावहिं ।
जे अन्याउ करहिं काहू को तै सिसु मोहि न भावहिं ।।
सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनी हँसि हँसि बदन दुरावहिं ।[1]
बाल गोपाल केलि-कल कीरति तुलसीदास मुनि गावहिं ।।

इन पंक्तियों में तुलसी ने बाल कृष्ण की सफाई पेश की है । किस प्रकार कृष्ण चतुराई से अपने पर लगा हुआ शिकायत का धब्बा मिटाते हैं, इसका वर्णन तुलसी ने यहाँ किया है । लोगों को विश्वास दिलाने के लिए, साक्षी एवं प्रमाण की ज़रूरत पड़ती है । बालकृष्ण ये भी जानते हैं और सबूत और साक्षी के रूप में बलराम को पेश करते हैं । अपनी सफाई पेश करते हुए बच्चे किस प्रकार बोलते हैं, उनकी वचन चातुरी कैसी होती है, इसका सुन्दर वर्णन तुलसी ने प्रस्तुत किया है । तुलसी ने यह भी कहा है कि कृष्ण की क्रीड़ा के सुन्दर गीत मुनि तक गाया करते हैं । फिर साधारण मनुष्य की बात ही क्या है ।

बिल्वमंगल स्वामी ने भी अपने कृष्णकर्णामृत में अपने ढंग से कृष्ण की बाल लीला का वर्णन किया है ।

पीठे पीठनिषण्णबालकगले तिष्ठन् स गोपालको
यन्त्रान्तः स्थितदुग्धभाण्डमवकृष्याच्छाद्य घण्टारवम् ।।
वक्त्रोपान्तकृताञ्जलिः कृतशिरः कम्पं पिबन्यः पयः ।
पायादागतगोपिकानयनयोर्गण्डूषफूत्कारकृत् ।।[2]

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 4
2. कृष्णकर्णामृतम् - 2/97

प्रस्तुत पंक्तियों में बिल्वमंगल स्वामी कृष्ण की मधुर लीला का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कृष्ण, पीटों पर पीट रखकर उसपर एक बच्चे को खडा करके, उस बच्चे के कंधों पर खडे हो गये । उन्होंने उस छी- ो पकड लिया जिसमें दुध का बर्तन रखा था । उस समय कृष्ण ने घंटाओं की आवाज़ को भी रोक दिया । फिर अपने हथेलियों को गोलाकार करके उनसे अपना मुँह ढँक कर बडी चाव से सर हिलाते हुए, दुध पीने लगा । इतने में किसी गोपी ने वहाँ आकर कृष्ण को पकड लिया । पर कृष्ण ने अपने मुँह में जो दुध था उससे उस गोपी के मुँह पर कुल्ली कर दी ।

यहाँ बिल्वमंगल स्वामी ने बाल मनोविज्ञान का सहारा लेकर कृष्ण की शरारत भरी लीला का वर्णन किया है । कृष्ण, छींके तक न पहुँचने के कारण बच्चों को इकट्ठा करके एक के ऊपर एक को खडा करके बिना कोई आवाज़ किए छींके में रखा हुआ दुध पीता है । जब चोरी पकडी जाती है तो गोपी के मुँह पर दुध थूँक देता है । यहाँ बालकों की शरारत का अच्छा खासा वर्णन मिलता है । चित्रण तो बहुत ही चित्रमय, चित्ताकर्षक तथा मनोहारी बन गया है । बिल्वमंगल स्वामी लीला वर्णन के साथ साथ यह भी कहते हैं कि वह शरारती कृष्ण सब की रक्षा करे जिससे उनके भक्ति भाव का भी परिचय इसमें मिलता है । इसी भाव से मिलता जुलता वर्णन सूर ने भी किया है । जब गोपी ने कृष्ण को पकडा तो कृष्ण ने दही हाथ में भर कर गोपी की आँख पर छिटक दिया और ज़ोर से चिल्लाकर भाग निकले ।

नारायण कवि ने कुछ अलग ही ढंग से इस प्रसंग पर संकेत किया है । वे भगवान से पूछते हैं कि क्या अबलाओं के आगे याचना कर्म न करने की ठान ली है ? क्या इसीलिए माँगना छोडकर दही-माखन चुराने लगे थे ?[1]

---

1. नारायणीयम् - 45/9

फिर वे कहते हैं कि माखन चुराने से क्रोध और शोक के बजाय गोपियाँ हर्षित होती थी ।[1]

यहाँ नारायण कवि ने माखन चोरी प्रसंग का वर्णन न करके संकेत मात्र दिया है । कवि भगवान से यह युक्ति संगत प्रश्न पूछते हैं कि बलि राजा से याचना करके अबलाओं से याचना न करने का फैसला तो नहीं किया ? यह माखन चोरी प्रसंग के लिए कवि की मौलिक देन है । अन्यत्र कहीं भी इस प्रकार के विचार देखने को नहीं मिलते । यह भी कहते हैं कि गोपियों को कृष्ण माखन चुराकर हर्ष-सिन्धु में निमग्न कर देते थे ।

सुकुमार कवि का माखन चोरी का वर्णन अनोखा और निराला है । कृष्ण, जिन्हें माखन अच्छा लगता है, पहले पहल माँग के खाते थे । सुकुमार कवि कहते हैं कि कृष्ण हमेशा गोपियों के घरों में माखन माँग के जाया करते थे ।[2] कृष्ण उनके दिये हुए माखन से तृप्त नहीं हो पाते थे । इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि आगे से माँग के नहीं, चुराके खायेंगे । अगर चोरी का पाप लग भी जाता तो उसे धोने के लिए बहुत से तरीके हैं । यह सोचकर कृष्ण ने माखन चुराने का दृढ़ निश्चय किया ।[3]

---

1. नारायणीयम् - 45/10
2. अजस्रमेवं भवनेषु तासां
   बभ्राम कृष्णो नवनीतभिक्षाम् ।। कृष्णविलास - 3/85
3. धिग्याचयां चौर्यभवस्य भूया -
   नस्त्यहसो निर्हरणाभ्युपायः ।
   मत्वेति नूनं नवनीतचौर्ये
   मधोर्निहन्ता मतिमाबबन्ध ।। - कृष्णविलास - 3/86

कृष्ण रात को माखन चुराने के लिए निकलते थे । कोई देख न ले इस डर से उन्होंने फूँककर दिये को बुझा दिया । लेकिन उनके रत्न जटित आभूषणों से जो आभा निकलती थी, उससे कृष्ण दुःखी हुए ।[1] कृष्ण किसी तरह से चुपके से रात को घर के अन्दर पहुँच गये । अपने श्वास को भी रोकते हुए, ताकि कोई भी आवाज़ न निकले, माखन चुराकर खा लेते थे और पूरी तरह तृप्त न होते हुए भी डर के मारे जल्दी से बाहर आ जाते थे ।[2] एक बार कृष्ण माखन चोरी के लिए गये तो भी आदि रात को चोरी न कर पाये । क्योंकि उन्हें डर था कि कोई उनके आभूषणों की आवाज़ सुनकर जाग जाएगा । इस प्रकार सोचते हुए घर के अन्दर जाने के पहले ही, रात, दिन में बदल गया ।[3] एक बार कृष्ण को बड़ी प्यास भी लगी थी, गोपियों के आने का डर भी था । गोपियों के घरों में दरवाज़े और मट्ठे के मटके के बीच चलते रहने से थक गये ।[4] अर्थात् जब कृष्ण मट्ठे

---

1. निर्वाप्य दीपं मुखमारुतेन
   हैयङ्गवीनं निशि हर्तुमिच्छन् ।
   कृष्णः कटीभूषणरत्नभासा
   विहन्यमानो विषसाद भूयः ।। कृष्णविलास -3/87
2. नियमितश्वसितो निभृतैः पदैः निशि कथञ्चन गर्भगृहं गतः
   स तु भयाद्समाप्त मनोरथः निववृते नवनीतहरो हरिः ।।
   कृष्णविलास - 3/89
3. हर्तं हरेर्व्यवसितस्य घने निशीथे भूषारवश्रुतिभयात् व्रजतोऽतिमन्दम् ।
   अन्तर्गृहस्य नवनीतवतः प्रवेशात् प्रागेव हन्तपथि सा रजनी विभाता ।।
   वही - 3/90
4. गोपीसमागमभिया तृषया च गुर्व्या पातुं च हातुमपि गोपगृहेष्वजानन्
   आद्वारमादधिघटं च गतागतानि कुर्वन् सरोजनयनः श्रममेव लेभे ।।
   वही - 3/91

के मटके तक पहुँचते थे तब उन्हें शक होता था कि कोई आ रहा है और उन्हें देख लेगा और जब दरवाज़े तक पहुँचके देखते थे तो वहाँ कोई भी नहीं था । इस प्रकार डर के मारे मटके और दरवाज़े तक चलते रहने से कृष्ण अत्यन्त थक गये । कभी कभी दीवारों पर अपनी ही परछाई देखकर डर के मारे कि वहाँ कोई और भी है, कृष्ण घर से बाहर आ जाते थे ।[1] कृष्ण माखन चुराने के नये नये रास्ते ढूँढते थे और रात को बिना नींद के माखन चुराकर खाया करते थे ।[2] अगर किसी भी प्रकार किसी ने पकड़ लिया तो उनको युक्तिसंगत उत्तर देने के लिए कृष्ण हमेशा अपने खिलौने मट्ठे के मटके के पास छोड़ा करते थे ।[3]

आखिर एक दिन कृष्ण पकड़े ही गये । कृष्ण के हाथ में माक्खन था । पकड़े जाने पर चारों ओर आँखें घुमाकर कृष्ण नीचे मुख किये हुए खड़े हो गये और पैरों से धरती को कुरेदने लगे ।[4] यहाँ

---

1. भित्तिषु प्रतिशरीर दर्शनात् शंङ्कितस्य नवनीतनिस्पृह: ।
   किञ्चिदन्यदिव तत्समार्गयन् निर्जगाम मणिमन्दिरोदरात् ।।
   कृष्णविलास - 3/92
2. जिहीर्षुरन्तर्भवनेषु गोरसं दिनान्यनैषीत्तदुपायचिन्तया ।
   स जागरूकश्च निनाय यामिनीं मनोहराभिर्हरणप्रवृत्तिभि: ।।
   वही - 3/93
3. दृष्टेऽपि तत्सविधसञ्चरणे स तत्र वक्तुं निमित्तमुचितं कृतनि श्चयस्यन् ।
   अभ्यर्ण एव निदधे दधिभाजनस्य लीलायितोपकारणानि निजानिशौरि: ।।
   वही - 3/94
4. वहन् गृहीतो नवनीतमच्युतो भयेन पारिप्लवनेत्रपङ्कज: ।
   पदा लिखन् भूमिमवाङ्मुखस्थितो जहार चेतोऽपि च गोपयोषिताम् ।।
   वही - 3/95

सुकुमार कवि ने चोरी करते हुए पकड़े गये "चोर" का स्वाभाविक चित्र खींचा है । यह स्वाभाविक ही देखा जाता है कि अगर चोर को रंगे हाथों पकड़ लिया जाए तो वह पहले मुख नीचे किए खड़ा रहेगा । अपनी चोरी से देखनेवाले का मन हटाने के लिए धरती को कुरेदता या और कोई काम करता रहेगा ताकि देखनेवाले यह समझ ले कि उन्होंने कुछ किया ही नहीं । यह चोरी के अपराध भाव को छिपाने का प्रयत्न माना जा सकता है । सुकुमार कवि के कृष्ण भी यही करने की कोशिश कर रहे थे । उनके सामने एक मात्र उलझन यह थी कि वे रंगे हाथों पकड़े गये । इसलिए चोरी से इन्कार भी नहीं कर सकते थे । सुकुमार कवि ने कृष्ण की आँखों में डर की झलक दिखाने की कोशिश की है । डर के मारे ही कृष्ण की आँखें चंचल होकर चारों ओर घूम रही थी ।

जब गोपियों ने यशोदा और नन्द को कृष्ण की चोरी पकड़े जाने का समाचार सुनाया, तो कृष्ण ने मान लिया कि उन्होंने चोरी की है । फिर अपने माता पिता के समक्ष यह शपथ ली कि इस तरीके से अइन्दा माखन की चोरी नहीं करेगा ।[1]

इस घटना के बाद कृष्ण ने फिर से चोरी करना आरंभ किया । "रात के वक्त मेरे घर से माखन चोरी हो गया, घी चोरी हो गया, मट्ठा चोरी हो गया" गोपियों के मुँह से उपालम्भ भरी यह वाणी सुनकर कृष्ण के मुख पटल पर कोई अन्तर नहीं दीख पड़ा । अर्थात् कृष्ण ने उनकी शिकायत पर कोई ध्यान ही नहीं दिया ।[2] यशोदा ने कुपित होकर

---

1. शपे पितृभ्यामितऊर्ध्वमेवं
 नाहं विधास्ये नवनीतचौर्यम् ।
 विनिश्वसन्नित्यभिधाय कृष्णो
 जहार मातुश्च पितुश्च चेत: ।। कृष्णविलास - 3/96

2. कृष्णविलास - 3/98

कहा कि भगवान से मैं ने कुलोद्धारक पुत्र माँगा था । लेकिन मुझे तुझ जैसा पुत्र मिला जो समस्त भुवनों का चोर है ।[1]

यहाँ सुकुमार कवि ने कृष्ण को समस्त भुवनों का चोर कहकर संबोधित किया है । इससे कवि ने इस बात की ओर संकेत किया है कि कृष्ण स्वयं भगवान् हैं । वे समस्त प्राणी-जगत् के पापों को हरता है, चुराता है । इसलिए उसे समस्त भुवनों का चोर कहा जाता है । यशोदा को पता था कि कृष्ण साधारण बालक नहीं है । इसलिए कृष्ण के कुछ भी करने पर वह नाराज़ नहीं होती थी । लेकिन गोपियों के उपालम्भों से तंग आकर, उन्हें सांत्वना देने के लिए ही यशोदा नाराज़ होने का अभिनय कर रही थी । फिर यशोदा ने साम, दान, भेद और दंड से हरि से माखन चोरी कबूल करवाने की कोशिश की लेकिन कृष्ण ने यह कबूल करने से साफ इन्कार कर दिया ।[2] यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि पहले के श्लोकों में कृष्ण ने अपनी चोरी मान ली थी । यहाँ आकर कृष्ण को अपने-आप पर भरोसा हो गया । इसीलिए चोरी कबूल करने से साफ इनकार कर दिया ।

जब गोपियाँ कृष्ण का खेल देखने के लिए घर से बाहर निकलती थी, तब कृष्ण अपने साथियों से हार जाने का बहाना करके घर के अन्दर जाकर दरवाज़ा बंद करके माखन लेके खाते थे ।[3] सुकुमार कवि ने यहाँ बाल मनोविज्ञान का सहारा लेकर बच्चों की मानसिकता का वर्णन किया है । जब गोपियाँ घर के बाहर आती थी, तो कृष्ण जानता था कि अन्दर कोई नहीं है । कृष्ण यह मौका हाथ से निकलने नहीं देता था । इसीलिए कोई न कोई बहाना बनाकर घर के अन्दर घुस कर माखन खाया करता था । इस प्रकार कृष्ण ने चोरी का एक नया तरीका ढूँढ निकाला।

---

1. कृष्णविलास - 3/99
2. वही - 3/100
3. वही - 3/102

सुकुमार कवि का माखन चोरी प्रसंग अपनी मौलिकता लिए हुए है । सूरदास, नारायण भट्टत्तिरि, बिल्वमंगल आदि ने भी इसका वर्णन किया है । फिर भी सुकुमार कवि का वर्णन इन सब से अलग है । सुकुमार कवि का कृष्ण चोरी करने के लिए रात को निकलता है जब कि अन्य कवियों ने इसे दिन में चित्रित किया है । सुकुमार कवि ने कृष्ण से रात को चोरी करवाकर "सचमुच चोरी रात के अंधेरे में की जाती है", इस बात पर संकेत किया है । सुकुमार कवि का कृष्ण चोरी करने के लिए अकेले जाता है जब कि बाकि कवियों ने साथियों के साथ कृष्ण की माखन चोरी का वर्णन किया है । सुकुमार कवि का कृष्ण थोडा सा डरपोक भी है इसीलिए चोरी के पहले कोई आता है या नहीं यह बार-बार देखता रहता है । इस प्रकार अनेक विशेषताओं को लेकर सुकुमार कवि का माखन चोरी वर्णन अपनी मौलिकता लिए हुए है ।

कृष्ण की रोटी के लिए जिद्द

बालक कृष्ण अपनी माँ यशोदा से रोटी खाने की जिद्द करता है । इसका जीता जागता वर्णन तुलसी ने श्रीकृष्णगीतावली में किया है ।

> छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू देरी मैया,
> "लै कन्हैया" "सो कब ?" "अबहिं तात" ।
> सिगरियै हौं ही खैहौं, बलदाउ को न देहौं
> सो क्यों भटू तेरो कहा, कहि इत उत जात ।।
> बाल बोलि विरावत चरित लखि,
> गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात ।
> नूपुर की धुंनि किंकिनि के कलरव सुनि,
> कूदि-कूदि किलकि - किलकि ठाढे-ठाढे खात ।।

तनियाँ ललित कटि विचित्र टेपारो सीस ;
मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात ।।
तुलसी निरखि हरषत बरषत फूल,
"भूरि भागी व्रजवासी विबुध सिद्ध सिहात ।।"[1]

तुलसी ने यहाँ पर कृष्ण की रोटी की जिद्द, उनका सुन्दर रूप, किलकारियाँ किलक-किलक कर कूद-कूद कर चलना आदि का चित्रमय वर्णन प्रस्तुत किया है । बाल सहज रोटी की माँग, बलदाऊ को न देते हुए सारी रोटियों को स्वयं खाने को बालक के मन की चाह आदि का जीता जागता वर्णन कम से कम शब्दों में तुलसी ने यहाँ प्रस्तुत किया है । कृष्ण जो रोटी माँगते हैं वह स्वादिष्ट रहे, रूखी न रहे, जली, टूटी, फटी या टेढ़ी न रहे, देखने में अच्छी रहे इसकी कृष्ण को जिद्द है । छोटी, मोटी, मीसी, चिकनी आदि विशेषणों में यही बात व्यक्त हुई है ।

यह लीला तुलसी की अपने ढंग की अलग देन है । अवतारी कृष्ण के लोकरक्षक रूप की ओर इसमें संकेत किया गया है । साथ ही तुलसी कृष्ण की इन लीलाओं से मुनियों के मन संतुष्ट करने की बात भी करते हैं ।

सूरदास ने कृष्ण के रोटी माँगने के तरीके को इस प्रकार व्यक्त किया है -

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी ।
माखन सहित देही मेरी मैया, सुपक सुकोमल रोटी ।

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 2

कत हौ आरि करत मेरे मोहन तुम आँगन में लोटी ?
जो चाहौ सो लेहु तुरतहीं छाँडौ यह मति खोटी ।
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपयौ और चोरी ।
सूरदास को ठाकुर ठाढ़ौ हाथ लकुटिया छोटी ।।[1]

सूर ने यहाँ कृष्ण की रोटी माँगने की जिद्द का चित्रण किया है । वे माँ से कहते हैं कि उनकी रोटी अच्छी तरह पकी हुई और सुकोमल हो । अर्थात् जली, टूटी न हो बल्कि स्वादिष्ट हो । यही बात तुलसी ने अपने प्रसंग में प्रस्तुत की है । सूर का कृष्ण तो स्वादिष्ट रोटी एवं माखन पाने के लिए उधम मचाए हुए हैं । माँ कहती है कि उन्हें जैसी रोटी चाहिए वैसी ही मिलेगी और उनसे अपनी जिद्द छोड़ने को कहती हैं ।

सूर और तुलसी के कृष्ण को स्वादिष्ट तथा "सुन्दर" दीखनेवाली रोटी चाहिए । आम तौर पर ऐसा है कि बच्चे हमेशा "सुन्दर" दीखनेवाली रोटी ही माँगते हैं । यहाँ तुलसी और सूर ने बच्चों की इस मनोविज्ञानिकता की ओर इशारा किया है । सूर का कृष्ण नटखट है । रोटी न मिलने से वे पृथ्वी पर लोटते हैं । यह भी नटखटी बच्चों का स्वभाव है कि जब उन्हें अपनी मनचाही चीज़ नहीं मिलती तो वे पृथ्वी पर लोटते हैं । यहाँ सूर ने अपनी मनपसंद चीज़ न मिलने से रूठनेवाले बच्चों का चित्र प्रस्तुत किया है ; तो तुलसी ने मनचाही चीज़ मिलने से खुश होकर कूदनेवाले बच्चे का चित्र प्रस्तुत किया है ।

---

1. सूरसागर - 781 न.प्र.स.

मीरा ने भी कृष्ण के मेवा, पकवान माँगने का चित्र प्रस्तुत किया । मीरा का कृष्ण सूर के कृष्ण की तरह नटखट नहीं है । वे सीधे यशोदा मैया से उन्हें मधु, मेवा, पकवान और मिठाई देने की माँग करता है ताकि ये चीज़ें खाकर वह बडा और बलवान बन जाए और बैरियों को मारने में काबिल हो जाए ।[1] इससे मीरा ने भगवान कृष्ण के दुष्ट संहार की ओर इशारा किया है ।

उलूखल बंधन

यह प्रसंग भागवत के दशम स्कंध के पूर्वार्ध के नौवें अध्याय में, विष्णु पुराण के पंचम अंश के छठे अध्याय में और हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व के सातवें अध्याय में वर्णित है । एक दिन यशोदा मैया दधि मंथन कर रही थी । बालकृष्ण दूध पी रहे थे । इतने में आग पर चढे हुए दूध में उफान आने लगा, यशोदा कृष्ण को अतृप्त छोडकर दूध उतारने लगी । इससे कृष्ण रूष्ट हो गये, उन्होंने दही का भाँडा फोड दिया, फिर एकान्त में रखा हुआ माखन खाने लगे । लौट आकर फूटा हुआ भांडा देखकर और कृष्ण को माखन खाते हुए तथा बंदरों को भी लुटाते हुए देखकर यशोदा को गुस्सा आ गया । यशोदा दबे पाँव छडी लेकर वहाँ पहुँची जहाँ कृष्ण खडे थे । यह देखकर कृष्ण भयभीत होकर भागने लगे । दौडती हुई यशोदा ने कृष्ण को पकड लिया । फिर कृष्ण को ऊखल में बाँधने लगी । पर उसके लिए सभी रस्सियाँ दो अँगुल छोटी पड जाती थीं । ग्वालिनों ने अपने अपने घरों से रस्सियाँ लाकर दीं । अंत में श्रीकृष्ण बंध गये । कृष्ण को ओखली में बाँधकर यशोदा गृह कार्य में लग गई ।

---

1. मधु मेवा पकवान मिठाई, जब माँगूं जब दे री ।
   सब लडकन में बडो कहावुं, तेरो पुन्न बडे री ।
   बडो होवुँगो प्हल करूँगो, मारूँगा सब वैरी ।। मीरा सुधा सिन्धु
   व्रजभाव के पद - 173

इधर कृष्ण ओखली घसीटते हुए पुराने यमलार्जुन नामक दो वृक्षों के बीच से निकले । इसके झटके से वे वृक्ष उखड कर गिर पडे । उनमें से दो दिव्य पुरूष निकले । वे कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव थे, जो नारद के शाप से वृक्ष बने हुए थे । भगवान के स्पर्श से पापमुक्त होकर दोनों कृष्ण की स्तुति करके उत्तर दिशा की ओर गये ।

सूरदास ने यह प्रसंग यों वर्णित किया है -

जसुमति रिस करि करि रज्जु करषै ।
सुत हित क्रोध देखि माता के मनही मन हरि हरषै ।।
उफनत छीर जननि करि व्याकुल इहि विधि भुजा छुडायौ ।
भाजन फोरि दही सब डारयौ माखन कीच मचायौ ।
लै आई जेंवरि अब बाँधौं भरब जानि न बैधायो ।
अंगुर द्वै घटि होति सबनि सौं पुनि पुनि और मँगायौ ।।
नारद साप भए यमलार्जुन तिनकौं अब जु उधारौं ।
सूरदास प्रभु कहत भक्त हित जनम जनम तनु धारौं ।।

प्रस्तुत पंक्तियों में सूरदास ने उलूखल बंधन प्रसंग का रोचक चित्रण प्रस्तुत किया है । यशोदा गोपियों के मुख से कृष्ण की शरारतों का भाषण सुनकर तंग आ जाती है । वह बहुत कुपित हो जाती है और कृष्ण की बाँह पकडती है । कृष्ण माँ के क्रोधित होने की वजह से मन ही मन खुश हो जाता है । इतने में अंगीठी पर रखे हुए दूध में उफान आ जाता है तो यशोदा उधर चली जाती है और कृष्ण आज़ाद हो जाते हैं । फिर कृष्ण बर्तन, जिसमें यशोदा दही मथ रही थी, फोड डालते हैं और सारा दही ढुलका देते हैं । वहाँ माखन का कीचड़ बन जाता है । माता कृष्ण को बांधने के लिए रस्सी लेकर आती हैं, सभी दो अंगुल छोटी पड जाती है । माता को गर्वित जानकर कृष्ण बंधन में नहीं पडते । फिर कृष्ण बंध जाते है और यमलार्जुन वृक्षों का उद्धार करने के लिए निकलते हैं ।

यहाँ यशोदा गोपी उपालम्भ सुनकर कृष्ण पर कुपित हो जाती है । इसलिए बर्तन फोड़ता है । बाकी कवियों के वर्णन में तथा पुराणों में कृष्ण को अतृप्त छोड़ने की वजह से कृष्ण बर्तन फोड़ता है । यह सूर काव्य की मौलिकता है । यहाँ सूरदास ने इस बात पर भी संकेत किया है कि कृष्ण अहंकारयुक्त मनुष्यों के अधीन नहीं आते । अर्थात् गर्व रखनेवाले मनुष्य भगवान को पा नहीं सकते । साथ ही इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि भक्तों के उद्धार के लिए भगवान बार बार शरीर धारण करते हैं । यही बात गीता में भी कही गयी है ।[1]

तुलसी की श्रीकृष्णगीतावली में इस प्रसंग का संकेत मात्र मिलता है । तुलसी ने इस प्रसंग का वर्णन तो नहीं किया लेकिन इसके बाद गुरु पत्नी के द्वारा यशोदा को समझाने के प्रसंग के ज़रिए इस लीला की ओर संकेत किया है । तुलसी ने चार पदों में इस का वर्णन किया है । उन्होंने गुरु-पत्नी से कृष्ण की शोभा का वर्णन करवाके यशोदा के चित्त को मुग्ध कराके उसके क्रोध को कम करने की कोशिश की है । यहाँ उन्होंने भगवान के लोक रक्षक रूप की ओर भी संकेत किया है । गुरु पत्नी यशोदा को कैसे समझाती है तुलसी के शब्दों में देखिए -

हा हा री महरि बारो, कहा रिस बस भई,
कोखि के जाये सो रोष केतो बड़ो कियो है ।
ढीली करि पाँवरी, बावरी साँवरेहि देखि,
सकुचि सहमि सिसु भारी भय कियो है ।
दूध दधि माखन भो, लाखन गोधन धन,

---

1. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। गीता - 4/7

जब ते जनम हलधर हरि लियो है ।
खायो, कै खवायो, कै निगारयो, ढाप्यो लारिका री,
ऐसे सुत पर कोह कैसो तेरो हियो है ?
मुनि कहैं सुकृती न नेद जसुमति सम,
न भयो, न भावी, नहिं विद्यमान नियो हैं ।
कौन जाने कौने तप, कौने जोग जाग जप,
कान्ह सो सुवन तोको महादेव दियो है ।
इन्ह ही के आये ते बधाये ब्रज नित नये,
नादन बाढ़त सब सब सुख जियो है ।
नन्दलाल-बाल-जस संत सुर सरबस,
गाइ सो अमिय रस तुलसिहूँ पियो है ।।[1]

इन पंक्तियों के ज़रिए तुलसी ने कृष्ण के अवतारी रूप को ओर संकेत किया है । उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि जहाँ ईश्वर का वास होता है वहाँ ऐश्वर्य भी बढ़ता है । भक्त कवि तुलसी यहाँ तक कहते हैं कि कृष्ण का यशो गान सन्तों और देवताओं का सर्वस्व है और स्वयं तुलसी ने इसका गान करके अमृत रस पाया है ।

बिल्वमंगल स्वामी इस लीला का संकेत मात्र करते हुए कहते हैं कि गोकुल में कृष्ण की शरारतों से फैली हुई बदनामी को दूर करने के लिए माता यशोदा ने कृष्ण को ऊखल से बांध दिया था । लेकिन कृष्ण के विशाल जठर में आश्रित प्राणियों को वह बंधन भयंकर आक्रन्दन का कारण हुआ ।

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 16

यहाँ कृष्ण के विश्वरूप की ओर संकेत मिलता है । कहते हैं सारा विश्व भगवान की जठर में होता है । इसी बात का उल्लेख स्वामी ने यहाँ किया है । यहाँ इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि भगवान को कष्ट होने से संसार के सभी प्राणियों को भी कष्ट होता है ।

नारायणीयम् में इस लीला का वर्णन सैंतालीसवें अध्याय में हुआ है । नारायण कवि का वर्णन हू-ब-हू भागवत के वर्णन से मिलता है । यहाँ कवि ने इस बात की ओर संकेत किया है कि भगवान नित्य मुक्त शरीरवाले हैं फिर भी यशोदा पर कृपा करके उसके बंधन में बंध गये । यह इस बात पर प्रकाश डालता है कि भगवान भक्त पराधीन है और भक्तों के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं ।

श्रीकृष्णविलास काव्य में सुकुमार कवि ने उलूखल बंधन का प्रसंग सरस ढंग से प्रस्तुत किया है । उनका कहना है कि एक दिन गृहकार्य में तत्पर यशोदा ने कृष्ण को ओखली से बांध लिया । लेकिन कृष्ण एक जगह पर बैठनेवाले कहाँ थे ? वे ओखली को भी लेकर घर के बाहर चले गये ।[1] चलते चलते उनकी ओखली यमलार्जुन वृक्षों में अटक गयी । कृष्ण ने बलपूर्वक खींचा तो दोनों वृक्ष धरती पर गिर गये ।[2]

---

1. निषीद लोलेति निबध्य सस्मितं
   चकार कार्याणि चकोरलोचना ।
   अनादरेण भ्रमयन्नुलूखलं
   विनिर्ययौ विश्वपतिस्स्वमन्दिरात् ।। श्रीकृष्णविलास-3/63
2. स सन्निकृष्य स्थितयोः परस्परं
   महिरुहोर्मध्यपथेन निस्सरन् ।
   गतेन तिर्यक्त्वमुलूखलेन तौ
   बभञ्ज दामोदरगन्धतारणा ।। वही - 3/65

सुकुमार कवि ने इस प्रसंग में उलूखल बंधन पर ज़ोर न देकर यमलार्जुन उद्धार पर बल दिया है। इससे पता चलता है कि वे कृष्ण के देवत्व पर अधिक बल देते थे। सूरदासादि कवियों ने कृष्ण के उलूखल बंधन लीला पर बल दिया है। उन्होंने यमलार्जुन का उल्लेख चलते ढंग से किया है। इससे पता चलता है कि सूरदासादि कवियों का मन श्रीकृष्ण की मनमोहक बाललीलाओं की ओर अधिक आकृष्ट हुआ है जबकि सुकुमार कवि कृष्ण के देवत्व की ओर अधिक आकृष्ट रहे हैं।

गोवर्धन धारण

यह प्रसंग कृष्ण कथा का एक प्रमुख अंग है। इसका वर्णन भागवत के दशमस्कंध के पच्चीसवें अध्याय में, विष्णु पुराण के पंचम अंश के ग्यारहवें अध्याय में, हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व के अठारहवें अध्याय में वर्णित है।

वृन्दावन में इन्द्र को खुश करने के लिए हर साल एक यज्ञ का आयोजन किया जाता था। वहाँ के लोगों की धारणा थी कि जल और मेघ के स्वामी होने के नाते इन्द्र को यज्ञादि से खुश करने से वर्षा समय समय पर होगी। श्रीकृष्ण ने देखा कि नन्दादि इन्द्रयज्ञ की सामग्री इकट्ठी कर रहे हैं। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि उनको गोवर्धन पर्वत की पूजा करनी चाहिए। क्योंकि पर्वत ही वर्षा करवाते हैं, न कि इन्द्र। यह सुनकर गोवर्धन की पूजा की गयी। स्वयं श्रीकृष्ण ने गिरि-रूप धारण करके पूजा स्वीकार की तथा स्वयं सबके साथ मिलकर उस रूप का पूजन भी किया। पूजा समाप्त कर व्रजवासी घर लौटे।

उधर इन्द्र पूजा के रूक जाने से कुपित हुए और व्रज पर घोर वर्षा करने लगे। व्रज में घोर वर्षा हुई, ओले गिरे और बिजली चमकी। सारा व्रज जलमग्न हो गया। सब के प्राणों पर आ बनी।

सब रक्षार्थ कृष्ण को पुकारने लगे । तब कृष्ण ने गोवर्द्धन को अपने ऊँगली पर उठाया । सभी व्रजवासी और गाएँ उसके नीचे आकर सुरक्षित रहे । सात दिन तक यही हाल रहा । अंत में इन्द्र ने हार कर वर्षा रोक दी । वर्षा रुक गयी और आकाश स्वच्छ हो गया । तब सब बाहर आये और भगवान ने गिरिराज को यथास्थान रख दिया ।

सूरदास ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है -

छोडि देहु सुरपति की पूजा ।
कान्ह कह्यौ गिरि गोवर्धन तै और देव नहिं दूजा ।
गोपनि सत्य मानि यह लीन्ही बडौ देव गिरिराज
मोहिं छांडि ये परबत पूजत गरब कियौ सुरराज
पर्वत सहित धोई व्रज डारों देउँ समुद्र बहाइ ।
मेरी बलि औरहिं लै अरपत इनकी करौ सजाई ।।
राखौं नहीं इन्है भूतल पर गोकुल देऊ बुडाइ ।
सूरदास प्रभु जाकौ रच्छक सैगहि संग रहाइ ।।

प्रस्तुत पंक्तियों में सूरदास ने कृष्ण के लोक रक्षक रूप की ओर संकेत किया है । इस लीला के ज़रिए कृष्ण को इन्द्र का दर्प भंग करनेवाले के रूप में चित्रित किया है । इन्द्र के मन में गर्व का उदय हुआ इसलिए भगवान ने उनका गर्व भंग करने के लिए यह लीला रची । सूरदास ने इस ओर भी संकेत किया है कि जिसकी रक्षा स्वयं भगवान करते हैं उसका बाल भी कोई बांका नहीं कर सकता ।

गोपों ने कृष्ण की बात मानकर गोवर्द्धन की पूजा की । सारा व्रज कृष्ण के आश्रित हो गया । इसलिए कृष्ण ने गोवर्धन को ऊँगली पर उठाकर सारे समाज की रक्षा की । यहाँ कृष्ण के भक्तवत्सल

स्वरूप की ओर इशारा है । भगवान स्वयं भागवत में कहते हैं -
"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।"[1]
जो केवल एक बार मेरी शरण में आ जाता है और "मैं तुम्हारा हूँ" इस प्रकार याचना करता है, उसे मैं स्वयं अभय देता हूँ ।

सूर ने इस लीला का वर्णन बहुत ही विस्तृत ढंग से किया है । कृष्ण का गोवर्धन का रूप धारण कर पूजा स्वीकारना, व्रजवासियों का आनन्द, इन्द्र का कोप, वर्षा का आना, उसका वर्णन आदि का चित्रण विस्तृत ढंग से किया है । मीरा ने इस लीला की ओर एक पद में संकेत किया है । प्रत्यक्ष वर्णन तो नहीं किया, लेकिन गिरि को धारण करने पर गोपियों ने कृष्ण से जो कहा, उसका वर्णन मिलता है -

गिरिवर गिर न पड़े रे गोपाल ।
सब सखियन मिल पूजन चाली भर भर मोतियन थाल ।।
दादुर मोर पपैया बोले पीऊ पीऊ की पुकार ।।
इन्द्र कोप किया व्रज ऊपर बरसे मूसलधार ।।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर कबको करे रे पुकार ।।[2]

यहाँ मीरा ने कृष्ण के लोकरक्षक रूप की ओर सूक्ष्म रूप से संकेत किया है । मीरा को कृष्ण का गिरिधारी नाम अत्यंत प्रिय था । यह नाम कृष्ण के गोवर्धन धारण के कारण ही पड़ा था । इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मीरा कृष्ण के लोकरक्षक रूप की ओर आकृष्ट थी । मीरा ने कृष्ण को भक्तों की सहायता करनेवाले के रूप में प्रस्तुत किया है । कहते हैं कृष्ण भक्तों की पुकार सुनकर दौड़े दौड़े आते हैं । भक्तों को अभय प्रदान करना भगवान का स्वभाव है ।[3]

---

1. भागवत - 10/25/17
2. मीरा सुधा सिन्धु - 9/298
3. गीता - 16/1

श्रीकृष्णगीतावली में तुलसीदास ने इस प्रसंग की कुछ घटनाओं की ओर संकेत किया है।[1] इसमें भी तुलसी ने कृष्ण के लोकरक्षक रूप की ओर इशारा किया है। तुलसी ने कृष्ण को इन्द्र का गर्व हरण करनेवाले भगवान के रूप में चित्रित किया है। तुलसी का यह वर्णन कुछ कुछ भागवत के वर्णन से मिलता जुलता है। इन्द्र ने व्रज को नष्ट करने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। फिर भी वे व्रज का कुछ अहित नहीं कर सके। तुलसी ने यहाँ भगवान कृष्ण के स्वामित्व को दिखाने की कोशिश की है और यह भी दिखाया है कि जिसकी रक्षा स्वयं भगवान करते हैं उनका कोई कुछ बिगाड नहीं सकता।

बिल्वमंगल स्वामी ने इस लीला का "गोवर्धनोद्धरण-केलिकृतप्रयासम्"[2] कहकर छोटा सा संकेत मात्र किया है।

नारायणीयम् में इन्द्रयाग निवारण और गोवर्धन धारण दो दशकों में वर्णित है। यह वर्णन बिलकुल भागवत के वर्णन से मिलता जुलता है।[3] नारायण कवि ने भी इस लीला के ज़रिए भगवान के लोक रक्षक स्वभाव की ओर संकेत किया है। सुकुमार कवि ने गोवर्धन धारण लीला का वर्णन अत्यंत सरस तथा सरल ढंग से श्रीकृष्णविलास में किया है।

उनके वर्णन का आधार तो भागवत पुराण ही रहा है और यह लीला भागवत के अनुरूप ही वर्णित हुई है। लेकिन पर्वत उठाते समय तथा बाद में कृष्ण पर क्या बीतता है, गोप गण और यशोदा क्या सोचती है, इन सब का वर्णन उन्होंने किया है।

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 18
2. कृष्णकर्णामृतम् - 2/55
3. नारायणीयम् - 62, 63 दशक

सुकुमार कवि कहते हैं कि इन्द्र कोप से गोपजनों को बचाने के लिए श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन अपनी उँगली पर कंदुक की तरह उठाया ।[1] कृष्ण को हमेशा इस बात का डर और चिंता थी कि अपने पर भरोसा रखनेवाले गोपजनों की रक्षा कैसे की जाए ?[2] फिर उन्होंने निश्चय किया कि गोवर्धन को छतरी की तरह पकड़कर इन लोगों की रक्षा की जा सकती है ।[3] फिर कृष्ण ने इन्द्र के गर्व भंजन के लिए गोवर्द्धन को उठाया ।[4] समस्त गोकुल गोवर्द्धन के नीचे संगठित होने का काल्पनिक दृश्य देखकर सुकुमार कवि को प्रलयकालीन दृश्य याद आता है जब समस्त जीव-जाल महाविष्णु के उदर में निवास करता है ।[5] बाल रूपी कृष्ण के इतना बड़ा पर्वत उठाते रहने से गोप-गण अत्यंत व्याकुल होकर रोने लगे कि इतना छोटा सा बालक यह महान कार्य कैसे कर सकता है ?[6] यशोदा तो अपने बेटे की रक्षा के लि

---

1. तं कंदुकमिवादत्त करेण कमलेक्षण: ।
   शक्र प्रहरणाशंकी यथाजायेतकंपित: ।।
   गोपालानाह गोविन्द: करेण गिरिमुद्वहन्
   गा: प्रवेशयत छिद्र मद्रेर्विशतचस्वयम् ।।
   श्रीकृष्णविलास - 6/50, 51
2. श्रीकृष्णविलास - 6/47
3. वही - 6/48
4. वही - 6/49
5. वही - 6/53
6. वही - 6/56

अनाथ बंधु नारायण को पुकारकर रोने लगी ।[1] फिर सभी गोप गण, विप्र, धेनु आदि कृष्ण के क्षेमार्थ प्रार्थना करने लगे । साथ ही कृष्ण हतोत्साहित न हो जाए तथा थक न जाए इस वजह से उनसे बार-बार पूछने लगे कि क्या आप थक गये हैं । फिर गोवर्द्धन पकडने के लिए भी तैयार हो गये । अपने प्रयत्न को विफल होते देखकर इन्द्र पर लता कुसुम हँसने लगे ।[2] इस प्रकार एक हफ्ता बीत गया । फिर अत्यंत भयभीत होकर इन्द्र अपने दोस्तों को लेकर कृष्ण के पास दौडे चले आये और उनसे क्षमा माँगने लगे ।[3]

इस प्रकार सुकुमार कवि ने अत्यंत विस्तृत तथा सजीव ढंग से इस लीला का वर्णन किया है । इस लीला का वर्णन करते समय कवि ने प्रचुर मात्रा में कल्पना का सहारा लिया है । कृष्ण के गोवर्द्धन उठाये रहते समय देवों को सहायता के लिए पुकारना तथा इस वजह से रोना मनुष्य स्वभाव के अनुकूल रहा है । उसी प्रकार नारायण को अनाथ बांधव कह कर पुकारना इस बात का संकेत है कि कवि भगवान के अनुग्रह पर निर्भर करते हैं और उनसे अपनी रक्षा की आशा करते हैं । उसी प्रकार प्रलय कालीन दृश्य का स्मरण दिलाना इस बात की ओर संकेत करता है कि कवि अवतारवाद पर विश्वास करते हैं तथा नारायण और श्रीकृष्ण को एक मानते हुए, उनके परब्रह्मत्व को स्वीकार करते हैं । इस लीला के ज़रिए सुकुमार कवि ने यह बात सिद्ध की है कि भगवान अपने भक्तों की रक्षा अवश्य करते हैं ।

---

1. नाथ । नारायण । श्रीमान् ।
   अनाथ जन बांधव ।
   पाहि मे पुत्रमापन्न
   मित्यरोदि यशोदया ।। श्रीकृष्णविलास - 6/57
2. श्रीकृष्णविलास - 6/63
3. वही - 6/71

इस वर्णन में कवि ने काल्पनिकता का भरपूर मात्रा में सहारा लिया है । कृष्ण को भक्तों की रक्षा के लिए चिंतित दिखाना, लता कुसुमों का इन्द्र पर हँसना आदि इसी का परिणाम है । जो भी हो, कवि ने सरल तथा सरस रूप में इस लीला का वर्णन करके कवि कर्म का अत्यंत निष्टता के साथ पालन किया है ।

गोवर्धन धारण के ज़रिए कृष्ण ने अपने महत्त्व का प्रतिपादन किया है और लोगों को उन्हें भजने को प्रोत्साहित किया है । कृष्ण को अपने भक्त प्राणों से भी प्रिय हैं । उनके लिए वे कुछ भी कर सकते हैं । यहाँ तक कि दुर्गम पहाड भी उठा सकते हैं । इस लीला के द्वारा इस बात पर ज़ोर दिया है कि हरि अपने भक्तों की रक्षा हर संकट से करते हैं ।

चौथा अध्याय

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्य और संस्कृत के कृष्ण काव्यों में

कृष्ण कथा प्रसंग - ।।

गत अध्याय में हमने हिन्दी तथा संस्कृत में आये हुए कृष्ण कथा प्रसंगों का वर्णन किया है । उसमें हमने श्रीकृष्ण जन्म, पूतना वध, श्रीधर अंग-भंग, विविध असुरों का वध, कृष्ण का अंगूठा चूसना, चन्द्र प्रस्ताव, कृष्ण का घुटुरवों तथा पावों चलना, कृष्ण को राम की कहानी सुनाना, माटी भक्षण प्रसंग, माखन चोरी, उलूखल बंधन, कृष्ण की रोटी के लिए जिद्द, गोवर्धन धारण आदि कृष्ण कथा प्रसंगों का वर्णन किया है । इस अध्याय में हम कालिय दमन, वंशी वादन, गोपी प्रेम, राधा-कृष्ण मिलन, कृष्ण की विविध लीलाएँ, भ्रमर गीत प्रसंग और कुब्जा वरण प्रसंग का वर्णन कर रहे हैं ।

कालिय दमन

यह प्रसंग कृष्ण कथा का प्रमुख प्रसंग रहा है । इसका वर्णन भागवत के दशमस्कंध के सोलहवें अध्याय में, पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में, विष्णु पुराण के पंचम अंश के सातवों अध्याय में, ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में तथा हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व के ग्यारहवें तथा बारहवें अध्याय में मिलता है ।

यमुना नदी में एक विषैला नाग वास करता था जिसका नाम था कालिय । एक दिन कृष्ण और ग्वालबाल, बलराम के बिना, गोचारण के लिए गये थे । ग्रीष्मकाल की भीषण गर्मी से संतप्त होकर गौओं तथा ग्वालबालों ने यमुना का विषैला जल भरपेट पी लिया । जल पीकर वे बेसुध होकर गिर पड़े । कृष्ण ने जान लिया कि यह कालिय नाग की करतूत है । कृष्ण ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से सब ग्वाल बालों को होश में ला दिया और शीघ्र ही एक निकटवर्ती कदंब वृक्ष पर चढ़कर यमुना-जल में कूद पड़े । कृष्ण के कूद पड़ने से यमुना जल और उछलने लगा । इससे कालिय नाग कृष्ण के सामने आ गया । उसने श्रीकृष्ण के मर्मस्थान में डँसकर अपने शरीर के बन्धन से कृष्ण को जकड़ लिया । भगवान श्रीकृष्ण नागपाश में बँधकर निश्चेष्ट हो गये । यह देखकर ग्वालबाल दुःखी हो गये

भगवान श्रीकृष्ण ने उस समय अपना शरीर फुलाकर खूब मोटा कर लिया । इससे साँप का शरीर टूटने लगा । वह अपना नागपाश छोडकर अलग खडा हो गया और क्रोध से आग बबुला हो अपने फण ऊँचा करके फुफकारे मारने लगा । श्रीकृष्ण नाग के साथ खेलते हुए पैतरा बदलने लगे और साँप भी कृष्ण पर चोट करने का मौका देखता रहा । इस प्रकार पैंतरा बदलते-बदलते साँप का बल क्षीण हो गया । तब भगवान श्रीकृष्ण ने उसके बडे बडे सिरों को तनिक दबा दिया और उछलकर उस पर सवार हो गये । फिर भगवान कृष्ण उसके सिरों पर नृत्य करने लगे । इससे कालिय नाग की जीवन शक्ति क्षीण हो गई और उसके मुँह से खून उगलने लगा । श्रीकृष्ण के अद्भुत ताण्डव नृत्य से कालिय के फण छिन्न-भिन्न हो गये । अन्त में कालिय नाग मन ही मन श्रीकृष्ण के शरण चले गये । फिर साध्वी नाग-पत्नियों ने कृष्ण की स्तुति की और उनके शरण चली गयी और पति को माफ कर देने की प्रार्थना करने लगी ।

सूर ने कालिय दमन लीला की मौलिक कल्पना की है । भागवत की कालियदमन लीला से कंस का कोई संबंध या ही नहीं । लेकिन सूर ने इसे कंस से संबंधित कर दिया है । इसमें नारद कंस से मिलकर कालिय की बात कहते हैं और उससे यमुना में से कमल मँगवाने का अनुरोध करते हैं । कंस नंद के नाम दूत के हाथ पत्र भेजता है । अंतर्यामी कृष्ण यह बात जानकर ग्वालबालों को पहले से ही वन भेज देते हैं । दूत नन्द से मिलकर पत्र देते हैं । फूल लाने केलिए वहाँ कोई ग्वालबाल थे ही नहीं । यशोदा तो कृष्ण को बाहर जाने नहीं देती । कृष्ण के कारण पूछने पर यशोदा उन्हें नन्द के पास भेज देती हैं । नन्द कृष्ण को वन भेजते हैं । वहाँ कृष्ण श्रीदामा के साथ गेंद खेलते हैं । कमल तोडने की इच्छा से कृष्ण श्रीदामा को गेंद खेलने के बहाने यमुना तट पर ले जाते हैं । कृष्ण गेंद चलाते हैं । श्रीदामा अंग बचाता है । गेंद यमुना में गिर जाता है । गेंद निकालने के बहाने यमुना में कूदने के लिए कृष्ण कदंब पर चढ जाते हैं । लड़के ताली देकर हँसते हैं - कृष्ण भाग गये । श्रीदामा शिकायत लेकर यशोदा के पास पहूँचते हैं ।

कृष्ण गेंद निकालने के लिए यमुना में कूदे । जल में कृष्ण की भेंट नाग पत्नी से हुई जिसने कृष्ण की कोमलता पर मुग्ध होकर उन्हें भाग जाने को कहा ।[1] लेकिन कृष्ण ने सर्प को लात मारकर जगाया । कृष्ण को देखकर उसका गर्व बढ़ गया । उसने पूँछ को पृथ्वी से उठाकर झटक कर और क्रोध से फूलकर सिर नीचा करके फूँकार मारी । श्याम ने पूँछ को पैर से दबाए रखा । काली नाग क्रोध से काँप रहा था ।[2] काली नाग ने कृष्ण को लपेट लिया ।[3] श्याम ने अपने शरीर को अत्यंत विस्तृत किया । इससे उसका अंग टूटने लगा । फिर कृष्ण ने नाग को शक्ति हीन कर दिया, नाक छेदकर पकड लिया और उछलकर उसके सिर पर जा चढे ।[4] फिर कृष्ण ने नाग के फणों पर नाच आरंभ किया । जिसे देखकर व्रजवासी, देवगण आदि उसे देखने के लिए आए ।[5] अंत में काली नाग कृष्ण के शरण चला आया ।

सूर की यह लीला भागवत से मेल नहीं खाती । भागवत में गौ और गोप कालीदह के जल पीते ही मर जाते हैं । कृष्ण तो अपनी अमृत दृष्टि से मृत में प्राण फूँक देते हैं । यह बात सूरसागर में नहीं है । भागवत में कृष्ण के कूदते ही कुण्ड में हलचल मच जाती है और सर्प क्रोधित होकर विष उगलने लगता है । सूर सागर में कृष्ण लात मारकर कालिय को जगाते हैं । उसी प्रकार कृष्ण को नाग पत्नी भाग जाने को कहती है जो भागवत में नहीं है । यह बात कहकर सूर ने इस प्रसंग में कोमलता का समावेश करने का प्रयत्न किया है । उसी प्रकार भागवत में सारी लीला जल के ऊपर होती है । ग्वालबाल नन्द यशोदा सब देखते हैं लेकिन सूरसागर में यह सब जल के भीतर होता है ।

---

1. सूरसागर - पद 10/550
2. वही - 10/552
3. वही - 10/555
4. वही - 10/557
5. वही - 10/565

ग्वालबाल और यशोदा सब समझते हैं कि कृष्ण डूब गये । तब कृष्ण काली पर कमल लादे निकलते हैं । भागवत में नाग पत्नियाँ भगवान से प्रार्थना करती हैं लेकिन सूरसागर में केवल काली की ही स्तुति पर भगवान संतुष्ट हो जाते हैं ।

यहाँ सूर ने कृष्ण के लोकरक्षक रूप पर बल दिया है । कृष्ण अपने भक्तों की रक्षा के लिए सब कुछ कर सकते हैं । गर्व करने वाले का गर्व भंग करना भगवान खूब जानते हैं । इस प्रसंग से सूर इस बात पर भी प्रकाश डालते हैं कि जो कोई भी चाहे वह घोर पापी ही क्यों न हो, अगर भगवान के शरण चला जाता है तो भगवान उसे शरण प्रदान करते हैं ।

मीरा ने इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार किया है -

जमुना में कूद पर्यो कनइयो तेरो, जमुना में कूद पर्यो ।
काको काको नीर कालिंद्रि को भरीयो,
नीर तो देखीने ना डर्यो कनइयो ।।
माता जसोदा जी रुदन करे छ ।
नयनु में नीर भर्यो ।।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरिधर ना गुण ।
चरणु में चित्त धर्यो ।।[1]

यहाँ मीरा ने कृष्ण के कालिय दमन लीला का संकेत किया है । कृष्ण का यमुना में कूदना देखकर माता यशोदा की आँखों में आँसू आ गया । मीरा का कहना है कि इस अवस्था में कृष्ण के चरणों का चित्त में ध्यान करना चाहिए । कोई भी माँ अपने बेटे को संकट में अटका देखकर रो उठती है । यशोदा का भी यहाँ यही हाल है । यशोदा के ज़रिए यहाँ मीरा का मातृ हृदय रोता है । मीरा ने इस बात पर भी इशारा किया है कि कृष्ण का सदा ही ध्यान करते रहना चाहिए जो अपने भक्तों को सब संकटों से ऊपर उभारता है ।

---

1. मीरा सुधा सिन्धु - पद 9/207

रसखान ने कालिय दमन लीला को एक कवित्त में व्याख्यान किया है ।

आपनो सो ढोटा हम सब ही को जानत हैं
   दोऊ प्रानी सब ही के काज नित धावहीं ।
ते तौ रसखानि अब दूर ते तमासो देखैं
   तरनितनूजा के निकट नहिं आवहीं ।।
आन दिन बात अनहितुन सों कहौं कहा
   हितू जेऊ आए ते ये लोचन दुरावहीं ।
कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली, पर
   मेरे बनमाली को न काली तें छुड़ावहीं ।।[1]

रसखान ने यहाँ कालिय दमन लीला का विस्तृत रूप से वर्णन न करके संकेत मात्र किया है । रसखान कालिय दमन लीला गोपियों की आँखों से देखते हैं । गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण यमुना में कूद पडे हैं और नंद और यशोदा परेशान होकर दौड फिर रहे हैं । गोपियाँ तो दूर से तमाशा देख रही हैं । वे यमुना के पास नहीं आ रही है । फिर वे आशा करती हैं कि उनके प्राण प्रिय कृष्ण को कालिय नाग जल्दी छोडे ।

यहाँ गोपियाँ कृष्ण की हित कामना के लिए आशा कर रही हैं । जिस प्रकार माता-पिता बच्चों को दुर्घटना-ग्रस्त देखकर परेशान होते हैं उसी प्रकार नंद और यशोदा भी परेशान है । रसखान ने यहाँ नन्द और यशोदा के ज़रिए अपने दिल की परेशानी व्यक्त करने की कोशिश की है ।

बिल्वमंगल स्वामी ने कृष्णकर्णामृत में इस लीला का संकेत मात्र किया है । वे इतना कहकर कि कालिय सर्प का दमन किया था, कृष्ण से रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं ।[2] यहाँ भी सूक्ष्म रूप से कृष्ण की लोकरक्षक वृत्ति की ओर संकेत हुआ है

---

1. रसखानि - 200

2. कृष्णकर्णामृत - 2/3

नारायणीयम् में इस लीला का विस्तृत वर्णन मिलता है । नारायण कवि ने चौवनवें और पचपनवें दशक में इसका वर्णन किया है । नारायण कवि का वर्णन भागवत के वर्णन से मिलता-जुलता है । इसमें कवि कृष्ण के अमृत-तुल्य कटाक्ष द्वारा गोपों के जी उठने पर ज़ोर देते हैं । कवि का कहना है कि कृष्ण भक्तों के मृत्युग्रस्त होने पर भी उन्हें जीवित तथा रोग-शोक रहित कर देते हैं ।[1] इस प्रकार भगवान की भक्त वत्सलता की ओर यहाँ संकेत मिलता है ।

नारायण कवि ने यहाँ कृष्ण के कालिय मर्दन नृत्य को शब्दों द्वारा चित्रमय बनाया है । उनके वर्णन से ऐसे लगता है मानों वह चित्र आँखों के सामने ही घट रहा है । नृत्य के समय लय और ताल द्वारा जो संगीत उत्पन्न होता है, वही संगीत नारायण कवि ने अपने वर्णन द्वारा पैदा किया है ।

अधिरुह्य ततः फणिराजफणान्ननृते भवता मृदुपादरुचा ।
कलशिञ्जित नूपुरमञ्जुमिलत्करकङ्कणसङ्कुलसंक्वणितम् ।।[2]

इस वर्णन के साथ-साथ नारायण कवि कहते हैं कि कृष्ण का यह नृत्य देखकर मुनियों को अत्यंत हर्ष हो रहा है और इन्द्रादि देवता पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं । इससे कवि ने कृष्ण की लोकरंजक लीला की ओर भी संकेत किया है ।

कृष्ण की कालिय दमन लीला में हमें उनके लोकरक्षक और लोकरंजक दोनों रूपों का दर्शन होता है ।

---

1. नारायणीयम् - 54/10
2. वही - 55/9

जयदेव कवि ने अपने गीतगोविन्द काव्य में कालिय नामक सर्प के मदनाशक के रूप में कृष्ण की जयजयाकार की है ।[1]

जयदेव ने कृष्ण को लोकरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है । कृष्ण ने कालिय के मद का नाश किया है । इसलिए उसकी जय हो । यहाँ कवि ने कृष्ण को दुष्कृतों के नाश करनेवाले के रूप में प्रस्तुत किया है ।

अपने श्रीकृष्णविलास काव्य में अत्यन्त नाटकीय ढंग से सुकुमार कवि ने कालिय दमन प्रसंग सविस्तार प्रस्तुत किया है ।

सूर्यपुत्री कालिन्दी कालिय के विष से दूषित हो चुकी थी । इसके कारण वहाँ का आसपास का वातावरण विषैला हो चुका था । एक बार ग्रीष्मकाल के धूप से पीडित होकर गाय और गोपगण कालिन्दी का जल पीकर अचेत हो गये । कृष्ण ने अमृतोपम दृष्टि से उन्हें जीवित किया । कृष्ण कालिय को दंड देने के लिए पास के एक नीप वृक्ष पर चढ़कर सीधे कालिन्दी में कूद पड़े ।[2] जल में हलचल मच जाने से कालिय क्रोधित होकर विष उगलने लगा । फिर कालिय ने कृष्ण को अपने बंधन में जकड़ लिया ।[3] यह देखकर गोप गण आर्तनाद करने लगे ।[4] लेकिन कृष्ण उसके बंधन से मुक्त होकर उसके फणों पर चढ़ गये ।[5] इसके बाद उसका

---

1. कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए ।
   यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे । गीत गोविन्द - 1/2/3
2. श्रीकृष्णविलास - 5/83
3. वही - 5/90
4. वही - 5/92
5. वमद्भिरग्निं नयनैरमर्षात्
   उपेयुषस्तस्य निजोपकण्ठं ।
   नवः पयोवाहमिवाद्रिश्रृंगम्
   तुंगं फणामण्डलमारुरोह ।। श्रीकृष्णविलास - 5/88

दमन करना आरंभ किया ।[1] अपने रत्नजटित आभूषणों से कालिय पर नाचनेवाला कृष्ण ऐसा लग रहा था मानों सूर्यमण्डल में सहस्रभानु विराज रहा हो ।[2] कृष्ण के दमन के कारण कालिय के मुख से रक्त प्रवाह होने लगा । कुछ देर बाद वह क्षीणित होकर गिरने लगा ।[3] कृष्ण के पदाक्षेप से उसकी सद्बुद्धि जाग गयी और वह कृष्ण की स्तुति करने में जुट गया । कृष्ण कालिय की स्तुति सुनकर खुश हुए ।[4] फिर कृष्ण ने कालिय को सपरिवार समुद्र में जाकर निवास करने की आज्ञा दी ।[5]

सुकुमार कवि का कालिय दमन प्रसंग अपने ढंग का अलग है । कवि ने अपनी कल्पना के ज़रिए कृष्ण और कालिय के बीच एक युद्ध की सी स्थिति उत्पन्न की है । कालिय का विष उगलते हुए अट्टहास करना तथा कृष्ण के प्रति उत्तेजित होना इसी स्थिति का परिणाम है । सुकुमार कवि ने कालिय के विष के प्रभाव से आस-पास के पर्यावरण पर क्या असर पडता है तथा चराचर जगत पर इससे क्या होता है, इसका सविस्तार वर्णन किया है । एक और खास बात यह है कि सुकुमार कवि ने लोकरक्षक लीला के रूप में इसे प्रस्तुत किया है जब कि अन्य कवियों ने इसे लोकरंजक लीला के रूप में लिया है । कवि ने कृष्ण के नृत्य और सौन्दर्य पर ध्यान न देकर भक्तों की रक्षा करनेवाली

---

1. पर्यायितस्सन्नतिमुन्नतिंच
   विभ्रान्तिचण्डश्वसितानिलानि ।
   शनैर्दयावान् ध्रुतिसन्निभानि
   निपीडयामास शतश्चिरांसि ।। कृष्णविलास - 5/94
2. स्थितस्स तस्मिन् फणचक्रवाळे
   समुज्ज्वले शोणमणि प्रभाभि: ।
   अधत्तशोभामरविन्दनाभ:
   सहस्र भानोरिवमण्डलस्थित: ।। वही - 5/89
3. वही - 5/95
4. वही - 5/98
5. वही - 5/106

भगवान कृष्ण की वृत्ति पर बल दिया है । उसी प्रकार इस प्रसंग में स्वयं कालिय श्रीकृष्ण की स्तुति करता है जबकि दूसरे कवियों ने नागपत्नियों के ज़रिए कृष्ण की स्तुति करायी है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सुकुमार कवि भगवान कृष्ण के लोकरक्षक स्वभाव की ओर अधिक आकृष्ट रहे हैं ।

वंशी वादन

वंशी वादन प्रसंग कृष्ण साहित्य का एक प्रमुख प्रसंग रहा है । कहते हैं जब कृष्ण मुरली बजाते थे तो सारा विश्व निश्चल हो जाया करता था । भागवत के दशम स्कंध के इक्कीसवें अध्याय में वेणुगीत का प्रतिपादन हुआ है । उसी के आधार पर भक्तिकालीन कृष्ण कवियों ने मुरली वादन का वर्णन प्रस्तुत किया है ।

भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियों में प्रमुख सूरदास ने भी इसका विस्तार से वर्णन किया है । गोप सखाओं के साथ विहार करनेवाले श्रीकृष्ण के वेणुगीत का वर्णन अत्यंत सुन्दर बन गया है । इसे सुनकर गोपियाँ, गाय, बछड़े, पशु, पक्षी सब मोहित होते हैं । यहाँ तक कि शुकदेव तथा सनकादि मुनिगण भी मुग्ध होके ब्रह्म पर तनिक भी ध्यान नहीं लगा पाते ।[1]

जब सूर के श्याम मुरली बजाते हैं तो संसार में क्या क्या होता है, उन्हीं के शब्दों में देखिए -

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी । सुनि सिध समाधि हरी ।।
सुनि थके देव विमान । सुरबधू चित्र समान ।।
ग्रह नखत तजत न रास । बाहन बँधे धुनि पाये ।।
चल थाके अचल टरे । सुनि आनँद उमँग भरे ।।

---

1. सूरसागर - पद 10/620

सुनि बेनु कल्पित गीति । चर अचर गति विपरीत ।।
झरना न झरत पषान । गंधर्ब मोहे गान ।।
सुनि खग मृग मौन धरे । फल तृन की सुधि बिसेर ।।
सुनि धेनु धुनि थकि रहतिं । तृन दंतहू नहिं गहतिं ।।
बछरा न पीवै छीर । पंछी न मन में धीर ।।
बेलि द्रुम चपल भए । सुनि पल्लव प्रगटि नए ।।
सुनि विटप चंचल पात । अति निकट कौं अकुलात ।।
आकुलित पुलकित गात । अनुराग नैन चुचात ।।
सुनि चंचल पौन थक्यौ । सरिता जल चलि न सक्यौ ।
सुनि धुनि चली व्रजनारि । सुत देह गेह बिसारि ।।
अति थकित भयौ समीर । उलट्यौ जु जमुना नीर ।।
मन मोह्यौ मदन गुपाल । तन स्याम नैन बिसाल ।।
नवनील तन घनस्याम । नव पीत पट अभिराम ।।
नव मुकुट नव बन दाम । लावन्य कोटिक काम ।।
मनमोहन रूप धर्‍यौ । तब गरब अनंग हर्‍यौ ।।
श्री मदन मोहन लाल । सँग नागरी व्रज बाल ।।
नव कुंज जमुना कूल । जन सूर देखत फूल ।।[1]

कितना लचीला और मनमोहक चित्रण सूर ने प्रस्तुत किया है । वैसे भक्तिकाल के बहुत सारे कवियों ने वंशी वादन प्रसंग का वर्णन किया है । लेकिन सूर का चित्रण तो अपने ढंग का अलग है ।

तुलसी ने अपनी श्रीकृष्णगीतावली में वंशी वादन प्रसंग को एक पद में वर्णित किया है जो अत्यंत सुन्दर रहा है । वंशीवादन करनेवाले श्रीकृष्ण की मूर्ति को देखकर आकाश में देवगण भी हर्षित होते हैं और पुष्प वर्षा

---

1. सूरसागर - 10/624

करते रहते हैं । गोप बालक एवं गायों के समूह स्नेह से शिथिल होते हैं । व्रज नारियाँ बालक कृष्ण को देखकर रिक्त एवं भरे हुए घटे के साथ ठगी सी खडी रहती है ।

मोरचंदा चारु सिर मंजु गुंजा पुंज धरे बनि बन
धातु तन ओढे पीत पट हैं ।
मुरलीतान तरंग, मोहे कुरंग बिहंग, जोहैं मूरति
त्रिभंग निपट निकट हैं ।।
अंबर अमर हरषत बरषत फूल, स्नेह सिथिल गोप
गाइन्ह ठट है ।
तुलसी प्रभु निहारी जहाँ तहाँ व्रजनारी ठगी ठाढी
मग लिए रीते भरे घट हैं ।।[1]

अत्यंत संक्षिप्त वर्णन होने पर भी तुलसी ने वंशी वादन का प्रभाव दिखानेवाले सुन्दर शब्दावली का प्रयोग यहाँ किया है ।

कृष्ण दिवाने रसखान ने भी वंशी वादन का प्रसंग अपने ढंग से प्रस्तुत किया है । उनका कहना है कि वंशी वादन सुनके गोप-कुमारियाँ तन मन खो बैठी है ~~।~~ अपनी सुध बुध ~~खो~~ बैठी है । उनका वर्णन देखिए -

बजी है बजी रसखानि बजी सुनिके अब गोपकुमारी न जी है ।
न जी है कोउ जो कदाचित कामिनी कानि में वाकी जु तान कू पी है ।।
कु पी है बिदेस सँदेस न पावति मेरी व देह को मैन सजी है ।
सजी है तो मेरो कहा बस है सु तौ बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी है ।।[2]

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 20
2. रसखान रचनावली - 53

रसखान का वंशी वादन का चित्रण अपनी मौलिकता लिए हुए हैं। शब्दों के प्रयोग से बाँसुरी वादन का यहाँ उन्होंने असर दिखाया है।

भक्त कवि मीरा ने भी वंशी वादन का लुभावना चित्र प्रस्तुत किया है। मीरा कहती है कि मुरली की ध्वनि सुनकर गोपियाँ कृष्ण दर्शन की आतुरता में अधीर होकर अपना श्रृंगार उलट पलट कर पहनती है। बेसर हाथ में पहनती है तो मुनडी नाक में। करणफूल पहनना तो भूल ही जाती हैं। साडी हाथ में लिपटती है और लहंगा गले में। खाना बनाते समय उसे बनाने की सामग्री का अव्यवस्थित उपयोग करती हैं। शीघ्रता में बालक और बछडे का भेद तक भूल जाती हैं। कृष्ण की मुरली ध्वनि सुनकर गोपियाँ सुध बुध भूल जाती हैं। मीरा भी अपने गिरिधर नागर के चरण कमलों को सदा ही लपेटती रहती हैं।[1]

यहाँ कृष्ण की मुरली सुनकर गोपियों का जो हाल होता है उसका जीता जागता वर्णन प्रस्तुत किया है। वंशी वादन सुनकर वे किसी भी तरह कृष्ण के पास पहुँचना चाहती हैं। शीघ्रता वश वे नहीं जानती कि वे क्या कर रही है। उनका मन तो पूरा का पूरा कृष्ण के पास चला गया बस तन घर में रह गया। वे तो यंत्र चालित-सी होकर किसी तरह घर का काम खतम करके कृष्ण के पास पहुँचने की धुन में हैं।

मीरा तो कृष्ण को अपना प्रभु मानती है। वह कृष्ण पर अपना सब कुछ न्योछावर करती हैं। उनके गिरिधर नागर की मुरली की धुन सुनकर ही गोपियाँ सुध बुध खो बैठी थी। वे भी इसी कृष्ण को पूजती है और उन्हीं के चरण कमलों पर अपना जीवन समर्पित करती है।

---

1. मीरा सुधा सिन्धु - 15/23 - पृ. 966

मीरा के इस वर्णन पर सूरदास का असर देखा जाता है। सूर और मीरा का मुरली वादन का एक पद हू-ब-हू मिलता जुलता है -

नैना निपट बिकट छवि अँटके
टेढ़ी कटि, टेढ़ी कर-मुरली, टेढ़ी पाग लट लटके
देखि रूप रस सोभा रीझे, घेरे घिरत न घटके।
पारत वचन कमल दल लोचन, लाल के मोदनि अटके।
मंद मंद मुसकात सखनि में, रहत न काहू हटके।
सूरदास प्रभु रूप लुभाने, ये गुन नागर नटके ।।[1]

मीरा का पद है -

निपट बंकट छबि अटके मेरे नैन निपट। टेक।
देखत रूप मदन मोहन को पियत पियूख न मटके।
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो अलि सुगंध रस अंटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी करि मुरली, टेढ़ी पाग कर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी, गिरिधर नागर नटके।[2]

देखिए दोनों पदों में कितना साम्य हैं। लगता है सूर का अमिट प्रभाव मीरा पर पड़ा हो और इसीसे प्रेरित होकर मीरा ने यह पद रचा हो।

बिल्वमंगल स्वामी ने भी अपने ढंग वेणुगीत का प्रसंग रचा है। उन्होंने इसका वर्णन यों किया है -

चारुचामीकराभासभाभाविभु-
वैजयन्तीलतावासितोर: स्थल:।
नन्दवृन्दावने वासितामध्यग:
सम्जुगौ वेणुना देवकी नन्दन: ।।[3]

---

1. सूरसागर - दशमस्कंध - पद 2322
2. मीरा पदावली - पद 7
3. कृष्णकर्णामृत - 2/41

श्रीकृष्ण गोपियों के बीच शुद्ध सुवर्ण की तरह चमक रहे थे । उनकी छाती पर वैजयन्तिमाला महक रही थी । कृष्ण नन्द के उद्यान में अपने साथियों के साथ खडा था । ऐसे कृष्ण ने बंशी बजाई ।

यहाँ बिल्वमंगल स्वामी ने शब्दों के प्रयोग से मुरली वादन का चमत्कार उत्पन्न करने की कोशिश की है । मुरली बजाते समय श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन भी किया है ।

नारायणीयम् में वंशी वादन का प्रसंग उनसठवें अध्याय में आता है । इसमें कृष्ण किस प्रकार वंशी बजाते थे, वंशी बजाते समय वे कैसे खडे होते थे, कृष्ण के वेणुगीत का असर पशुपक्षियों और चराचर पर किस प्रकार पड़ता था आदि का वर्णन मिलता है ।

कानननान्तमितवान् भवानपि स्निग्धपादपतले मनोरमे ।
व्यत्ययाकलित पादमास्थितः प्रत्यपूरयत वेणुनालिकाम् ।।
मारबाण धुतखेचरीकुलं निर्विकारपशुपक्षिमण्डलम् ।
द्रावणं च दृषदामपि प्रभो तावकं व्यजनि वेणुकूजितम् ।।
वेणुरन्ध्रतरलाङ्गुलीदलं तालसञ्चलितपादपल्लवम् ।
तत्स्थितं तव परोक्षमप्यहो संविचिन्त्य मुमुहुर्व्रजाङ्गनाः ।।[1]

कृष्ण घनीछायावाले मनोरम वृक्ष के नीचे बायें पैर को दायें और दायें पैर को बायें करके खडे हो वंशी बजाते थे । जिसे सुनकर देवाङ्गनाएँ प्रेमबाण से आहत हो जाती थी । कृष्ण के वेणु गीत सुनकर पशु-पक्षियाँ निर्विकार हो जाती थी तथा इसे सुनकर पत्थर तक पिघल जाता था । गोपाङ्गनाएँ तो इसका मन ही मन स्मरण करके ही मोहित हो जाती थी ।

---

1. नारायणीयम् - 59/4,5,6

यहाँ कृष्ण के वेणुरव का असर किस किस प्रकार किस किस पर पडता है, यह दिखाने की कोशिश की गयी है । साथ ही इस वेणुगीत के चमत्कारी प्रभाव को भी दर्शाया गया है । वेणुगीत सुनकर पशु-पक्षि "स्थिर" हो जाते हैं तथा पत्थर "पिघल" जाता है । यह कृष्ण के अलौकिक प्रभाव का असर है । यहाँ कवि ने कृष्ण के ईश्वरत्व पर बल दिया है जो पत्थर को भी पिघला सकता है ।

संस्कृत और हिन्दी के ऊपर प्रस्तुत कवियों के वंशी वादन प्रसंग का एक दूसरे पर प्रभाव देखा जाता है । सबों की गोपियाँ सुध-बुध खो बैठती हैं । यहाँ तक कि वंशी वादन का प्रभाव चराचर जगत पर भी पडता है । इस प्रसंग में कृष्ण के अलौकिक रूप-सौंदर्य ने सब के मन को छुआ है । फर्क सिर्फ इतना है कि संस्कृत के कवियों ने कृष्ण के "ईश्वरत्व" पर बल दिया है तो हिन्दी के कवियों ने कृष्ण के "मनुष्यत्व" पर बल दिया है ।

सुकुमार कवि ने श्रीकृष्ण के वेणुगान का सजीव चित्रण अपने श्रीकृष्णविलास काव्य में किया है । इसका विस्तृत वर्णन करके सुकुमार कवि ने पाठकों का मन मोह लिया है ।

सुकुमार कवि कहते हैं कि कृष्ण त्रिभंगी आकृति में खडे रह कर मुरली बजाते थे । उनकी मुरली की ध्वनि समस्त जगत को मोहित करने वाली थी ।[1] कृष्ण का वेणुगान समस्त जीवजालों को आनन्द प्रदान करनेवाला था । परस्पर वैर रखनेवाले भी कृष्ण का मुरली गान सुनकर अपना वैर भूल जाते थे ।[2] कृष्ण का मुरली वादन सुनकर वन के जीव-जन्तु मूर्छित होकर गिर पडते थे ।

---

1. तत्रस्त्रिभङ्गया विवरेषु वेणोः
   व्यापारयन्नङ्गुलिपल्लवानि ।
   जगत्त्रयीमोहविधानदक्षं
   उत्थापयामास स नादमुच्चैः ।। श्रीकृष्णविलास - 4/56
2. वही - 4/58

वे अपना-अपना कर्तव्य भूलकर वेणुगान सुनकर चित्र में चित्रित से खडे रहते थे ।[1] उसी प्रकार ज़रा से पीडित वृक्ष तथा लताएँ श्रीकृष्ण का वेणु गीत सुनकर नव पल्लवित और सजीव हो जाते थे ।[2] सिद्ध तथा विद्याधर भी श्रीकृष्ण के वेणुगान की माधुरी से अछूते न रह सके । इस प्रकार श्रीकृष्ण ने समस्त जीव-जाल को अपने वेणुगान से परमानन्द प्रदान किया । देव तथा अमर भी श्रीकृष्ण के वेणुगान से प्रभावित हुए ।[3]

यहाँ सुकुमार कवि ने श्रीकृष्ण के वेणु गान से चराचर जगत पर पडनेवाले प्रभाव का सविस्तार वर्णन किया है । कवि ने मनुष्यों पर ही नहीं जीव, जन्तु, लता, पेड आदि पर भी इस मुरली ध्वनि का असर दिखाकर अपनी अद्भुत काल्पनिकता का परिचय दिया है ।

गोपी प्रेम

कहते हैं प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है । वाणी जिसका निर्वचन नहीं कर सकती, बुद्धि जिसका आकलन नहीं कर सकती, उसका वर्णन असंभव है । प्रेम केवल मन की चीज़ है और मन के ही द्वारा अनुभूत होती है । सबसे अचरज की बात यह है कि प्रेम का अनुभव करनेवाला अपने आप को विस्मृत कर देता है ।

श्रीकृष्ण की सुन्दरता अद्वितीय है । उनके रूप माधुर्य का पान कर व्यक्ति आनन्दसागर में लहराने लगता है । भगवान कृष्ण का दर्शन

---

1. श्रीकृष्णविलास - 4/59
2. वही - 4/64
3. स्ववेणुनादेन सजीवलोकं
   इत्थं परानन्दमयं विधाय ।
   प्रभुर्व्यरंसीदमराश्च सर्वे
   सुप्तोत्थितानां स्थितिमन्व भूवन् ।। श्रीकृष्णविलास - 4/66

पाकर, उनके रूप सौंदर्य का स्मरण करके व्यक्ति आनन्दाप्लावित होने लगता है । कृष्ण के अतिरिक्त किसी तत्व को वह जानता ही नहीं । वह ध्यान करते हुए कहने लगता है -"जिसके हाथ में वंशी सुशोभित है जो नव-नील-नीरद-सुन्दर है, पीताम्बर पहने है, जिसके होंठ बिम्ब फल के समान लाल-लाल हैं, जिसका मुखमण्डल पूर्ण चन्द्र के सदृश और जिसके नेत्र कमलवत् हैं, उस श्रीकृष्ण से परे कोई तत्व हो तो मैं उसे नहीं जानता ।"[1]

गोपियाँ भी श्रीकृष्ण प्रेम में इतनी डूबी हुई है कि कृष्ण के सिवा वे किसी और तत्व को जानती ही नहीं । गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम एकाएक उत्पन्न नहीं हुआ । शनैः शनैः हुआ है । कृष्ण के जन्म से लेकर उत्पन्न उनका प्रेम उत्तरोत्तर, दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा था । सूरदास ने इस बात का वर्णन अच्छी तरह से किया है । हरिमुख के सौंदर्य के बारे में गोपियों का कहना तो देखिए -

> हरिमुख किधौं मोहिनी माई ।
> बोलत बचन मंत्र सी लागत गतिमति जात भुलाई ।।
> सूर स्याम जुवती मन मोहत ये सँग करत सहाई ।।[2]

देखिए कितना सुन्दर वर्णन है । कृष्ण सौंदर्य को निरन्तर देखने पर भी उनकी उसे देखने की लालसा बढ़ती ही जाती थी । और एक स्थान पर वे कहती हैं -

---

1. वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
   पीताम्बरादरुणबिम्बफला धरोष्ठात् ।
   पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
   कृष्णात् परं किमपि तत्वमहं न जाने ।।
   मधुसूदन सरस्वती - गीताटीका अ. 15 के आरंभ में ।
2. सूरपंचरत्न तीसरा रत्न - पद 5

सुन्दर मुख की बलि बलि जाऊँ ।
लावननिधि गुणनिधि सोभानिधि निरखि निरखि सब गाऊँ ।।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावैं ठाऊँ ।।
तापै मृदु मुसकानि मनोहर न्याय कहत कवि मोहन नाऊँ ।।
नैन सैन दै दै जब हेरत तापै हौं बिन मोल बिकाऊँ ।।
सूरदास प्रभु मन मोहन छबि यह शोभा उपमा नहिं पाऊँ ।।[1]

परमात्मा का सौन्दर्यालोकन करने के लिए आत्म-समर्पण की आवश्यकता है । तब ही सच्चे सौंदर्य का ज्ञान हो सकता है । यह सौंदर्य मानस पटल पर प्रकाशित होता है । भगवान के दिव्य ज्योति का ज्यों ज्यों ध्यान किया जाता है, त्यों-त्यों उसका स्वरूप अधिक सौंदर्यपूर्ण होता रहता है । गोपियाँ कृष्ण सौंदर्य निहारकर अपने को "बिना मोल" कृष्ण को बेचने के लिए तैयार होती हैं । यह उनके सच्चे प्रेम का प्रतीक है । उनके कृष्ण के रूप सौंदर्य की उपमा किसी और के साथ हो ही नहीं सकती । सूर ने यहाँ गोपी प्रेम तथा कृष्ण के सौंदर्य पर प्रकाश डाला है ।

मीरा ने गोपी प्रेम का सविस्तार वर्णन न करके संकेत मात्र किया है । मीरा कहती है कि गोपियों ने कृष्ण प्रेम में अपना सब कुछ छोड दिया ।

पुत्र छोड पति छोड प्रीत आप से लगाई ।
सासु नणंद त्याग नेह आप से लगाई ।।[2]

गोपियों ने पुत्र,पति, सासु, ननंद आदि को त्याग कर केवल कृष्ण से प्रेम संबंध स्थापित किया । अपने सांसारिक सुखों को त्याग कर

---

1. सूरपंचरत्न तीसरा रत्न - पद 6
2. मीरा सुधा सिंधु - मुरली के पद 24/1

वे भगवान को भजने लगीं । यहाँ से इस बात का पता चलता है कि [illegible]
ने कृष्ण को कितना चाहा है । मीरा स्वयं गोपी भाव से [illegible]
गोपिकाओं के ज़रिए वे अपनी ही बात कर रही है ।

यही भाव गोस्वामी तुलसीदास ने भी गोपी-प्रेम के में अपनी कृष्णगीतावली में व्यक्त किया है । तुलसीदास का कहना है गोपियों ने श्रीकृष्ण के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया ।

भजीं तात सुत तनय बिसारी ।[1]

यहाँ तुलसी ने मीरा पर अपना प्रभाव डाला है ।

रसखान ने सविस्तार अपनी रचना में गोपी प्रेम का [illegible] किया है । रसखान की गोपियाँ कृष्ण की सुन्दरता पर मुग्ध होती हैं । कृष्ण के लिए वे सब कुछ भूल जाती है ।

मोहन सों अटक्यौ मन री कल जाते परै सोई क्यों न बतावै ।
व्याकुलता निरखे बिन मूरति भागति भूख न भूषण भावै ।
देखे ते नेकु सम्हार रहै न तबै झुकि कै लखि लोग लजावै ।
चैन नहीं रसखानि दुहूँ बिधि भूली सबै न कछू बनि आवै ।।[2]

यहाँ रसखान ने गोपियों का मन कृष्ण पर लग जाने से गोपियों पर क्या बीतता है इसका मार्मिक वर्णन किया है । कृष्ण को देखे बिना तो उनकी हालत शोचनीय हो जाती है । व्याकुलता के कारण भूख लगती नहीं न उन्हें आभूषण भाते हैं । कृष्ण को देखे बिना उन्हें चैन ही नहीं मिलता । वे सर-फिरी सी रहती है । उन्हें क्या करना है और क्या नहीं करना इस बात का भी पता नहीं है ।

---

1. श्रीकृष्णगीतावली पद - 22

2. रसखानि - 136

गोपियों को इस अवस्था का कारण उनका कृष्ण-प्रेम है । अपने प्रिय को देखे बिना वे अध-मरी सी हो जाती हैं ।

नारायण कवि ने अपने नारायणीयम् में कृष्ण सौन्दर्य और गोपियों के प्रेम का उल्लेख किया है । उनका कहना है कि कृष्ण के श्रीअङ्ग नये केरावके समान कोमल, प्रेमपूरक तथा सबके मन को मोहनेवाले हैं । वह ब्रह्मतत्व से भी उत्कृष्ट एवं चिदानन्दमय है । उसका दर्शन करके व्रजाङ्गनाएँ प्रतिदिन मोहित रहती थीं । गोपियों के मन को तो कृष्ण के प्रति उत्पन्न अतिशय प्रीति ने मथ डाला था ।[1] मतलब कि कृष्ण की अतिशय सौन्दर्य देखकर गोपिकाओं के मन में नित नूतन प्रेम उमड़ता था और प्रति दिन वह बढ़ता ही जाता था ।

देखिए कितना सरल, भावपूर्ण तथा सुन्दर वर्णन है । गोपियों के इस कथन के ज़रिए नारायण कवि ने कृष्ण के रूप सौंदर्य तथा गोपियों के उनके प्रति अगाढ़ प्रेम को व्यक्त किया है ।

गीत गोविन्द में कृष्ण और गोपियों का संकेत मात्र देते हुए कवि कहते हैं कि कृष्ण अत्यंत रमणीय वसंत ऋतु में गोपियों के साथ रमण करते हैं । प्रथम सर्ग में आठ श्लोकों के द्वारा इसका वर्णन किया गया है ।[2] जयदेव कवि ने इस अष्टपदी में गोपियों और कृष्ण के विविध प्रकार की लीलाओं का उल्लेख करते हुए कृष्ण-गोपी प्रेम को अस्पष्ट रूप से स्वीकार किया है ।

---

1. त्वद्वपुर्नवकलायकोमलं प्रेमदोहनमशेषमोहनम् ।
   ब्रह्मतत्व परचिन्मुदात्मकं वीक्ष्य सम्मुमुहुरन्वहं स्त्रियः ।।
   मन्मथोन्मथितमानसाः क्रमात्त्वद्विलोकनरतास्ततस्ततः ।।
   नारायणीयम् दशक - 59 श्लोक 1-2
2. गीत गोविन्द - 1/3/1-8

हिन्दी तथा संस्कृत कवियों ने गोपी-प्रेम का प्रसंग अपनी अपनी इच्छा के अनुसार वर्णित किया है । संस्कृत कवियों ने इस बात पर ज़ोर डाला है कि कृष्ण से गोपियाँ प्रेम करती थी और वे अत्यंत आनन्दमग्न होती थीं । हिन्दी के कवियों ने भी इस का वर्णन किया है । हिन्दी कवियों ने इस बात का वर्णन भी किया है कि कृष्ण के बिना गोपियों की क्या हालत होती है और उनके दिलोदिमाग पर क्या बीतता है ।

राधाकृष्ण मिलन

राधा को कृष्ण काव्य का केन्द्र बिन्दु माना गया है । निम्बार्क, गौडीय, राधावल्लभीय, हरिदासी आदि संप्रदायों में राधा का स्थान सर्वोपरि है । भागवत को छोडकर अन्य पुराणों में राधा का उल्लेख मिलता है । ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा को कृष्ण की प्रकृति कहकर कृष्ण और राधा दोनों की लीलाओं का गान किया गया है ।

सूरदास ने भी राधा कृष्ण की लीलाओं का गान अपने सूरसागर में किया है । सूर के अनुसार राधा कृष्ण की प्राणप्रिया है । राधा और कृष्ण किस प्रकार मिले इसका सुन्दर वर्णन सूरदास ने प्रस्तुत किया है । एक बार कृष्ण खेलते खेलते व्रज की गलियों से निकलकर यमुना तट पर गये । वहाँ कृष्ण की मुलाकात एक सुन्दर लडकी से हुई जिसके विशाल नेत्र थे । कृष्ण उसे देखते ही रीझ गये ।[1] फिर श्याम ने उस सुन्दर लडकी से पूछा-

बूझत श्याम कौन तू गोरी ।
कहाँ रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहूँ व्रज खोरी ।।[2]

---

1. सूरसागर - पद 10/672

2. वही - 10/673

कृष्ण ने बातों बातों में राधा को अपने वश में कर लिया । फिर दोनों ने मन ही मन एक दूसरे को पसंद किया । उन्होंने आँखों ही आँखों में सारी बात कर ली और गुप्त प्रेम को प्रकट कर लिया ।[1] उन दोनों का प्रेम दिन-प्रति-दिन बढ़ता गया और दोनों विविध प्रकार की लीलाओं में जुट गये

सूर के इस राधा कृष्ण मिलन प्रसंग में स्वाभाविकता दीख पड़ती है । "प्रथम दृष्टि में प्यार" जिसे कहते हैं वही यहाँ दिखाया गया है । राधा और कृष्ण अचानक मिलते हैं । मिलते ही दोनों में प्रेम उमड़ आता है । कृष्ण चतुर नायक की तरह राधा को अपनी मीठी मीठी बातों में फँसा लेता है । सूर कहते हैं कि दोनों ने एक दूसरे के प्रति अपने गुप्त प्रेम को प्रकट किया । इससे यह संकेत मिलता है कि दोनों एक दूसरे को पहले से ही जानते हैं तथा एक दूसरे से प्रेम करते हैं । सूर ने संकेत रूप से यह दिखाने की कोशिश की है कि कृष्ण परमेश्वर है तथा राधा उनकी पराप्रकृति । वे दो होकर भी एक ही है ।

आगे चलकर सूर ने राधा और कृष्ण की विविध लीलाओं का सविस्तार वर्णन किया है ।

। गीत गोविन्द में राधा और कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन मिलता है । जयदेव कवि ने राधा और कृष्ण के मिलन प्रसंग को इस प्रकार व्यक्त किया है - एक बार राधा और कृष्ण अपने सखा-सखियों के साथ किसी उपवन में विहार कर रहे थे । जब सन्ध्या हुई तो नन्द बाबा ने राधा को बुलाकर कृष्ण को घर तक पहुँचाने को कहा । राधा नन्द बाबा के कहे अनुसार कृष्ण की पथप्रदर्शिका बनकर उन्हें गृह पहुँचाने चली । मार्ग में यमुना तट की रमणीय प्रकृति की सुन्दरता में दोनों खो गए और

---

1. सूरसागर - पद 10/674

विविध प्रकार की लीलाएँ करने में जुट गये ।[1]

गीत गोविन्द काव्य में कृष्ण और राधा की लीलाओं का ही प्रसंग है । कृष्ण और राधा एक दूसरे को बहुत चाहते थे । राधा एक सखि से कहती है कि मधुर ध्वनि से परिपूरित तथा अधरामृत से भी बढ़कर ललित और सर्वलोक को मोहनेवाली वंशी के वादक, कटाक्ष करनेवाले, वंशी बजाते समय चंचल मुकुट तथा किरीट को धारण करनेवाले, विलासी एवं मेरे साथ हास-परिहास करनेवाले श्रीकृष्ण को मेरा हृदय चाहता है ।[2]

जयदेव जी ने इस काव्य में राधा-कृष्ण की प्रेम कथा का भव्य वर्णन किया है । राधा और कृष्ण एक दूसरे को कितना चाहते है यह हमें गीत गोविन्द का पाठ करने से मालूम होता है ।

---

1. मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे । गृहं प्रापय ।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ।।
गीतगोविन्द - प्रथम सर्ग : । श्लोक

2. सञ्चर धर सुधामधुरध्वनि मुखरित मोहनवंशम्
चलितदृगञ्चलचञ्चल मौलिकपोल विलोल वतंसम् ।
रासे हरिमिह विहितविलासम्
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ।।
गीतगोविन्द - द्वितीय सर्ग - ।

श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाएँ

विराट विश्व पुरुषोत्तम का रूप है । इसमें जो क्रिया-प्रक्रिया होती है, उसे लीला कहते हैं । पुरुषोत्तम भगवान के दिव्य कर्म और गुणों द्वारा लीला का प्रदर्शन होता है । भगवल्लीलाएँ माधुर्य और ऐश्वर्य - इन दो भागों में बाँटी जा सकती है । कृष्ण की माधुर्य लीला ब्रज में तथा ऐश्वर्य लीला द्वारका में होती है । माधुर्य लीला के अंतर्गत बाल लीला, पैगण्ड-लीला तथा किशोर लीला आती है । बाल लीला का स्थान गोकुल रहा है । पौगण्ड लीला वृन्दावन, गोवर्धन, नन्दगाँव, बरसाना और कामवनादि में की है तो किशोर लीला वृन्दावन और मथुरा-पुरी में । वे भगवलीलाएँ आन्तर्य और बाह्य विभागों में बांटी जा सकती है । गोचारण बाह्य लीला है । अन्तरंग लीला निकुंजों में करते हैं ।

गोचारण लीला

यह प्रसंग भागवत दशम स्कंध के पन्द्रहवें अध्याय में आता है ।[1] जब कृष्ण छः साल के हो गये तो गाय चराने के लिए निकलने लगे । कृष्ण के श्रीअंगों से एक अभिनव सौंदर्य झरता था । बड़े भाई राम और सखाओं के साथ गायें चराते हुए वृन्दावन में घूमते रहते थे । वृन्दावन की भूमि तो उनके चरणकमलों का स्पर्श पाकर धन्य हो रही थी । प्रतिदिन यशोदा अपने वात्सल्यपूर्ण हृदय का समस्त प्यार लुटाकर कृष्ण का श्रृंगार करती, उन्हें विविध प्रकार के मिष्टान्नों का कलेवा करातीं, कुछ छींकों में भर देतीं और फिर गायें चराने के लिए भेज देती थीं । कृष्ण वन में सखाओं के साथ विविध क्रीडाएँ करते थे । कभी मदमत्त मधुकरों का अनुकरण करते हुए गाते, कभी

---

1. ततश्च पौगण्डवय: श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभि: समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतु: ।।
भागवत् - 10/15/1

कल हंसों का कमनीय कूजन सुनकर उसी तरह ध्वनि करते, कभी मयूरों का नाच देखकर उसी तरह नाचते । इधर कृष्ण तो इन विविध लीलाओं में मस्त रहते उधर गायें चरती हुई वन में दूर चली जातीं । तब खेल छोड़कर कृष्ण और बलराम सखाओं को बुलाते, गायों का नाम लेकर बुलाते तथा अपना पीताम्बर फहरा कर गायों को अपने निकट आने को इंगित करते थे । सूरदास ने इसका सुन्दर वर्णन यों दिया है -

टेरत ऊँची टेर गुपाल ।
दूर जात गैया, भैया हो । सब मिल घेरो ग्वाल ।।
लै लै नाम घुमरी धौरी मुरली मधुर रसाल ।।
चढ़ि कदंब चहूँ दिसि ते हेरत अंबुज नयन बिसाल ।।
सुनत सब्द सुरभी समुहानी उलट पिछोंडी चाल ।।
चत्रभुज प्रभु पीतांबर फेरयो गोबर्धन धर लाल ।।[1]

इस प्रसंग में सूर के सख्य भाव का प्रभाव देखा जाता है । सख्य भाव के चित्रण में सूर ने अद्भुत काव्य शक्ति का प्रदर्शन किया है । इसके अन्तर्गत कई भावों की व्यंजना देखी जा सकती है । गोचरण के समय कृष्ण गोपों के अत्यधिक निकट हैं । बड़ा ही मुक्त जीवन है । गोचरण का अधिकांश समय हँस परिहास में व्यतीत होता है । इस प्रकार कृष्ण और गोपबालक एक दूसरे के अत्यंत निकट आ जाते हैं ।

ये लीलाएँ मुख्यतया सख्यपरक प्रेम से परिपूर्ण है । इस प्रसंग की विषयवस्तु मार्मिक है । जंगल में छाक के समय सखाओं के प्रति प्रेम के मनोरम चित्र बहुत सुन्दर बन गया है । सखाओं के सरस स्नेह की भाव-संबलित व्यंजना इसमें देखी जाती है । कृष्ण की सामान्य बालकों की तरह चपल क्रीडाएँ मनमोहक हैं ।

---

1. सूरसागर - पद 10/1150

गौ चारण में सखा भाव में प्रगाढ़ता आ जाती है तथा इसमें सख्य भाव का सुन्दर रसोद्रेक मिलता है । कृष्ण गौ को वश में करनेवाले हैं । गौ यानि इन्द्रियाँ । सूर ने इस प्रसंग के ज़रिए इन्द्रियों को वश में रखने का सूक्ष्म संकेत भी दिया है ।

तुलसी ने अपनी कृष्णगीतावली में छाक लीला का प्रसंग अत्यंत मनोहारिता से निखारा है । कृष्ण सखाओं के साथ गो-चराने के लिए गोवर्धन पर्वत पर जाते हैं । दुपहर का वक्त हो गया । लेकिन छाक अभी तक नहीं आयी । इतने पर कृष्ण पर्वत पर चढ़कर गायों को पुकारने लगे । बाँसुरी की आवाज़ सुनकर गायें दौड़ कर आयी । फिर देखा तो घर से छाक आ रही है । सब गोपगण कृष्ण के साथ मिलकर भोजन करने लगे ।[1]

तुलसी का यह वर्णन तो अत्यंत निराला है । तुलसी ने तो यहाँ बालकों की क्रीडा का चित्रमय चित्रण किया है ।

---

1. टेरी कान्ह गोवर्द्धन चढ़ि गैया ।
   मथि मथि पियो बारि चारिक में भूख न जाति अघाति न धैया ।
   सैल सिखर चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यो बल भैया ।
   बाँधि लकुट पर फेरि बोलाई सुनि कल नेनु धेनु धुकि धैया ।
   बलदाऊ देखियत दूरि ते आवति छाक पठाई मेरी मैया ।
   किलकि सखा सब बचत मोर ज्यों, कूदत कपि कुरंग की नैया ।
   खेलत खात परस्पर डहकत, छीनत कहत करत रोग दैया ।
   तुलसी बालकेलि सुख निरखत बरषत सुमन सहित सुरसैया ।।
   कृष्ण गीतावली - पद 19

सख्य में समानता का, मित्रता का विशिष्ट स्थान है, अपना अलग आनन्द है । मित्रों के साथ भोजन और फिर उनकी जूठन खाने में जो महानन्द आता है वह षट्रस व्यंजन के संवाद में नहीं आ सकता । सखाओं के साथ बैठकर छाक ग्रहण करना कृष्ण के लिए महान कार्य है ।

भक्त कवि रसखान ने भी कृष्ण की गोचारण लीला का वर्णन किया है । वे कहते हैं कि कृष्ण जब लकुटि और कंबल लेकर गायें चराने जाते है तो उन पर आठों सिद्धियों और नवों निधियों का सुख न्योछावर किया जा सकता है । वह दृश्य इतना मनमोहक है कि उसे देखकर सब कुछ भुला जा सकता है ।[1]

रसखान ने यहाँ एक गोपाल की सच्ची वेशभूषा का चित्र खींचा है । सुन्दर कृष्ण जब एक लकुटि हाथ में उठाते है तथा कंबल ओढते है तो उनकी सुन्दरता और भी निखर उठती है ।

मीराबाई ने गो चारण लीला का उल्लेख मात्र किया है । मीरा का कहना है -

आवत श्री गिरिधारी, गोचारी आवत श्री गिरिधारी
खांधे कामळीया हाथ लकुटियां, बेनु बजावे मनहारी ।
मात जशोदा करत आरती, पुनी पुनी जात बलहारी ।।
मोर मुकुट पीतांबर सोहे, कुंडल मीनाकारी ।।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पर वारो ।।[2]

---

1. या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं
आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं
कोटिन ए कल धौतके धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं,
रसखानि सदा इन नैनन सों ब्रज के बन बाग तडाग निहारौं ।।
रसखानि - 3
2. मीरा सुधा सिन्धु - व्रजभाव के पद - 295

यहाँ मीरा ने वन से गोचारण के बाद लौटते हुए कृष्ण का वर्णन किया है । कृष्ण के कंधों पर कंबल है और हाथ में लकुटि । वे मुरली बजाकर आते हैं । आते ही यशोदा मैया आरती उतारकर उनका स्वागत करती है । कृष्ण मोर पंखोंवाला मुकुट, पीतांबर तथा मकराकृति कुंडल पहने हुए हैं । ऐसे श्रीकृष्ण पर मीरा न्योछावर हो जाती है ।

मीरा ने यहाँ श्रीकृष्ण को ग्वाल बाल की वेशभूषा में चित्रित किया है । कृष्ण का साज-श्रृंगार भी ग्वाल बालों जैसा ही है । मीरा और रसखान का चित्रण एक दूसरे से मिलता जुलता है ।

सुकुमार कवि की गोचारण लीला अपने ढंग की अलग है । सुकुमार कवि का कहना है कि कृष्ण अपने माखन चोरी का अपवाद दूर करने के लिए गोचारण करता है ।[1] कहते हैं कि गौ का पालन करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।[2]

सुकुमार कवि का कहना है कि कृष्ण बड़े ही उत्साह से गौ चारण के लिए वन चले जाते थे । वे प्रातःकाल माता और पिता से आज्ञा लेकर बलराम और ग्वालबालों के साथ जाते थे । कृष्ण गौ चारण के लिए जाते समय अपने साथ एक लकुटिया और श्रृंग लेके जाते थे । वे श्रृंग से आवाज़ निकालकर गौवों को बुलाया करते थे ।[3] यमुना के किनारे अपने गोप सखाओं के साथ विविध तरह के खेल खेलकर शाम को घर लौटते थे । वन से आते हुए कृष्ण को वृन्दावन के लोग आरती उतारकर स्वीकार किया करते थे ।

---

1. श्रीकृष्णविलास - चतुर्थ सर्ग -2
2. गवां शुश्रूषणात् पापं सर्वमपि विनश्यति ।। श्रीकृष्णविलास - पृ. 117
3. श्रीकृष्णविलास - 4/5, 6

सुकुमार कवि ने अत्यंत सजीव ढंग से इस लीला का वर्णन किया है । उनका यह चित्रण अत्यंत स्वाभाविक बन गया है । कृष्ण माता और पिता से कहकर, उनकी आज्ञा लेकर वन जाते हैं । उसी प्रकार वन जाते समय एक लकुटिया और श्रृंग लेके जाते हैं । सुकुमार कवि ने कृष्ण वन जाकर कैसे सखाओं के साथ खेलते हैं इसका भी सविस्तार वर्णन किया है । कृष्ण के घर लौटते ही यशोदा तथा वृन्दावन के लोग आरती उतारकर कृष्ण को स्वीकार करते थे । यही भाव मीरा ने भी अपने काव्य में व्यक्त किया है ।

गोचारण लीला का वर्णन विस्तृत ढंग से सुकुमार कवि ने किया है । संस्कृत के अन्य कवियों ने या तो इसे चलते ढंग से प्रस्तुत किया है या किया ही नहीं । इस कारण से भी इनका यह योगदान विशिष्ट माना जा सकता है ।

मनुष्यों की विषयासक्ति और तज्जनित काम भावना का सबसे अधिक तीव्र और घनिष्ट संबंध रूप स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण में होता है । अत: श्रीमद्‌भागवत के काम-भाव संबंधी सिद्धांतों के अनुकूल कृष्ण भक्तों ने दाम्पत्य रति को प्रधानता देकर उसको कृष्णार्पित करने के रूपक चित्रित किया है । भागवत में गोपियों के माधुर्य भाव का क्रमिक विकास दिखाई देता है । गोपियाँ अपने व्यक्तिगत और लौकिक संबंधों का त्याग कर अपने गर्व का नाश करके शरणागत कृष्ण के शरण में जाती है । अपने मन की समस्त वासनाओं को कृष्ण के प्रेम. में लय करा देती हैं । इस स्थिति में उन्हें परमानन्द की प्राप्ति होती है । इसी रूपक को सूरादि कवियों ने विशद रूप से विस्तृत किया है । प्रेम का उत्तरोत्तर मनोवैज्ञानिक विकास दिखाई दिया है । इन कवियों ने रास लीला के द्वारा गोपियों के गर्वनाश और सर्वात्म समर्पण का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है । प्रेम की पूर्ण आत्मसमर्पण की स्थिति उन्हें प्राप्त हो जाती है ।

राम लीला

रास लीला दिव्य चिदानन्दमयी स्वरूप वितरण सुमधुर लीला है जिसके भोक्ता तथा भोग्य दोनों भगवान ही हैं । इसकी दो धाराएँ हैं । यह दो ओर से आती हैं, टकराती हैं और एक हो जाती हैं । इसी प्रकार प्रेमी-प्रियतम, प्रियतम-प्रेमी के अन्यतम मिलन की अनन्त धारा चलती रहती है । नया मिलन, नया रूप, नया रस, नयी प्यास और नयी तृप्ति - यह प्रेम रस का अद्वैत स्वरूप है । इसी का नाम रास है ।

गोपियाँ रस विशिष्ट प्रेम वृत्ति हैं । राधा आह्लादिनी शक्ति है । श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान हैं ।[1] परब्रह्म के अवतार हैं । गोपियाँ जीवात्माएँ हैं । शुद्ध जीव का ब्रह्म के साथ विलास ही रास है । शुद्ध जीव का मतलब माया रहित जीव है । इस जीव का ही ब्रह्म से मिलन होता है । "एको हं बहु स्याम्" में लीला का आध्यात्मिक पर्यवसान है ।

गोपियों को वेद की ऋचाओं का अवतार माना जाता है । इन गोपियों का कृष्ण के साथ रास रचाना, जीवात्माओं का ब्रह्म के साथ रास रचाने के बराबर है । इस में आत्म समर्पण का भाव निहित है । रास के श्रृंगारिक भावों को श्रीकृष्ण के संसर्ग के कारण निर्दोष बताया गया है । कृष्ण वस्तुतः अप्राकृत देहधारी परमात्मा हैं और गोपियाँ अपने पाप पुण्य से बने पंचभूत शरीर से मुक्त होकर ज्योतिर्मय शरीर से भगवान के पास पहुँचती हैं । लौकिक भाव कृष्णमय हो जाते हैं । नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है कि कृष्ण ही कृष्ण के साथ रास रचते हैं जैसे बालक अपने प्रतिबिंब को लेकर क्रीडा करता है ।[2]

---

1. कृष्णस्तु भगवान स्वयं । भागवत - 1/38
2. महाकवि सूरदास - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ. 118

शरद्-ऋतु में श्रीकृष्ण ने अचिन्त्यशक्ति योगमाया का आश्रय लेकर मन-ही-मन रासक्रीडा का संकल्प किया । पूर्णिमा के प्रदोष काल में चन्द्रोदय हुआ । चन्द्रमा की कोमल किरणें सारी धरती पर बिखर गयी । फिर कृष्ण ने मुरली बजानी शुरू की । मुरली का मधुर तान सुनकर गोपियाँ, जिनका चित्त भगवान में ही लगा हुआ था, दौड़कर आयीं । करूणामय भगवान ने उनकी अविचल प्रेम निष्ठा देख कर उन्हें कृपापूर्वक अपनाया । उनके साथ रास क्रीडा करके उनकी जनम-जनम की प्यास बुझाई । जो सुख, जो सौभाग्य भगवान के हृदय में निरंतर वास करनेवाली लक्ष्मीजी को सुलभ न हो सका, उन गोपियों ने पाया । बड़े बड़े योगी और मुनि भी जिनकी कृपा दृष्टि के लिए तरसते हैं, वे ही कृष्ण गोपियों के वश में है, उनके इशारे पर नाचते हैं । उनकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करने में सुख का अनुभव करते हैं । यही सोचते-सोचते गोपियों के हृदय में अहंकार उत्पन्न हुआ । यह देख कृष्ण वहाँ से अन्तर्धान हो गये ।

फिर गोपियों के हृदय में विरह की ज्वाला सुलगने लगी । भगवान ने उनके चित्त को चुरा लिया था । वे आर्तस्वर से विलाप करने लगीं । पगली-सी होकर उनको ढूँढने लगी तथा तन्मय होकर उन्हीं की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं । फिर सबने मिलकर मार्मिक गीत गाते हुए भगवान को पुकारा । फिर करूणा के सागर, कृष्ण भक्तों की पुकार सुनकर अपने को रोक नहीं सके और सहसा उनके बीच प्रकट हो गये । कृष्ण को देखते ही गोपियों के नेत्र खिल उठे । फिर सभी भगवान की सेवा में जुड गये । तदनन्तर महारास करके भगवान ने गोपियों को अनुगृहीत किया । भागवत में पाँच अध्यायों में रास लीला का वर्णन मिलता है । सूर ने भी व्यापक रूप में इसका वर्णन किया है ।

---

1. भागवत पुराण - 10/32-34

सूर काव्य में रास लीला का बड़ा मार्मिक वर्णन मिलता है । सूरदास जी कहते हैं -

राम रस रीति नहिं बरनि आवै ।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं, कहाँ इह चित्त जिय भ्रम भुलावै ।
जो कहाँ कौन मानै, निगम अगम कृपा बिन नहीं या रसहि पावै ।[1]

सूरदास जी का कहना है कि इसको समझने के लिए भ्रम रहित बुद्धि होनी चाहिए । जिनमें भक्ति का भाव है वे ही इसका आस्वादन कर सकते हैं । वेद और शास्त्रों में दिया हुआ ज्ञान भी बिना ईश्वर की कृपा से इस रास रस के रहस्य को नहीं जान सकता ।

नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है -"रास के वर्णन में सूरदास जी का काव्य परिपूर्ण आध्यात्मिक ऊँचाई पर पहुँच गया है । केवल श्रीमद्भागवत् की परंपरागत अनुकृति कवि ने नहीं की है, वरन् वास्तव में वे अनुपम आध्यात्मिक रास से विमोहित होकर रचना करने बैठे हैं ।"

कृष्ण ने किस प्रकार गोपियों के साथ रास रचाया था, इसका अच्छा खासा वर्णन सूर ने विस्तृत ढंग से किया है ।

रस बस स्याम कीन्ही ग्वारि ।
काम आतुर भजीं बाला, सबनि पुरई आस ।
एक इक व्रजनारि, इक-इक आपु करयौ प्रकास ।
कबहुँ नृत्यत कबहुँ गावत, कबहुँ कोक विलास ।
सूर के प्रभु रास-नायक, करत सुख -दुख नास ।[2]

---

1. सूर सागर - 10/1624. ना.प्र.स.
2. वही - 1680 न.प्र.स.

कृष्ण गोपियों के संग नाच रहे हैं । एक एक गोपी के साथ एक एक कृष्ण नाच रहा है । कभी कभी नृत्य करते हैं, कभी कभी गाते हैं, कभी कभी कोक विलास करते हैं । इस प्रकार कृष्ण ने गोप रमणियों के साथ आनन्द रास रचाया ।

यहाँ सूर ने रास वर्णन के साथ-साथ कृष्ण को रास नायक बताया है जो सब के सुख दुःख का नाश करनेवाले हैं । कहते हैं सुख और दुःख के नाश के बिना मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं है । सूर ने इसी ओर संकेत किया है ।

भक्त कवि रसखान ने भी रासक्रीडा का वर्णन किया है । भगवान कृष्ण ने रास लीला प्रारंभ करने के उद्देश्य से बाँसुरी बजाई ।[1] गोपियाँ बाँसुरी सुनकर जैसे तैसे वस्त्र पहनकर दौडकर आयी । शीघ्रतावश कई गिर गयी, कोई अचेत होने लगीं तो कोई संभालकर चलने का उपदेश देने लगी ।[2] रसखान के रसमयी रास का वर्णन तो देखिए -

आज भटू मुरली-बट के तट नंद के साँवरे रास रच्यौरी ।
नैनति सैननि बैननि सों नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यौ री ।
जद्यपि राखन कौं कुल-कानि सबै ब्रजबालन प्राण पच्यौ री ।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकानि कौं अंत लच्यौ पै लच्यौ री ।।[3]

यहाँ रसखान ने रासक्रीडा का मार्मिक वर्णन किया है । गोपियाँ वंशी नाद सुनकर दौडी हुई आती है । फिर रास क्रीडा होती है । कृष्ण के साथ गोपियाँ दिल खोलकर रास में जुड जाती हैं । यद्यपि

---

1. रसखानि - 32
2. वही - 33
3. वही - 35

गोपियों के लिए अपने कुल की मर्यादा रखना प्राणों से भी प्रिय था, फिर भी उनके लिए कृष्ण को छोडना भी मुमकिन नहीं था । वे कृष्ण को इतना अधिक चाहती थीं ।

यहाँ रसखान की गोपियाँ अपने प्रियतम कृष्ण को सामने देखकर सब कुछ भूल जाती हैं । कृष्ण उनके सर्वस्व थे, उनके आराध्य थे । कृष्ण के सामने उन्हें उनके कुल की कानि फीकी लगने लगी । कृष्ण के लिए उन्होंने कुल मर्यादा भी न्योछावर कर दीं । गोपियों की यह अवस्था देखकर भक्तवत्सल भगवान ने उन्हें अपना लिया ।

मीरा ने अपने पदों में रास लीला का अत्यंत विस्तृत वर्णन न करके संकेत मात्र किया है । मीरा कहती है कि कृष्ण ने वृन्दावन में रास रचाया है । एक कृष्ण के साथ एक गोपी ने रास रचाया ।[1] इतना कहकर मीरा ने रास का उल्लेख किया है ।

नारायण कवि ने अपने नारायणीयम् में रास क्रीडा का भव्य वर्णन किया है । नारायणीयम् में पैंसठवें दशक से इकहत्तरवें अध्याय तक इसका वर्णन मिलता है ।

नारायण कवि ने संक्षिप्त रूप से संपूर्ण रासक्रीडा का वर्णन किया है जो अपने ढंग का निराला है ।

---

1. वृन्दावन में रास रच्यो है गोपियाँ सारी रे ।
   एक कृष्ण एक गोपियों नाचे रास बनायो रे ।।
   मीरा सुधा सिन्धु/व्रजभाव के पद - 178-3

नारायण कवि के वर्णन का नमूना तो देखिए - "हम
डा में विभूषित आपके मनोहर रूप का चिंतन करते हैं । आपने अपने
में मोरपंख की पंक्ति धारण कर रखी है । आपके कपोलों पर मकराकार
झलमला रहे हैं । विविध हारों के समुदाय तथा वनमाला से आपके
लालित्य और बढ़ गया है । श्रीअंगों में लगे हुए अंगराग से राशि-राशि
की वर्षा हो रही है । कटि प्रदेश में पीताम्बर के ऊपर करधनी की
से आप सुशोभित हैं तथा आपके चरणों में धारित मणिमय नूपुरों से
उठ रही हैं । आप समस्त दो-दो गोपसुन्दरियों के बीच में संचरण
हैं । ऐसी व्यवस्था करने के पश्चात् आपने मञ्जुल रासकेलि आरंभ
।"[1] इस प्रकार नारायण कवि ने रास क्रीडा का तथा कृष्ण के सौंदर्य
स वर्णन किया है । नारायण कवि की विशेषता यह है कि वे सब कुछ
ो संबोधित करके कहते हैं । रास क्रीडा प्रसंग भी नारायण कवि कृष्ण
ोधित करके वर्णन कर रहे हैं ।

बिल्वमंगल ने कृष्णकर्णामृत में रासक्रीडा का अत्यंत सुन्दर
ींचा है । उनका वर्णन ज़रा देखिए - हर दो गोप-बालाओं के बीच
खड़ा है और माधव के पास गोपिका है । इस तरह से रचे गये वर्तुल
भाग में खड़े हो कर देवकी पुत्र कृष्ण ने मुरली बजाई ।[2] इसी प्रकार
लोकों में उन्होंने रास क्रीडा का वर्णन किया है ।

पाशधृतपिच्छिकाविततिं सञ्जलन्मकरकुण्डलं
रजालवनमालिका ललित मङ्गराग घन सौरभम् ।
तचेल धृतकाञ्चिकाञ्चित मुदञ्चदंशुमणिनूपुरम्
सकेलि परिभूषितं तव हि रूपमीश कलयामहे ।। नारायणीयम् - 71/1
तरा सकल सुन्दरी युगलमिन्दिरा रमण सञ्चरन् ।

वैसे तो रासक्रीडा का वर्णन कइयों ने किया है लेकिन बिल्वमंगल का वर्णन अपने ढंग का निराला है, अनूठा है । उन्होंने रास क्रीडा का चित्रमय चित्र खींचा है । ऐसा लगता है कि रासक्रीडा हमारे आँखों के सामने चल रही है । प्रयुक्त पदों के विन्यास से एक प्रकार की संगीतात्मकता उत्पन्न होती है जो रासक्रीडा के नाच के साथ ताल मिलाती हुई निकलती है ।

गीत गोविन्द में भी जयदेव कवि ने श्रीकृष्ण की, राधा तथा गोपिकाओं के साथ हुई रास क्रीडा का रसीला वर्णन प्रस्तुत किया है । एक सखि राधा से, कृष्ण और गोपियों के बीच जो रास क्रीडा हुई है, उसका वर्णन करती है । सखि राधा से कहती है सुन्दर लौंग की लताओं से स्पर्शित, धीरे धीरे बहते हुए मलयसमीर के सहित, भौंरों की अवली से गुंजित एवं कोयलों की कूजन से कूजित कुंजवाले तथा वियोगियों को क्लेशित करनेवाले इस वसन्त ऋतु में श्रीकृष्ण तरुणी गोपियों के साथ नाचते तथा गाते हैं ।[1] चन्दन चर्चित नीले शरीर वाले पीताम्बर तथा वनमाला पहिने एवं क्रीडा के कारण चञ्चल रत्न जुडे कुण्डलों से सुशोभित गालों पर मन्द-मन्द मुसकान धारण करनेवाले श्रीकृष्ण क्रीडासक्त गोपियों के समूह में विहार कर रहे हैं ।[2]

---

1. ललितलवङ्ग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे ।
   मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजित कुँज कुटीरे ।
   विहरति हरि रिह सरस वसन्ते
   नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरहि जनस्य दुरन्ते ।। 1-3-1
2. चन्दन चर्चित नील कलेवर पीतवसन वनमाली
   केलि चलन्मणिकुण्डल मण्डित गण्डयुगस्मितशाली ।।
   हरिरिह मुग्धवधुनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे ।। 1-4-1

जयदेव का "ललित लवंग....वाला" भाव सूरदास ने भी सूरसागर में अंकित किया है । सूरसागर में सूरदास कहते हैं

नवल निकुंज नवल नवला मिलि, नवल निकेतन रुचिर बनाए ।
बिलसत बिपिन बिलास बिबिध बर, बारिज बदन बिकच सचु पाए ।।[1]

उसी प्रकार चंदन चर्चित .... वाली पंक्ति का असर भी सूरसागर में देखा जाता है । सूर कहते हैं -

मानों माई घन घन अंतर दामिनी ।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर सोभित हरि ब्रज भामिनि ।[2]

यहाँ पर सूरदास पर जयदेव का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है ।

इस प्रकार विविध कवियों ने विविध प्रकार से रास क्रीडा का वर्णन किया है । सूर तथा मीरा की गोपियों के साथ उतने ही कृष्ण क्रीडा करते हैं तो नारायणीयम् तथा कृष्णकर्णामृत के दो गोपियों के साथ एक कृष्ण क्रीडा करता है । हिन्दी और संस्कृत के कवियों के चित्रण में यह एक बहुत बडा अन्तर है । उसी प्रकार संस्कृत के कवियों का रास क्रीडा प्रसंग संगीतात्मकता से भरपूर है । उसे पढने से ऐसा लगता है मानों नृत्य हमारे सामने घट रहे हैं । पदों का विन्यास इतना सुन्दर है कि उसमें चित्रात्मकता उभर कर आयी है ।

पनघट लीला

यह लीला पुराणों में वर्णित नहीं है । कवि ने इस लोकजीवन के आधार पर रचा है ।

---

1. सूरसागर - 2605 (न.प्र.स.)
2. वही - 1048

गोपियाँ जल भरने के लिए यमुना तट पर जाती हैं । कृष्ण अपने सखाओं को भेजकर उन्हें द्रुम के नीचे रुकवा लेते हैं और फिर कृष्ण उनकी छबि देखने लगते हैं । गोपियों को आँखों में तो कृष्ण की रूपछबि गड़ जाती है । चलते समय वे रुक-रुक कर चलती हैं, मुड़ मुड़ के कृष्ण को देखने के लिए ताकती रहती है । कृष्ण कभी द्रुम डाल पर चढ़ते हैं और गोपियों के गगरियों पर उनके शरीर की परछाई देखते हैं । कृष्ण को देखकर गोपियाँ उनकी ओर आकर्षित हो जाती हैं और हमेशा उन्हीं के पास जाना चाहती हैं । कृष्ण और गोपियाँ एक दूसरे से छेड़छाड़ भी करती हैं । कभी कभी छेड़छाड़ से तंग आकर गोपियाँ यशोदा से शिकायत भी करती हैं । कृष्ण को देखने और उनकी मोहिनी लीला का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के लिए पनघट पर गोपियों की भीड़ लगी रहती है । गोपियों के साथ राधा भी इस लीला में भाग लेती है और वही अगुआ बनकर केन्द्र में विराजती है । वह कृष्ण को अपनी ओर आकर्षित करके प्रेम विवश करती है । कृष्ण तो गगरी को पत्थर मारते हैं -"गगरि ताकि काँकरी मारै, उचटि उचटि लागति प्रिय गात ।"[1] इस प्रकार प्रभु पर मन अटक जाने से "देह गेह की सुधि बिसराइ"[2] की अवस्था तक पहुँच जाती है ।

पनघट लीला के ज़रिए सूर ने राधा सहित गोपियों के काम भाव की अनुभूति प्रकट की है । उन्होंने यमुना के पनघट पर जल भरनेवाली गोपियों के मनोभावों तथा कृष्ण की चेष्टाओं का मनमोहक चित्रण प्रस्तुत किया है । इस चित्रण में नवीनता, सजगता एवं सूक्ष्म अवेक्षण है जिससे यह प्रसंग एकदम निराला बन गया है । गोपियाँ कृष्ण से छेड़खानी भी करती हैं । वे कृष्ण के हर जवाब का उत्तर देने में समर्थ भी हैं ।

---

1. सूरसागर - 2059 न.प्र.स.
2. वही

रसखान ने भी पनघट लीला का वर्णन किया है । रसखान की रसभरी वाणी में इसका वर्णन देखिए -

जात हुती जमुना जल कौं मनमोहन घेरि लयौ मग आइ कै
मोद भरयौ लपटाइ लयौ, पट घूँघट टारि दयौ चित चाइ कै
और कहा रसखानि कहौं मुख चूमत घातन बात बनाइ कै
कैसें निभै कुलकानि, रही हियैं साँवरी मूरति की छवि छाइ कै ।[1]

रसखान के कृष्ण तो रसिक किशोर और नटखट हैं । वे गोपियों से लिपट जाते हैं, उनका घूँघट खोलते हैं, मुख चूमते हैं । बेचारी गोपियों का हाल तो बेहाल हो जाता है । उन्हें यह नहीं सूझता कि कुल की कानी कैसी बचायी जाए । उनके दिलोदिमाग पर कृष्ण ही कृष्ण छाया हुआ है ।

रसखान ने यहाँ कृष्ण के नटखटपन और गोपियों के उत्कट प्रेम का चित्र खींचा है ।

मीरा ने भी कृष्ण के पनघट प्रसंग का चित्र प्रस्तुत किया है । मीरा के कृष्ण गोपियों की गागरियाँ फोटते हैं और जमुना किनारे मुरली बजाते हैं ।

बाँके साँवरिया ने घेरी मोहे आनके ।
हौ जो गई जमुना जल भरने । मारग रोक्यो आन के ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में । मुरली बजावे तान के ।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर । प्रीति पुरातन जानके ।।[2]

---

1. रसखानि - 36
2. मीरा सुधा सिन्धु/व्रजभाव के पद - 171

मीरा की गोपियाँ सूर की गोपियों की तरह कृष्ण और उनके सखाओं से छेडछाड नहीं करतीं । उनको डर है कि कहीं किसी ने देख लिया तो क्या होगा ? फिर भी वे कृष्ण से अत्यंत प्रेम करती हैं । कृष्ण को देखने के लिए जल-भरण के बहाने जमुना किनारे जाती हैं ।

पनघट लीला कवि कल्पित है, पुराण वर्णित नहीं है । संस्कृत के परंपरावादी कवियों ने इसका वर्णन नहीं किया । लेकिन हिन्दी के कवियों ने लोक परंपरा और कल्पना को मिलाकर इसको प्रस्तुत किया है ।

मान लीला

मान लीला, रास लीला के बाद राधा-कृष्ण के एकान्तिक प्रेम संयोग का स्वाभाविक विकास है । सूरदास ने मान लीला को तीन बार वर्णित किया है । मान लीला, राधा का मध्यम मान और बड़ी मान लीला ।

श्रीकृष्ण के हृदय पटल पर अपना ही प्रतिबिंब देखकर राधा अनुमान लगाती है कि कृष्ण किसी अन्य स्त्री में अनुरक्त है और वह मान कर बैठती है । कृष्ण हर तरह से राधा को अपने प्रेम का एहसास दिलाते हैं । लेकिन राधा मानती ही नहीं ।[1] कृष्ण उनसे अनुनय विनय करते हैं । राधा को समझाते हैं । फिर भी राधा मानने को तैयार ही नहीं होती । तब कृष्ण व्याकुल हो जाते हैं और विरह का अनुभव करते हैं ।[2] इसके बाद एक दूती के द्वारा एक दूसरे को संदेश पहुँचाया जाता है । इसमें राधा का हठ और कृष्ण के विरह का चित्र मिलता है । इसके फलस्वरूप राधा और कृष्ण एक दूसरे से मिलते हैं ।[3]

---

1. सूरसागर - पद - 3030-3040 (न.प्र.स.)
2. वही - 3041-3042
3. वही - 3056-3061

इस प्रसंग के अंतर्गत सूर ने कृष्ण के मूर्तिमान प्रेम के रूप में राधा को प्रदर्शित किया है । साथ ही उन्होंने राधा के रूप-सौंदर्य और श्रृंगार के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं ।

राधा के मध्यम मान के अंतर्गत सूर मानलीला को अधिक विस्तृत रूप में प्रस्तुत करते हैं । इसमें कृष्ण के विश्वासघात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने पर राधा के मान का वर्णन है । इस बार राधा का मान अधिक गंभीर एवं दृढ़ है । कृष्ण की विरह दशा भी शोचनीय तथा प्रभावोत्पादक है ।[1] राधा को मनाने के लिए कृष्ण एक दूती को भेजते हैं । वह राधा को कृष्ण की ओर से समझाने की कोशिश करती हैं । दूती राधा को उनकी प्रेम विवशता, प्रेम के समक्ष उनकी द्रवणशीलता, महिमा, अनुरक्ति आदि का वर्णन करती हुई समझाती है । साथ ही वह राधा को यौवन की क्षण भंगुरता और मान के अनौचित्य की याद दिलाती है । लेकिन राधा टस से मस नहीं होती । फिर विरह व्यथा से तडपते हुए कृष्ण राधा के पास आकर अपना अपराध स्वीकार करके क्षमा माँगते हैं ।[2] तब जाकर राधा मान जाती हैं । फिर कृष्ण वनधाम जाते हैं और रति सेज सजाकर दूती के साथ राधा की प्रतीक्षा करते हैं । ऐसे अधीर होकर प्रतीक्षा करनेवाले कृष्ण के समक्ष राधा धीरे धीरे साज सवारकर कुंज में आती है ।[3]

बडी मानलीला में फिर राधा कृष्ण से रूठ जाती है । इस बार राधा ने कृष्ण को प्रात:काल यमुना में नहाने जाते वक्त किसी स्त्री के घर से निकलते देखा । इससे राधा अत्यंत क्रुद्ध हो जाती है और मान कर बैठती है । वह अपने चपल नयनों की कोर से कृष्ण पर कटाक्षपात

---

1. सूरसागर - पद 3202 - 3205 (न.प्र.स.)
2. वही - 3219 - 3221
3. वही - 3228 - 3236

करके उन्हें धराशायी कर देती है।[1] इसके बाद कृष्ण एक के बाद एक दूती को भेजकर क्षमा माँगते हैं और अपने प्रेम का निवेदन करते हैं। परन्तु राधा मानने को तैयार ही नहीं होती। कृष्ण राधा के विरह में तड़पते रहते हैं। फिर "राधा राधा" कहकर कृष्ण पछाड़ खाकर गिर पड़ते हैं। दूतियाँ नये - नये उपायों से राधा को मनाने की धुन में दौड़ती फिरती हैं। फिर गोपियाँ आकर राधा का मनुहार करती हैं और राधा मान जाती है।[2] फिर कृष्ण के साथ मिलने के लिए जाती है।

इस प्रसंग के द्वारा सूर ने राधा के गूढ़ कृष्ण प्रेम को व्यंजित किया है। राधा के रूप वर्णन में सूर ने अपनी उत्कृष्ट कल्पना का परिचय दिया है।

यही प्रसंग जयदेव कवि ने अपने गीतगोविन्द काव्य में प्रस्तुत किया है। राधा कृष्ण के श्री अंगों पर सुरति का चिह्न देखती है और कृष्ण से रूठ जाती है। फिर राधा किसी भी तरह मानने को तैयार ही नहीं होती। फिर एक दूती के द्वारा दोनों एक दूसरे को संदेश पहुँचाते हैं। दूती राधा से अनुनय विनय करके मान छोड़ने का अनुरोध करती है। साथ ही वह कृष्ण के विरह का वर्णन भी करती है। लेकिन राधा मानने को तैयार ही नहीं होती। फिर दूती राधा को समझा-बुझाकर मिलने को तैयार करती है। राधा विरह के कारण चल नहीं पाती। राधा की विरहावस्था के बारे में सुनकर कृष्ण कुंठित हो जाते हैं। वहाँ निकुंज में राधा कृष्ण की प्रतीक्षा करके बैठी रही लेकिन कृष्ण नहीं आये। अगले दिन कृष्ण का अभिमान टूटता है और स्वयं राधा को मनाने के लिए निकुंज में

---

1. सूरसागर - पद 3357 (ना.प्र.स.)
2. वही - 3446

जाते हैं और राधा के चरणों में गिरते हैं । इस प्रकार कृष्ण राधा को मनाने की कोशिश करते हैं । लेकिन राधा मानती ही नहीं । फिर सखी राधा को मनाने की कोशिश करती है । राधा का क्रोध धीरे-धीरे पिघल जाता है और कृष्ण बड़ी चतुराई से राधा को वश में करते हैं । फिर दोनों का मिलन होता है ।

इस मान लीला प्रसंग के वर्णन में सूरदास पर जयदेव का प्रभाव दिखाई देता है । जयदेव ने ही पहली बार राधा-कृष्ण की मान लीला का वर्णन किया था । इन्हीं से प्रेरणा ग्रहण कर सूरदास प्रभृति कवियों ने मान लीला का वर्णन किया है ।

मान लीला प्रसंग का वर्णन केवल सूरदास में मिलता है । तुलसीदास, रसखान, मीरा आदि ने इसका वर्णन नहीं किया । उसी प्रकार नारायण भट्टत्तिरी, बिल्वमंगल और सुकुमार कवि ने भी इसका वर्णन नहीं किया । यह प्रसंग कवि की कल्पना का परिचय देता है ।

यद्यपि जयदेव का प्रभाव देखा जाता है फिर भी सूरदास का वर्णन अपनी मौलिकता लिए हुए है । सूर ने तीन बार इसका वर्णन किया । जयदेव के वर्णन से कहीं विस्तृत है सूरदास का वर्णन । सूरदास ने विरह में तड़पते हुए कृष्ण और राधा का मार्मिक चित्रण प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया है । उसी प्रकार सूर की राधा का मान जयदेव की राधा की अपेक्षा गंभीर एवं दृढ़ है ।

दान लीला

यह लीला पुराणवर्णित नहीं है । कवि ने इसे लोक परंपरा से गृहीत किया है । दान लीला एक छोटी सी घटना है । लेकिन सूरदास ने अपनी कल्पना से इसे विस्तृत रूप दिया है ।

गोपियाँ गोकुल से दही, दूध, माखन इत्यादि बेचने के लिए बाहर जाती हैं । कृष्ण और उनके सखा मिलकर इन गोपांगनाओं को मार्ग में रोकते हैं । कृष्ण उनसे दान का आग्रह करते हैं । फिर दोनों ओर से वाक्य-प्रति वाक्य उत्तर दिया जाता है । देर तक गोपियाँ और कृष्ण-सहित ग्वालबाल प्रतीकों की भाषा में अपना आशय व्यक्त करते हैं । कुछ देर बाद कृष्ण स्पष्ट रूप से उनसे यौवन का दान माँगते हैं । कृष्ण और ग्वाल बाल मिलकर अपने लोकोत्तर महत्व के प्रतिपादन से गोपियों को हराना चाहते हैं । वाद-विवाद-संवाद के बाद गोपियाँ कृष्ण के चरणों में अपने को आत्मसमर्पण कर देती है । फिर गोपियाँ कृष्ण और सखाओं को दही और माखन खिलाती हैं और रस विह्वल होकर घर लौट जाती हैं ।

कृष्ण गोपियों से अंग-प्रत्यंग का दान मांगते हैं । सूर इसे यों वर्णित करते हैं -

लैहौं दान सब अंगनि कौ ।
अति मद गलित ताल-फल त गुरु, इन जुग उरज उतंगनि कौ ।।
खंजन, कंज, मीन, मृग, सावक, भँवरज बर भुव अंगनि कौ ।।
कंदकली, बंधूक, बिंब फल· बर ताटंक तरंगनि कौ ।
सूरदास प्रभु हँसि बस कीन्हौ, नायक कोटि अनंगनि कौ ।।[1]

लेकिन गोपियाँ साफ इनकार कर कहता है -

ऐसौ दान माँगियै नहिं जौ, हम पै दियौ न जाइ ।
बन में पाइ अकेली जुवतिनि, मारग रोकत धाइ ।।
घाट बाट औघट जमुना-तट, बातैं कहत बनाइ ।
कोऊ ऐसौ दान लेत है, कौनें पठए सिखाइ ।

---

1. सूरसागर - पद 2083 (न.प्र.स.)

हम जानति तुम यौं नहीं रैहौं, रहिहौ गारी खाई ।
जो रस चाहौ सो रस नाहीं, गोरस पियौ अघाइ ।।
औरनि सौं लै लीजै मोहन, तब हम देहिं बुलाइ ।
सूर श्याम कत करत अचगरी, हम सौं कुँवर कन्हाइ ।[1]

दान लीला के जरिए सूर ने गोपियों का प्रेम रूप, क्रीडा और लीला की आसक्ति का उद्घाटन किया है । वे कुल, लोक-मर्यादा, लज्जा आदि को छोड संसारादि विषयों को सर्वथा त्याग कर आत्मसमर्पण की स्थिति तक पहुँचती हैं । इसी कारण से वे आत्म विस्मृत होकर कृष्ण के साथ अभिन्न होने के लिए विकल होती है । सब कुछ त्याग कर आत्मसमर्पण करना सरल नहीं है । इसके लिए अहंकार का त्याग अति आवश्यक है । इसी भाव की सुन्दर एवं प्रतीकात्मक रूप से व्यंजना दानलीला के पदों में मिलती है ।

कृष्ण तो भाव पुरुष हैं । वे सब के अन्तरयामी भी है । सबके मन की बात वे जानते हैं । इस लीला के बाद गोपियों की कृष्ण प्रीति तन्मयतापूर्ण आसक्ति में परिणत हो जाती है । कहते हैं प्रभावात्मक व्यक्तित्व ही प्रभुत्व पाता है । दान लीला के संदर्भ में भी यह सच है । दानलीलाओं में कृष्ण और उनके साथियों को गोपियों से बहस करनी पडी और उन्हें समझाना पडा, तभी गोपियाँ दानलीला के लिए तैयार हुई । नारी मन हमेशा ही संकोची होता है । वह प्रिय से मिलना तो चाहता है लेकिन सामाजिक बंधनों से मुक्त नहीं हो पाता । इस तनाव को दूर करने के लिए कृष्ण गोपियों से यमुना किनारे, गाँव के चौराहों पर वाद विवाद करते हैं और उन्हें प्रेम के लिए उकसाते हैं । गोपियों और कृष्ण के बीच के संवाद में सजीवता है, नाटकीयता है और विषय के अनुरूप आडंबरहीनता एवं गूढ व्यंजना लक्षित होती है ।

---

1. सूरसागर - 2080

कवि रसखान ने भी दान लीला प्रसंग का वर्णन किया। संदर्भ का वर्णन सूर के जैसा ही है। रसखान की रसभरी और व्यंग्यपूर्ण वाणी में गोपियों का उत्तर तो देखिए -

छीर जो चाहत चीर गहैं अजू लेउ न केतिक छीर अचैहौं।
चारवन के मिस माखन माँगत खाउ न माखन केतिक खैहौं।
जानति हौं जिय की रसखानि सु काहे कों ऐतिक बात बढ़ैहौं।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्हजू न पैहौं।[1]

कृष्ण गोपियों से यौवन दान माँगते हैं। लेकिन गोपियाँ साफ इनकार कर देती है। रस रहस्य चतुरा गोपियाँ मार्मिक रस भरा उत्तर देकर कृष्ण से पूछती है कि आखिर तुम चाहते क्या हो ? "जो रस चाहौ सो रस नाहीं, गौरस पियौं अघाइ" वाली सूरदास की पंक्ति से "गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्हजू नेकु न पैहौं" रसखान की पंक्ति की तुलना की जा सकती है। दोनों पंक्तियों में एक ही भाव का वर्णन है। लगता है रसखान पर, दानलीला वर्णन में, सूरदास का प्रभाव पड़ा होगा।

भक्त कवि मीरा ने भी दान लीला का वर्णन किया है। मीरा कहती है -

लेशे रे महीडां केरां दाण आ तो मोहूँ, लेश ते महीडां केरां दाण।
अमो अबका कंइ सबक सुंवाळां बोला, आवडी शी खेंचाताण।।
नंदना घरनो गोवाकोयोरे, ओकरथा बिना रे बृखुभाण।
मघराते मथुरा थी रे नाठो, ते तो, अमने नथी रे अजाण।।
वृन्दावन ने मारगे जातां, तुं तो रोनुं भागे छे रे दाण।
मीरां के प्रभु गीरधर ना गुण, चरण कमळ नु चितडा में ध्यान।।[2]

---

1. रसखानि - 42
2. मीरा सुधा सिन्धु/वृजभाव के पद - 32 - पृ. 585

यहाँ मीरा भी वही प्रसंग प्रस्तुत करती है जो सूरदास ने किया है । मीरा की गोपियाँ कृष्ण से कहती है कि वे केवल अबला ही नहीं, ज़रूरत पड़ने पर सबला भी बन सकती है । इसलिए वे कृष्ण से पूछती हैं कि इतनी खींचातानी क्यों करते हो ? मीरा का कृष्ण दधि आदि का आस्वादन ही नहीं करता, गोपियों की मटकी भी फोड़ देता है । मार्ग में रोके जाने के कारण गोपियाँ अपना लाज रखने की प्रार्थना भी करती हैं । लेकिन वे कृष्ण के प्रति इतनी आकर्षित है कि उन्हें देखे बिना रह भी नहीं पाती । गोपियाँ कृष्ण से पूछती है कि वृन्दावन के मार्ग में आते जाते समय, क्या दान माँगते फिरते हो ? मीरा बाई तो सदा ही गोपी भाव से युक्त है और सदा ही अपने गिरिधर नागर के चरणों में ध्यान लगाए बैठी है ।

यहाँ मीरा का आत्मसमर्पण भाव उभरकर आया है । मीरा अपने को गोपी मानती है और गोपियों की तरह अपने को कृष्ण के चरणों में न्योछावर करती है ।

संस्कृत के कवियों ने जैसे नारायण भट्टत्तिरी, बिल्वमंगल, जयदेव और सुकुमार कवि ने दान लीला का वर्णन नहीं किया । इस का वर्णन केवल हिन्दी के कवियों में मिलता है । दान लीला पुराणों में वर्णित नहीं है । शायद इसीलिए संस्कृत के कवियों ने इसे अछूता छोड़ा है । लेकिन हिन्दी के कवियों ने लोक परंपरा और अपनी कल्पना की उड़ान से दान लीला को विस्तृत रूप में वर्णित किया है ।

भ्रमर गीत प्रसंग

यह कृष्ण कथा साहित्य का प्रमुख प्रसंग है । भागवत में दशमस्कंध के छियालीसवें अध्याय में इसका वर्णन हुआ है । जब कंस अनेक छल-बल करके हार गया और श्रीकृष्ण का कुछ बिगाड़ न सका तो यज्ञ के

निमंत्रण के बहाने कंस ने अक्रूर को भेजकर श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों को मथुरा बुलवाया । कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद ब्रजवासी शोक सागर में डूब गये । उनको सांत्वना देने के लिए कृष्ण ने अपने सखा उद्धव को वृन्दावन भेज दिया । उद्धव को अपने योग और ज्ञान का बडा घमंड था । वह प्रेम और भक्ति की अवहेलना करते थे । कृष्ण को उनका घमंड चूर करना था । गोपियों के प्रेम का आदर्श सामने रख कर उद्धव को साकार उपासना की सुगमता और सरलता समझाना था । इसलिए कृष्ण ने उद्धव को वृन्दावन में गोपियों को सांत्वना देने के लिए भेजा ।

उद्धव के वृन्दावन पहुँचने पर उनका आदर सत्कार हुआ । सब गोपियाँ उद्धव से कृष्ण का योग क्षेम पूछने लगी । तब उद्धव ने अपना ज्ञानोपदेश शुरू किया । गोपियों को उनकी रूखी ज्ञान चर्चा रूची नहीं । इसी बीच एक भ्रमर उडता हुआ आया और राधा के चरण पर बैठ गया । फिर गोपियों ने उद्धव को सुनाते हुए भ्रमर को संबोधित करके उपालंब देना शुरू किया । उनके योग और निर्गुण उपासना के सिद्धांतों का एक-एक करके खंडन किया तथा सगुण उपासना पर बल देना आरंभ किया । यह सब सुनाते तो उद्धव को थे, लेकिन संबोधन भ्रमर को करते थे । इसलिए इस प्रसंग का नाम भ्रमर-गीत पडा ।

सूरदास ने भ्रमर गीत का अत्यंत विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है । इसमें उन्होंने निर्गुण पर सगुण की विजय दिखाने की कोशिश की है ।

गोपियाँ उद्धव के ज्ञानोपदेश का खंडन करते हुए उससे पूछती है- जिसका आदि और अंत नहीं उसके माता तथा पिता कौन है । अगर उसके चरण और भुज नहीं तो वे ऊखल में कैसे बँध गये ? नैन और मुख नहीं तो माखन चुराकर कैसे खाया ?[1]

---

1. आदि अंत जाके नहीं, हो कौन पिता को माय ?
   चरन नहीं भुज नहीं कहौ ऊखल किन बाँधो ?
   नैन नहीं मुख नहीं चोरि दधि कौने खायो ? - सूरपंचरत्न - 5/2

फिर वे पूछती हैं कि यह निर्गुण किस देश का वासी है ?[1] अंत में गोपिकाएँ कहती हैं कि हे उद्धव हमारे पास दस-बीस मन नहीं है । केवल एक ही है । इसलिए हम तुम्हारी ज्ञान की बातें समझ नहीं सकतीं । हमारे मन में केवल श्याम ही रहता है और कोई नहीं । इसलिए तुम्हारी ज्ञान की बातें मन में घुसती ही नहीं ।

ऊधो मन नाहीं दस बीस ।
एक हतो सो गयो स्याम संग को आराधे ईस ?
भई अति सिथिल सबै माधव बिनु यथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटकि रहे आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस ।।
तुम तो सखा स्यामसुन्दर के सकल जोग के ईस
सूरदास रसिक की बतियाँ पुरवो मन जगदीस ।।[2]

देखिए कितना दर्दनाक चित्रण है । गोपियों की दशा कृष्ण के बिना अत्यंत मार्मिक हो गयी है । उनके विरह का अच्छा-खासा वर्णन इस पद में हुआ है ।

सूर की गोपियाँ भागवत की गोपियों की तरह सरल हृदया नहीं है । वे उद्धव से तर्क वितर्क में समर्थ है । वे उद्धव के ज्ञानोपदेश की खिल्ली उडाती हैं । वे अत्यंत वाग्विदग्ध एवं तर्क कुशल हैं ।

भागवत के दशमस्कंध पूर्वार्ध में भ्रमरगीत प्रसंग में कृष्ण के प्रति गोपियों के उपालम्ब का वर्णन दस श्लोकों में मिलता है । सूर ने इसका अनेक पदों में सविस्तार वर्णन किया है ।

---

1. सूरपंचरत्न - 5/25
2. वही - 5/70

तुलसीदास ने भी कृष्ण गीतावली में भ्रमर गीत प्रसंग छब्बीस पदों में लिखा है । ये प्रसंग अपनी मौलिकता लिए हुए हैं ।

तुलसी की गोपियाँ कृष्ण विरह में इतनी व्याकुल हैं कि उनकी वाणी तथा हृदय भी उनके हाथ में नहीं है । स्याम सुन्दर रूप-धन के बिना सब दीन है । इस प्रकार विरह में तड़पती हुई गोपिकाएँ उद्धव के ज्ञानोपदेश की प्रतिक्रिया में कहती है -

भली कही आली । हमहुँ पहिचाने ।
हरि निर्गुन, निरलेप, निरपने, निपट, निठुर, निजकाज सयाने ।
ब्रज को विरह, अरु संग महर को, कुबरिहि बरत न नेकु ले जाने ।
समुझि से प्रीति की रीति स्याम की सोइ बावरि जो परेखो उर आने ।
सुनत न सिख लालची विलोचन एतेहु पर रुचि रूप लोभाने ।
तुलसीदास इहै अधिक कान्ह पहिं नीकेई लागत मन रहत समाने ।।[1]

यहाँ तुलसीदास ने विरही गोपियों की विरही व्यथा के साथ हरि को निर्गुण, निर्लिप्त एवं निरपने कहा है । यह इस बात की ओर संकेत करता है कि भगवान सगुण होते हुए भी निर्गुण है ।

सूरदास ने श्रीकृष्णगीतावली में तुलसीदास को प्रभावित किया है । श्रीकृष्णगीतावली में ऐसे दो चार पद हैं जो हू-ब-हू सूरदास से मिलते जुलते हैं । देखिए सूरदास का पद -

ऊधो तुम ब्रज की दसा विचारो ।
ता, पोछे हे सिद्ध आपनो जोग कथा बिसतारौ ।
ऐहि कारन पठये नंदनंदन सो सोचहु मनमाहीं ।
केतिक बीच विरह परमारथ, जानत हौं किधौं नाहीं ।।

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 38

तुम निज दास जो सखा श्याम के संतत निकट रहत हौ ।
जल बूडत अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा गहत हौ ।
वह अति ललित मनोहर आनन कैसे मनहिं बिसारौं ।
जोग जुगुति औ मुकुति बिबिध बिधि वा मुरली परवारौं
जेहि उस बसे श्याम सुन्दर घन क्यों निरगुण करि आवै ।
सूर श्याम सों भजन बहावै जाहि दूसरो भावै ।[1]

तुलसी का पद है -

ऊधो या व्रज की दसा बिचारो ।
ता पीछे यह सिद्ध अपनी जोग कथा विस्तारो ।।
जा कारण पठयो तुम माधव सो सोचहु मन माँही ।
केतिक बीच विरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं ।।
परम चतुर निज दास स्याम के संतत निकट रहत हौ ।
जल बूडत अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा कहत हौ ?
वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं ।
जोग जुगुति अरु मुकुति विविध विधि वा मुरली पर वारौं ।
एहि उर बसत स्यामसुन्दर घन तेहि निर्गुन कस आवै ।
तुलसीदास सो भजन बहाओ जाहि दूसरो भावै ।[2]

दोनों पद अत्यंत मिलते जुलते हैं । इससे यह कहा जा सकता है कि सूर ने तुलसी को अवश्य प्रभावित किया है ।
उसी प्रकार एक और पद है -

बिछुरत श्री व्रजराज आज इन नैननि की परतीति गई ।
....[3]
सूरदास याही ते जड़ भए पलकनि हू हठ दगा दई ।

---

1. सूरसागर - पद 3621 दशमस्कंध
2. श्रीकृष्णगीतावली - पद 33
3. सूरसागर दशमस्कंध - पद 2996 (न.प्र.स.)

यह पद तुलसीदास के श्रीकृष्णगीतावली के

> बिछुरत श्री ब्रजराज आज इन नैननि की परतीति गई
>
> ....
>
> तुलसीदास तब अपहूँ से भए जड़ जब पलकनि हठि दगा दई

वाले पद से बिलकुल मिलता जुलता है ।[1]

रसखान ने सात सवैयों में भ्रमरगीत का वर्णन किया है । रसखान की गोपियाँ कहती हैं कि योग सिखाने के लिए उद्धव आया है । वे कृष्ण की मुख छबि के सिवा कुछ देखना नहीं चाहती न कृष्ण के खिलाफ कुछ सुनना ही चाहती हैं । वे किसी भी तरह से कृष्ण को छोड़ने के लिए तैयार ही नहीं हैं ।

> जोग सिखावत आवत है वह कौन कहावत को है कहाँ को ।
> जानति है बर नागर है पर नेकहु भेद लहयौ नहिं ह्याँ को ।
> जानति ना हम और कछू मुख देखि जियैं नित नंदलला को
> जात नहीं रसखानि हमैं तजि राखनहारो है मोरपंखा को ।।[2]

रसखान की गोपियाँ उद्धव की योग और ज्ञान की बातें सुनना नहीं चाहती । वे तो बस अपने नंदलला के मुख कमल से खुश हैं । न वे योग सीखकर योगी बनना चाहती हैं न ज्ञान पाकर ज्ञानी । वे तो कृष्ण की याद में अपना जीवन गुज़ारना चाहती हैं । लेकिन कृष्ण की याद आते ही वे विरहाग्नि में तड़पने लगती हैं । यह बात उनको खटकती है । वे कहती हैं कि उन्हें "काले नाग" ने डसा है ।[3] इससे उनके शरीर में नाग का विष फैला है और इसीलिए वे तड़प रही हैं । वे उद्धव से

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 24
2. रसखानि - 20[illegible]
3. वही - 204

पूछती है कि क्या योग का भस्म लगाकर नाग का विष उतारा जा सकता है ? जिस प्रकार यह बात संभव नहीं है उसी प्रकार उनके कृष्ण को भूलने की बात भी संभव नहीं है । गोपियों का कहना है कि "नेम कहा जब प्रेम, कियौ तब नाचियौ सोई जो नाच नचावै ।"[1] इसलिए कृष्ण की जो इच्छा है वही होने दे ।

मीरा ने भी कुछ पदों में उद्धव लीला या भ्रमर गीत का वर्णन किया है । मीरा की गोपियाँ केवल कृष्ण से प्रेम करती हैं । वे ज्ञान, मान कुछ नहीं सुनना चाहतीं, वे तो कृष्ण की ममता से बँधी हुई हैं । वे जानती हैं कि कृष्ण उन्हें नहीं त्यजेंगे । फिर वे कहती हैं कि कर्म का लेखा कौन बदल सकता है ?

अपने करम को वो छै दोस, काकूँ दीजे रे ऊधो आपणे ।
सुनियौ मेरी बगड़ पड़ोसण, गेले चलत लगी चोट ।।
पहली ज्ञान मान नहिं कीन्हों, मैं ममता की बाँधी पोट ।।
मैं जाण्यूँ हरि नाहिं तजेंगे, करम लिख्यो भलि पोच ।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारो नी सोच ।।[2]

मीरा की गोपियाँ तो अपने कर्म फल को दोष देती हैं । उन्हें कृष्ण से कोई शिकायत नहीं है । उनके अनुसार ज्ञान की बातों के लिए वे असमर्थ हैं, क्योंकि वे ममता से बँधी हुई हैं । फिर भी उन्हें अपने कृष्ण पर अटल विश्वास है कि वे उन्हें नहीं त्यजेंगे । मीरा स्वयं गोपी-भाव से मंडित हैं । इसलिए वे ही गोपी बनकर ये बातें कह रही हैं ।

गोपियाँ उद्धव के द्वारा अपनी स्थिति कृष्ण तक पहुँचाना चाहती हैं । वे उद्धव से कहती हैं -

---

1. रसखानि - 209
2. मीरा सुधा सिन्धु/व्रजभाव के पद - 689

कोजो उदा माधुजी से जाइ आई अर्ज गोपियन की ।।
सूख गया सखर उड गया हंसा रह गई निर्धन गार ।
कोई दिन हंसा मोती चुगता कोई दिन करे नीहार ।
अमृत वाणी जमुना को छोड्यो खारा म.ांद विये जाए ।।[1]

देखिए कृष्ण के विरह में गोपियों का तथा वृन्दावन का क्या हाल हो गया है । गोपियाँ चाहती हैं कि उद्धव जाकर कृष्ण को ये बातें समझाए तथा उन्हें जल्दी वापस लौटने को प्रेरित करे । ताकि वे अपने प्राण प्रिय कृष्ण को फिर से देख सकें ।

इस संदर्भ में ऐसे दो एक पद मिलते हैं जिससे पता चलता है कि सूर और मीरा ने एक दूसरे को प्रभावित किया है । सूर का एक पद है-

अँखियां हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यो चाहत कमल नयन कौं निस दिन रहत उदासी ।
आये ऊधो फिरि गये आँगन, डारि गये गर फाँसी ।
केसर तिलक मोतिन की माला, वृन्दावन के वासी ।
काहू के मन की कोउ जानत, लोगन के मन हाँसी ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को लेहौं करवत कासी ।।[2]

इसी से साम्य रखता हुआ एक पद मीरा में भी मिलता है -

अँखियाँ कृष्ण मिलन की प्यासी ।
आप तो जाय द्वारका छाये, लोग करत मेरी हाँसी ।
आम की डार-कोयलिया बोले, बोलत शब्द उदासी ।
मेरे तो मन ऐसी आवे करवत लोहौं कासी ।
मीरा के प्रभु गिरधर लाल, चरण कंवल की उदासी ।[3]

देखिए दोनों पद कितने मिलते जुलते हैं ।

---

1. मीरा सुधा सिन्धु/व्रजभाव के पद - 100
2. सूरसागर दशमस्कंध - पद 3358 {न.प्र.स.}
3. मीरा बृहत् संग्रह - वियोगाभिव्यक्ति - व्रजभाषा पद - 131

नारायणीयम् में नारायण कवि ने उद्धव लीला का चित्र हू-ब-हू भागवत की तरह ही खींचा है । इनकी गोपियाँ उद्धव की बात मान लेती हैं । उनसे वाद विवाद नहीं करती । उद्धव भी गोपियों से कृष्ण लीला की बातें सुनता रहता है । गोपियाँ जब प्रेमोन्मत्त होकर कृष्ण के लिए विलाप करती तो उद्धव उन्हें शांत करता है ।[1]

इस प्रकार विभिन्न कवियों ने विभिन्न प्रकार से भ्रमरगीत का वर्णन तथा गोपियों का चरित्र चित्रण किया । सूर की गोपियाँ ज्ञानोपदेश का खंडन करती हैं । उद्धव की बातों का कड़ा विरोध करती है तथा सगुण का मंडन करती है । उद्धव से वाद विवाद करती है । कृष्ण की हरेक लीला का ज्ञान उन्हें है । तुलसी की गोपियाँ सरल स्वभाव की है । उद्धव से वाद विवाद नहीं करतीं । उन्हें तो बस, सगुण कृष्ण अच्छे लगते हैं । तुलसी की गोपियाँ भी अच्छी जानकार हैं । रसखान की गोपियाँ ज्ञान की बातें सुनना नहीं चाहती । उनके लिए कृष्ण ही ठीक हैं । उनके अनुसार कृष्ण को जो अच्छा लगे वही होने दे । मीरा की गोपियाँ अपने कर्मफल को दोष देती है । वे कृष्ण से प्रेम करती हैं । इसलिए वे ज्ञान पाने की अधिकारी नहीं हैं क्योंकि उन्हें कृष्ण से ममत्व है । मीरा की गोपियों समझदार है । ज्ञान पाने के अधिकारी कौन है, यह वे अच्छी प्रकार जानती हैं । नारायण कवि की गोपियाँ उद्धव के ज्ञानोपदेश को मान लेती है । उनके बताये हुए रास्ते पर चलती है। फिर अपने सगुण कृष्ण की लीलाओं का गान भी करती हैं और उद्धव से भी करवाती है । वे उद्धव से वाद विवाद नहीं करतीं ।

कुब्जा वरण

यह कथा भागवत के दशमस्कंध के बयालीसवें अध्याय में आती है । हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व के सत्ताइसवें अध्याय, विष्णु पुराण

---

1. नारायणीयम् - 76 दशक/7

के पंचम अंश के बीसवें अध्याय में वर्णित है । श्रीकृष्ण-बलराम मथुरापुरी के राजमार्ग में जा रहे थे । वहाँ एक कुबडी अनुलेपन लेकर कहीं जा रही थी । वह कंस की दासी थी । कुब्जा ने अनुलेपन दोनों भाइयों को दिया । श्रीकृष्ण ने कुब्जा के अंगों को सीधा कर उसे परम सुन्दर रूप दिया । उस सुन्दरी ने काम पीडित होकर कृष्ण से उसके घर चलने को कहा ।

भागवत के दशमस्कंध के अठतालीसवें अध्याय में लिखा है कि श्रीकृष्ण उस सुन्दरी के घर गये और उसकी इच्छापूर्ति की । उसने कृष्ण से कुछ काल तक वहीं रहने का अनुरोध किया । लेकिन कृष्ण ने उसका अनुरोध इनकार किया और उसे मुँहमाँगा वर देके वहाँ से चले गये ।

यह कथा सूरसागर, तुलसीदास, मीरा, रसखान, नारायण कवि आदि ने प्रस्तुत की है ।

सूरदास ने भ्रमर गीत प्रसंग में कुब्जा वरण प्रसंग का संकेत किया है । "जो पै कुब्ज कुबरी रीझे"[1] कहकर गोपियों ने इसका संकेत किया है । एकाध पद में सूर ने कुब्जा वरण प्रसंग को चित्रित किया है ।

कहियत कुबिजा कूवन निवाजी ।
छुवत अटपटी चाल गई मिटि, नवसत कंचुकि साजी ।
मिली जाइ आगैं दरवाजैं, दै चंदन ठग बाजी ।
पायौ सुरति सुहाग सबनि कौ, बिमल प्रीति उपराजी
सुफल भयौ पच्छिलौ तप कीन्हौ, लखि सुरूप रति भाजी ।
जग के प्रभु बस किये सूर, सिर सकल सुहागिन गाजी ।[2]

---

1. सूरसागर सार - पृ. 293 - पद 80
2. सूरसागर - 4238

सूरदास कहते हैं कि कुब्जा पर कृष्ण ने अनुग्रह किया है । कृष्ण के छूते ही वे अत्यंत सुन्दर बन गई और उसकी कूमड अप्रत्यक्ष हो गयी । उसने कृष्ण को चंदन देकर अपनी ओर कर लिया और कृष्ण से प्रीति करने लगी । सूरदास कहते हैं कि कुब्जा ने अपने समक्ष अत्यंत सुन्दर कृष्ण को देखकर अपने तप को सफल समझा ।

यहाँ पर सूर ने कृष्ण के देवत्व के प्रभाव पर बल दिया है । कृष्ण के छूते ही एक अत्यंत कुरूप स्त्री रूपवती बन गयी । फिर सहज भाव से वह कृष्ण से प्रेम करने लगी । सूर के अनुसार कृष्ण "जग के प्रभु" हैं जिनके लिए संसार में कुछ भी करना असंभव नहीं है । इस पद में सूर ने श्रीकृष्ण को जगत् नियंता के रूप में चित्रित किया है ।

कुब्जा ने किस प्रकार कृष्ण को आकृष्ट किया इसका वर्णन तुलसी गोपियों के ज़रिए यों करते हैं -

लिए अपनाइ लाइ चंदन तन, कछु कटु चाह उडानी ।
जरी सुंधाइ कूबरी कौतुक करि, जोगी बधा-जुड़ानी ।।[1]

तुलसी ने कुब्जा वरण प्रसंग का संकेत मात्र किया है । लेकिन उनका भ्रमरगीत के अंतर्गत इसका वर्णन प्रभावात्मक रहा है । तुलसी का यह प्रयास सचमुच सराहनीय है ।

मीरा ने भी इस प्रसंग का संकेत अपने पदों में किया है ।

मथुरा में कुब्जा कर राखी महाजन जैसी हाट ।
केसर चन्दन लेपन कीना सुन्दर श्याम लिलाट ।।[2]

---

1. श्रीकृष्ण गीतावली - पद 47/2
2. मीरा सुधा सिन्धु/व्रजभाव के पद - 191

यह कहकर मीरा ने कुब्जा वरण प्रसंग की ओर इशारा किया है । "केसर चन्दन लेन कीना" वाली पंक्ति "लिए अपनाई लाइ चंदन तन" वाली तुलसी की पंक्ति से मेल खाती है । लगता है यहाँ मीरा पर तुलसी का प्रभाव पडा है ।

रसखान ने इस प्रसंग का वर्णन संकेत रूप में यों किया है - "जोग गयो कुबजा की कलानि में री कब ऐ हैं जसोमति मैया ।"[1] एक पंक्ति में इशारा मात्र करके रसखान ने इस प्रसंग को समेट लिया है ।

नारायण भट्टत्तिरी ने एक पद में कुब्जा पर की गयी कृपा का वर्णन किया है । नारायण कवि कहते हैं कि मार्ग में कृष्ण ने कमललोचना कुब्जा को देखा । उसने कृष्ण को बहुत अच्छा अङ्गराग दिया । तब कृष्ण ने भी उसके हृदय में अपने अङ्ग के प्रति महान् राग दे दिया । उसके चित्त में जो सरलता थी, उसे उसके शरीर में स्पष्टत: प्रकट करने के लिए कृष्ण ने अपने सुन्दर हाथ से उसका उचका दिया । फिर वह जगत्सुन्दरी हो गयी ।[2]

यहाँ नारायण कवि ने कुब्जा पर की गयी कृपा का वर्णन किया है । साथ साथ इस बात की ओर संकेत किया है कि अगर कोई

---

1. रसखानि - 208
2. कुब्जामब्जविलोचनां पथि पुनर्दृष्ट्वाङ्गरागे तया ।
   दत्ते साधु किलाङ्गरागमददास्तस्या महान्तं हृदि ।।
   चित्तस्थामृजुतामथ प्रथयितुं गात्रेऽपि तस्या: स्फुटं ।
   गृह्णन मञ्जुकरेण तामुदनयस्तावज्जगत्सुन्दरीम् ।।
   नारायणीयम् - 74/5

भगवान को प्रेम से कुछ अर्पित करता है तो भगवान उन्हें अपना बनाते हैं । गीता में भी यही बात व्यक्त की गयी है ।[1] इससे नारायण कवि ने जन जगत को यह संदेश दिया कि भगवान को जो कुछ भी अर्पित किया जाए, वह प्रेमभाव से किया जाए तभी भगवान उसे अपनाते हैं ।

इस प्रकार हिन्दी के कवियों ने एक या दो पंक्तियों में कुब्जा वरण प्रसंग को समेट लिया है । उसका अधिक वर्णन न करके भ्रमरगीत प्रसंग में गोपियों के उल्लेख के रूप में इसे दिया है । नारायण कवि ने हिन्दी कवियों की अपेक्षा कुछ अधिक वर्णन किया है । उन्होंने एक पद में कुब्जा पर की हुई कृपा का वर्णन किया है और दूसरे पद के दो पंक्तियों में उसके विरह का वर्णन किया है । नारायण कवि के वर्णन पर भागवत का प्रभाव देखा जा सकता है ।

निष्कर्ष

मध्यकाल में श्रीकृष्ण कथा पर आधारित अत्यंत व्यापक साहित्य रहा है । विभिन्न आचार्यों ने अपने अपने सिद्धांतों और अपनी इच्छा के अनुरूप कृष्ण कथा का वर्णन किया है । सूर ने कृष्ण की हर एक चेष्टा तथा लीलाओं का मनोमुग्धकारी वर्णन प्रस्तुत किया तो तुलसी ने कुछ चुने हुए प्रसंगों का वर्णन किया । मीरा और रसखान ने अपने इच्छा के अनुरूप कृष्ण लीला का गान किया । संस्कृत के कृष्ण भक्त कवियों ने तो अपने इशारे पर लेखनी चलाई । नारायण कवि ने ज़्यादात्तर भागवत के आधार पर ही कृष्ण लीला का अंकन किया, तो कुछ एक मौलिक श्लोक भी लिखे । बिल्वमंगल ने

---

1. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
   तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।
   गीता - 9/ 6

कृष्णकर्णामृत में अपने मनोविनोद के अनुकूल पदों की रचना की । सुकुमार कवि ने अपनी चुनी हुई लीलाओं का अपने ही अन्दाज़ में वर्णन किया है । जयदेव ने कुतूहल केली विलास कला के प्रेमियों के लिए कृष्णलीला का वर्णन किया । इन सभी कवियों के कृष्ण कथा चित्रण सहज, स्वाभाविक तथा प्रभावात्मक बन पड़े हैं । सब का आधार पौराणिक साहित्य ही रहा है, कथा की दृष्टि से कहीं कहीं समानताएँ एवं कहीं कहीं विषमताएँ भी मिलती हैं । कहीं कहीं कथा चयन में कवियों ने मौलिकता का भी परिचय दिया है ।

पाँचवाँ अध्याय

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्य तथा संस्कृत के कृष्ण काव्यों में

भक्ति तथा दर्शन

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष अपनी आध्यात्मिक जीवन दृष्टि के लिए सुप्रसिद्ध है । वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक भारत में ऐसे अने आचार्यों ने जन्म लिया जिन्होंने भगवान को परम सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित करके उसकी पूजा, आराधना की । कर्म मार्ग की नीरसता और ज्ञानमार्ग की दुरूहता से घबराकर सरल चित्तवाले आस्तिक लोगों ने भक्ति की शीतल छाया में शरण ली । भक्ति में अपनी सारी चित्तवृत्तियों को भगवान की ओर अग्रसर करना है ।

भक्ति क्या है ?

भक्ति शब्द "भज्" धातु से "क्तिन्" प्रत्यय लगाने से प्राप्त होता है । "भज" धातु का अर्थ है - सेवा, विभाग, विशेष अनुराग, उपचार, आराधना, भजन इत्यादि । भक्ति किसी भक्ति के अपने इष्ट देव के प्रति सदा अनन्य प्रेम रखने का नाम है । भक्ति की परिभाषा अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है । आचार्य रामानुज के अनुसार भक्ति पंडितों द्वारा स्नेह पूर्वक परमात्मा में ध्यान लगाना है ।[1] नारद भक्ति सूत्र के अनुसार, भक्ति, प्रेम-स्वरूपा है, अमृत स्वरूपा है ।[2] शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार ईश्वर में अतिशय अनुरक्ति ही भक्ति है ।[3] भक्ति रसामृत सिंधु के अनुसार क्लेशों का नाश करनेवाली कल्याणदायिनी, मोक्ष से भी महत्वपूर्ण, दुर्लभ गाढे आनन्द की विशेषता से युक्त और श्रीकृष्ण को आकर्षित करनेवाली वृत्ति ही भक्ति है ।[4] भक्ति परमप्रेमास्पद को निकटतम लाने का सहज साधन है ।

---

1. स्नेहपूर्वमनुध्यानम् भक्तिरित्युच्यते बुधैः - गीता पर रामानुज भाष्य 7 अध्याय श्लोक ।
2. सात्वस्मिन् परमप्रेमास्वरूपा । अमृतस्वरूपा च । - नारद भक्ति सूत्र अध्याय-। संख्या 2
3. सा परानुरक्तिरीश्वरे - शाण्डिल्य भक्तिसूत्र अध्याय-।, संख्या-2
4. क्लेशाघ्नि शुभदा मोक्ष लघुताकृत सुदुर्लभा ।
   सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा।।
   भक्ति रसामृत सिंधु - रूप गोस्वामी - 1.1.13

अन्य किसी अभिलाषा से शून्य ज्ञान और कर्म आदि से अनाच्छादित सर्वथा अनुकूल भावना से श्रीकृष्ण का अनुशीलन भक्ति है ।[1] सब मिलाकर कहा जा सकता है कि भगवान के अस्तित्व का बोध होने से या उनसे मिलने के बाद होनेवाले भगवत् विषयक राग भक्ति है । भक्ति में केवल चित्त वृत्तियों को भगवान मय बनाना ही है ।[2]

भागवत में कहा गया है कि आत्माराम मुनियों को भी भगवद् भक्ति अपनी ओर आकर्षित करती है ।[3] भगवान की भक्ति में मग्न रहनेवालों को ज्ञान और वैराग्य की आवश्यकता नहीं पड़ती ।[4] भक्ति तो उसी को प्राप्त होती है जो निष्काम और निरपेक्ष हो ।[5] वह अत्यंत दुर्बल और मुक्ति से भी बढ़कर है ।[6]

भक्ति के प्रकार

ईश्वर को लक्ष्य करके किया जानेवाला प्रेम भक्ति है । प्रेम भिन्न प्रकारों में प्रकट होता है । प्रमुख रूप से भक्ति के दो भेद है - पराभक्ति एवं गौणी भक्ति । सहज स्वाभाविक प्रेम की अवस्था पराभक्ति है । इसमें एकान्तिक प्रेम की प्रमुखता होती है । इसमें साधना स्वभाव

---

1. अन्याभिलषिताशून्यं ज्ञानकर्माधनावृतम्।
   आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।। भक्ति रसामृत सिंधु - 1.1.11
2. भक्ति रसायन - 1-3
3. भागवत - 1.7.10
4. वही - 11.20.31
5. वही - 11.20.35
6. वही - 6.7.18

बन जाता है । साधना का सहज संपन्न होना पराभक्ति का लक्षण है । पराभक्ति से सांसारिक बंधनों को मुक्ति संभव है । नारद ने पराभक्ति के ग्यारह प्रकारों का उल्लेख किया है । वे हैं - गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, संख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, कान्तासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति और परम विरहासक्ति ।[1] श्रीमद् भागवत के अनुसार भक्ति नौ प्रकार की है । वे हैं श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ।[2] चैतन्य संप्रदाय में पंचधा भक्ति को प्रधानता दी गयी है ।[3] फिर सामान्य भक्ति है, साधन भक्ति है, आर्त भक्ति है । इस प्रकार भक्ति अनेक प्रकार की है । दो व्यक्तियों की चित्तवृत्ति कभी भी समान नहीं होती । इसलिए भिन्न लोगों में भिन्न भिन्न रूप से भक्ति प्रकट होती है । अतः कहा जा सकता है कि जितने भक्त हैं उतनी ही प्रकार की भक्ति है ।

भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवि और संस्कृत के कृष्ण भक्त कवि

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने सूरदास का प्रमुख स्थान रहा है । उनके संपूर्ण साहित्य को भक्ति का साहित्य कहा जा सकता है । उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व मान लिया था । सूर ने पग पग पर भक्ति की महिमा का वर्णन किया है । उनकी भक्ति सख्य भक्ति थी । उन्होंने कृष्ण को सखा मानकर उनके प्रति अपनी भक्ति प्रकट की है ।

---

1. नारद भक्तिसूत्र - पंचम अध्याय - 82
2. श्रवणं कीर्तनं विष्णोस्मरणं पादसेवनम् ।
   अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।। भागवत् - 7/5/23
3. भक्तास्तु कीर्तिताः शान्तस्तथा दास सुतादयः ।
   सखायो गुरुवर्गश्च प्रेयस्यश्चेति पंचधाः ।।
   भक्ति रसामृत सिंधु

उनका कहना है "हरि सों" मीत न देख्यौ कोई ।"[1] उनका कृष्ण अनाथों के नाथ हैं ।[2] आपत्त काल के मित्र हैं । भ्रमर गीत में निर्गुण निराकार पर सगुण साकार की जीत दिखाकर, अपनी सख्य भक्ति की पुष्टि की है । नारद भक्ति सूत्र जैसे शास्त्रीय ग्रंथों में प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप उनके काव्यों में देखने को मिलता है । उनके लिए कृष्ण की भक्ति उनके प्राण थी । "तुम्हरी भक्ति हमारे प्रान" ।

मीरा और रसखान भी कृष्ण के अनन्य भक्त थे । मीरा ने कृष्ण को अपना प्रियतम मानकर उनकी भक्ति की है । उनकी भक्ति कान्ता भक्ति के अंतर्गत रखी जा सकती है । उन्होंने अपना सारा जीवन कृष्ण की भक्ति में बिता दिया । रसखान तो भक्ति "रस" के "खान" कहे जाते हैं । उन्होंने कृष्ण को अपना सखा मानकर उनकी भक्ति की है । उनके सवैये कृष्ण भक्ति से ओतप्रोत हैं । तुलसीदास ने राम भक्त होते हुए कृष्ण भक्ति पर कृष्णगीतावली की रचना की । इसमें तुलसी ने अपनी दास्य भक्ति प्रतिपादित की है । उन्होंने इसमें कृष्ण को राम का ही दूसरा रूप मानकर उनकी पूजा अर्चना की है ।

संस्कृत के नारायण कवि ने नारायणीयम् में भक्ति की महिमा को स्वीकार किया है । वे कहते हैं -

ज्ञानं कर्मापि भक्तिस्त्रितयमिह भवत्प्रापकं तत्र ताव-
न्निर्विण्णानामशेषे विषय इह भवेज्ज्ञानयोगेऽधिकारः ।
सक्तानां कर्मयोगस्त्वयि हि विनिहितो ये तु नात्यन्तसक्ता
नाप्यत्यन्तं विरक्तास्त्वयि च धृतरसा भक्तियोगो ह्यमीषाम् ।।[3]

---

1. गोविन्द गाढ़े दिन के मीत - सूरसागर - 1/31
2. नाथ अनाथन ही के संगी - सूरसागर - 1/20
3. नारायणीयम् - 96/4

अर्थात् ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग - ये तीनों ही भगवान की प्राप्ति करानेवाले हैं । इनमें जिनका समस्त विषयों में विराग हो गया है, वे ज्ञान योग के अधिकारी हैं । जो विरक्त नहीं हुए हैं, उनका भगवदर्पण बुद्धि से किया जानेवाला कर्म कर्मयोग के अंतर्गत आता है । किन्तु जो न तो विषयों में अत्यन्त आसक्त हैं न अत्यन्त विरक्त ही, परन्तु भगवान की कथा आदि में श्रद्धा रखनेवाले हैं, उनके लिए भक्तियोग ही काम्य है । यह कहकर नारायण कवि ने भक्ति पर अपना दृढ़ विश्वास जमाया हुआ है । नारायणीयम् में कवि आर्त भक्त हैं ।[1] अतः उनके प्रलापों में निःश्छलता, सच्चाई, गहराई तथा प्रभावात्मकता उभरकर आया है । बिल्वमंगल स्वामी या लीलाशुक भी कृष्ण के पहुँचे हुए भक्त थे । उनकी भक्ति तो उनके काव्य में अबाध रूप से बहती चली गयी । वे कृष्ण की स्तुति करते करते थकते ही नहीं । उनके अनुसार संसार में ग्रहण करने योग्य सिर्फ दो ही तत्व हैं - §1§ कृष्ण के पादारविन्द की सेवा और §2§ कृष्ण का सतत ध्यान ।[2] जयदेव कवि ने कृष्ण को लीला और भक्ति को इतना मिला दिया है कि पता नहीं चलता कि उनके काव्य में लीला तत्व अधिक है या भक्ति । बस इतना कहा जा सकता है कि उनके गीतगोविन्द की हर एक पंक्ति में कृष्ण भक्ति रस कूट कूट कर भरा हुआ है । श्रीकृष्णविलास काव्य के सुकुमार कवि कृष्ण के परम भक्त थे । उनकी भक्ति आर्त भक्ति के अंतर्गत रखी जा सकती है । उनके कृष्ण विष्णु के अवतार है, पुरातन तथा पुराण पुरुष हैं, अंतर्यामी हैं । उन्होंने अपने काव्य में भक्ति को यथासंभव स्थान दिया है ।

---

1. चतुर्विधा भजते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
   आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।
   गीता - 7/16
2. कृष्णकर्णामृत - 2/79

भक्ति का स्वरूप

भक्ति अनिर्वचनीय है । भक्ति के भाव, विचार और आचरण से भक्ति का स्वरूप स्पष्ट होता है । भक्त की अनुभूतियाँ भक्त के स्वरूप को समझने के लिए सहायक होती हैं । प्रेम, भक्ति का प्रमुख अंग है । निष्काम प्रेम भक्त को भक्ति के रंग में रंगा देता है । अपने आराध्य के लिए सब कुछ त्यागना, उसी का स्मरण करते रहना, उसी से रागात्मक संबंध स्थापित करना प्रेमा भक्ति का लक्षण है । कृष्ण की प्रेमा भक्ति में सारे मानवीय मनोरागों के साथ पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण से संबंध स्थापित किया जाता है । प्रेमा भक्ति का अत्युत्कृष्ट उदाहरण व्रज की गोपियाँ हैं ।

भक्ति में अनन्यता है

भक्ति में एक प्रकार की अनन्यता देखी जाती है । परम प्रेमरूपा भक्ति में भगवान के प्रति एकनिष्ठ प्रेम होता है । प्रेमा भक्ति पाकर भक्त सब जगह भगवान को ही देखता है, उसी को सुनता है, उसी के बारे में बोलता है, और उसी की चिन्ता करता है ।[1] साधन काल में अनन्यता की सख्त ज़रूरत है । दूसरे आश्रयों को छोड एकमात्र आश्रय भगवान को मानना अनन्यता है ।

इस अनन्यता का स्वरूप हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियों और संस्कृत के कवियों ने अच्छी तरह उकेरा है ।

कृष्ण यमुना तट पर वंशी बजा रहे हैं । मुरली वादन सुनकर गोपियाँ अपना सब कुछ छोडकर प्रियतम कृष्ण के पास चली आती हैं ।

---

1. तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति
तदेव भाषयति तदेव चिंतयति ।।
नारद भक्ति सूत्र - 55

सूरदास का चित्रण देखिए -

घर डर बिसरयौं बढ़यौं उछाह ।
मन चीतौं पायौं हरि नाह ।।
दूध पूत की छाँडि आस ।
गोधन भर्ता करे निरास ।।
साँचौं हित हरि सौं कियौं ।
खान पान तनु की न सम्हार ।
हिलग छँडायौं गृह व्यवहार ।।
सुधि बुधि मोहन हरि लई ।।[1]

देखिए गोपियों की प्रेम की व्याकुलता और अनन्यता । गोपियों ने कृष्ण से मिलने के लिए पति, पुत्र, धन-दौलत, खान-पान तथा सब कुछ त्याग दिया । इससे सूर इस बात की ओर संकेत करते हैं कि वे ही सच्चे भक्त हैं जो अपना सब कुछ त्यागकर भगवान के पास चला आता है । तुलसी की गोपियों का भी यही हाल है । वे कृष्ण से मिलने के लिए अपने पिता, पति और पुत्र को त्यागकर भागती हुई कृष्ण के पास चली आती हैं ।

जदुपति मुख छबि कलप कोटि लगि
कहि न जाइ जाके मुख चारी ।
जेहि निरखि ग्वालिनी
भजीं तात पति तनय बिसारी ।।[2]

यही तुलसी की गोपियों की अनन्यता है । कृष्ण दीवानी गोपियाँ ये मानती हैं कि भगवान कृष्ण ही उन्हें संसार भय से मुक्त करा सकते हैं । सूर और तुलसी के इस चित्रण में भाव साम्य मिलता है । मीरा की भक्ति की अनन्यता तो देखिए - मीरा कहती है कि उनका इष्ट गिरिधर

---

1. सूरसागर - पद 1180
2. कृष्णगीतावली - 22

गोपाल ही है अन्य कोई नहीं हैं । उन्होंने श्रीकृष्ण के लिए भाइयों, बन्धुओं, और सगे संबंधियों को छोड़ दिया । मीरा कहती है कि उन्होंने रो-रोकर प्रेम बेल को विकसित किया है । उन्होंने संसार को मथकर कृष्ण भक्ति प्राप्त की है । यहाँ तक कि राणा का भेजा हुआ विष भी कृष्ण के लिए मीरा ने ग्रहण किया ।[1]

रसखान की गोपियाँ कृष्ण की बाँसुरी सुनकर रह ही नहीं पाती । उनकी हालत तो देखिए -

बजी है बजी रसखानि बजी सुनिकें अब गोपकुमारि न जीहैं ।
न जीहैं कोऊ जो कदाचित कामिनी कानि मैं वाकी जु तान कु पी है ।।
कु पीहैं बिदेस सँदेस न पावति मेरी वे देह को मैन सजी है ।
सजी है तो मेरो कहा बास है सु तौ बैरिनि बाँसुरी फेरि बजी है ।[2]

लीलाशुक की गोपियाँ कृष्ण प्रेम में इतनी पागल है कि वे अपने आप को भूल गयीं । एक गोपी दही और दूध बेचने गयी थी । लेकिन उनका मन कृष्ण में ही अनन्य रूप से लगा हुआ था । वह गलियों में दही और दूध पुकारने के बजाय गोविन्द, दामोदर और माधव कहने लगी ।

विक्रेतुकामा किल गोपकन्या
मुरारिपादार्पित चित्तवृत्तिः ।
दध्यादिकं मोहवशादवोचत्
गोविन्द दामोदर माधवेति ।।[3]

यहाँ गोपियों की अनन्य भक्ति की मिसाल है । देखिए कृष्ण प्रेम में वो कैसे अपने आप को भूलती हैं ।

---

1. मीरा की पदावली - पृ. 185
2. रसखान रचनावली - 53
3. कृष्णकर्णामृत - 2/55

नारायण कवि अपने नारायणीयम् में गोपियों की अनन्य भक्ति का उदाहरण पेश करते हुए कहते हैं कि गोपियाँ कृष्ण की बाँसुरी बजाने की घटना का चिन्तन करके मोहित हो जाती थीं।[1] गोपियाँ तो अपने घर-बार, संसार की चिंता छोडकर, कृष्ण की चिंता करती थीं। उनकी भक्ति इतनी प्रगाढ़ थी कि वे अपनी चिंता छोडकर श्रीकृष्ण की चिन्ता में डूबी हुई थीं।

भक्ति समर्पण स्वरूपा है

भक्ति समर्पण स्वरूपा है। समर्पण अनन्य प्रेम का परिचायक है। प्रेमी अपना सब कुछ प्रियतम के लिए न्योछावर करता है। सच्चा प्रेम तभी चरितार्थ होता है। अपना सब कुछ भगवान पर अर्पण करना, भगवान का थोडा सा भी विस्मरण होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है। भक्ति का चरम लक्ष्य आत्मसमर्पण है।

श्रीकृष्ण मथुरा चले जाते हैं। गोपियाँ उनके विरह में तड़पती हैं। गोपियाँ अपना सब कुछ श्रीकृष्ण के लिए समर्पित करती हैं। कृष्ण के बिना वे अपने आप को अनाथ मानती हैं। अपना सुख चैन सब लुटा देती हैं। तभी तो कृष्ण विरह में तड़पती हैं। सूर की गोपियों की हालत ऐसी हैं -

प्राननाथ तुम बिन ब्रजबाला ह्वै गई सबै अनाथ।
व्याकुल भई मीन सी तलफत छन छन मींजत हाथ।।
गृहपति - सुत हितु अनुचर को सुत राजत रहत हमेस।
जलपति भूषन उदित होत ही पारत कठिन कलेस।
कुंज पुंज लखि नयन हमारे भंजन चाहत प्रान।
"सूरदास" प्रभु परिकर अंकुर, दीजै जीवनदान।।[2]

---

1. नारायणीयम् - 59/6
2. सूर पंचरत्न - भ्रमरगीत पद 103

गोपी प्रेम की व्याकुलता तो देखिए - कृष्ण के बिना गोपियाँ अनाथ हो गयीं । मछली की तरह व्याकुल होकर छटपटाती रहती है । चाँद को देखकर उनकी हालत और बिगड जाती है । उनके प्राण तो छोडकर नहीं जाते यही उनकी दुविधा है । वे कृष्ण से जीवन दान देने की बात करती हैं ।

तुलसी की गोपियों की हालत ऐसी है -

संतत दुखद सखी । रजनीकर ।
स्वरथ रत तब, अबहुँ एकरस, मोको कबहुँ न भयो ताप हर ।
जिन अंसिक सुख लागि चतुर अति, कीन्हीं है प्रथम निसा सुभ सुन्दर ।
अब बिनु मन, तन दहत दया तजि, राखत रबि ह्वै नयन बारिधर ।।[1]

तुलसी की गोपियों को कोई शिकायत है तो बस इतनी ही कि उनके प्राण श्रीकृष्ण के विरह में निकलते नहीं । अभी वे जीवित हैं । उन्होंने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है -

"जो न गए प्रीतम सँग प्रानत्यागि तनु न्यारा ।"[2]

यह प्रेम और आत्मसमर्पण की पराकाष्ठा नहीं है तो और क्या है ?

सूरदास और तुलसीदास के गोपियों के चित्रण में भाव साम्य देखा जाता है । रसखानि की गोपी को कृष्ण के बिना सुख चैन है ही नहीं । उनको देखे बिना उसे न भूख लगती है न प्यास ।

मोहन सों अटक्यो मनु री कल जाते परै सोइ क्यों न बतावै ।
व्याकुलता निरखे बिन मूरति भागति भूख न भूषन भावै ।।
देखें ते नेकु सम्हार रहै न तबै हतुकि के लखि लोग भजावैं ।
चैन नहीं रसखानि दुहूँ बिधि भूली सबै न कछू बनि आवै ।।[3]

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 3।
2. वही
3. रसखान रचनावली - 209

यही रसखान की गोपियों का हाल है । किसी ने सच ही कहा है कि प्रेमी को प्रियतम से मिला बिना चैन नहीं आता । उनको न भूख-प्यास सताएगी न आभूषण भाएँगे । प्रियतम के विरह में तड़पते हुए, उनसे जल्दी मिलने की आकांक्षा ही रहेगी ।

कृष्ण के बिना कृष्ण दीवानी मीरा की हालत तो और भी शोचनीय है । मीरा को कृष्ण के बिना नींद आती ही नहीं, उसे हमेशा विरह सताता रहता है । कृष्ण के बिना मीरा के मन में अंधेरा छाया रहता है ।

रमैया बिन नींद न आवै ।
नींद न आवै विरह सतावै प्रेम की आँच ढुलावै ।।
बिन पिया जोत मंदिर अंधियारो, दीपक दाय न आवै ।
पिया कब रे घर आवै ।।[1]

देखिए मीरा का समर्पण भाव । इस समर्पण भाव से उनकी भक्ति और निखर उठी है ।

नारायण कवि अपने नारायणीयम् में कृष्ण कथा का वर्णन करते करते कृष्ण के प्रति अपना समर्पण भाव व्यक्त करते रहते हैं । हरेक दशक के अंत में वे अपनी रक्षा करने के लिए भगवान कृष्ण से बिनती करते रहते हैं । उनकी गोपियों ने तो अपने आप को संपूर्ण रूप से कृष्ण के हवाले किया था । रास क्रीडा के समय कुछ गोपियाँ परवश होने के कारण घर से बाहर न निकल सकीं । उन गोपियों ने हृदय में दृढतापूर्वक भगवान की ही भावना करके देह त्याग कर अद्वितीय परम चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म को प्राप्त किया ।

---

1. मीरा की पदावली - 74

काश्चिद् गृहात् किल निरेतुमपारयन्त्य-
स्त्वामेव देव हृदये सुदृढं विभाव्य ।
देहं विधूय परचित्सुखरूपमेकं
त्वामाविशन् परमिमा ननु धन्यधन्याः ।।[1]

जयदेव कवि की राधा अपने आप को प्रियतम कृष्ण को समर्पण करती है । वह अपना तन, मन और सब कुछ कृष्ण के सुख के लिए देने में हमेशा तत्पर रहती है । राधा का कृष्ण के प्रति अनुराग और उसका सर्वात्मसमर्पण जन-मानस को छूता है ।

भक्ति में अविस्मृति है

भक्ति में स्मरण की प्रमुखता है । श्रीमद् भागवत में भगवान ने भक्ति को "अविच्छिन्न मनोगति"[2] कहा है । भक्ति में भगवान का निरंतर स्मरण समा रहता है ।

सूरदास की गोपियाँ कृष्ण के मथुरा चले जाने पर उनका निरंतर स्मरण करती रहती हैं । हरि को रूप माधुरी का वर्णन करते करते वे थकती ही नहीं -

हरिमुख किधौं मोहनी माई ।
बलत वचन मंत्र सो लागत गति मति जात भुलाई ।।
कुटिल अलक राजत भ्रुव ऊपर जहँ तहँ रही बगराई ।
स्याम फाँसि मन करष्यो हमरो अब समझती चतुराई ।।
कुंडल ललित कपोलन झलकत इनकी गति में पाई ।[3]

तुलसी की गोपियाँ भी इसी प्रकार कृष्ण का स्मरण करती रहती हैं -

---

1. नारायणीयम् - 65/7
2. श्रीमद्भागवत - 3/29/11
3. सूर पंचरत्न - 3/5

घनश्याम काम अनेक छबि लोकाभिराम मनोहरं
किंजल्क वसन किसोर मूरति भूरि गुन करूनाकरं ।।
सिर केकि पच्छ बिलोल कुंडल अरून तनरूह लोचनं
गुंजावतंस विचित्र सब अँग धातु, भव भय मोचनं ।।
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयंक समाननं ।[1]

इसी प्रसंग पर रसखान ने भी अपनी लेखनी चलाई है । उनकी गोपियों की स्मरण भक्ति को ज़रा देखिए -

मोरपखा सिर काननि कुंडल कुंतल सों छबि गंडन छाई ।
बंक बिसाल रसाल बिलोचन मोहन है दुखमोचन माई ।।[2]

मीरा का समस्त साहित्य स्मरण भक्ति के उदाहरणों से भरा पड़ा है । मीरा तो निरंतर कृष्ण का ध्यान करती ही रहती है । वह तो कृष्ण की रूप माधुरी पर मुग्ध है ।

म्हा मोहणरो रूप लुभाणी ।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बाँकाँ चितवण णेणाँ समाणो ।
जमणा किनारे कान्हा धेनु चरावाँ, वंशी बजावाँ मीठाँ वाणी ।
तन मन गिरिधर पर वाराँ, चरण केवल तिलमाणी ।[3]

स्मरण दो प्रकार के होते हैं नाम स्मरण और रूप स्मरण । श्रीकृष्ण भक्ति में ज्यादात्तर रूप स्मरण ही देखा जाता है । नाम स्मरण भी है लेकिन बहुत ही कम ।

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 23
2. रसखान रचनावली - 252
3. मीरा की पदावली - ।।

संस्कृत के नारायण कवि ने भी नारायणीयम् में गोपियों की कृष्ण के प्रति अविस्मृति इस प्रकार व्यक्त की है । उनका कहना है कि कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद गोपियाँ सारा गृह कार्य करते समय कृष्ण की लीलाओं का ही निरंतर गान किया करती थी । वे आपस में कृष्ण की ही बातें कहती-सुनती थीं । यहाँ तक कि स्वप्न में भी उनके मुँह से वही बात निकलती थी । उनके सारे व्यापार कृष्ण के अनुकरण रूप ही होते थे ।

"त्वत्प्रोद्गानैः सहितमनिशं सर्वतो गेहकृत्यं
त्वद्वार्तैव प्रसरति मिथः सैव चोत्स्वापलापाः ।
चेष्टाः प्रायस्त्वदनुकृतयस्त्वन्मयं सर्वमेवं ।।"[1]

बिल्वमंगल स्वामी की कृष्ण भक्ति अनूठी भी है और निराली भी । वे निरंतर कृष्ण स्मरण में डूबे ही रहते हैं । सुबह-शाम कृष्ण की रूप माधुरी की एक एक छटा का स्मरण करते रहते हैं । सुबह वे दही के मथने की आवाज़ से जागते हुए कृष्ण का स्मरण करते हैं । नींद से जागते ही जिसका कमल जैसा मनोहर मुख बहुत ही चित्ताकर्षण रूप धारण करता है । कृष्ण का शरीर, बेदाग और बहुत खूबसूरत है । वे नवनीतचोर है और उनकी आँखें कमल जैसी है और देखनेवालों को अघानेवाली हैं ।

प्रातः स्मरामि दधिघोषविनीतनिद्रं
निद्रावसानरमणीयमुखारविंदम् ।
हृद्यानवद्यवपुषं नयनाभिराम-
मुन्निद्रपद्मनयनं नवनीतचोरम् ।।[2]

कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करके कवि ने इस ब
ओर संकेत किया है कि कृष्ण नवनीत चोर है । नवनीत मधुर तथा व
जिसका हृदय नवनीत जैसा हो उसका हृदय भगवान चुराते हैं ।

---

1. नारायणीयम् 76/8
2. कृष्णकर्णामृतम् - 3/88

जयदेव कवि ने गीतगोविन्द में कृष्ण के बिना तड़पती राधा की अविच्छिन्न मनोगति का अच्छी तरह वर्णन किया है । राधा कृष्ण के विरह में कस्तूरी से उनका चित्र खींचती रहती है । वह कृष्ण का स्मरण करती हुई उनके प्रत्येक भाव को चित्र में उकेरती रहती है । इतना करके वे कृष्ण को उस आकृति को प्रणाम करती रहती है ।[1]

यह राधा के स्मरण भक्ति का उदाहरण माना जा सकता है । सुकुमार कवि के नन्द गोप का हाल तो देखिए - नन्दगोप रात-दिन अपने अरविन्द नयन पुत्र कृष्ण का मुख सौंदर्य निहारकर अत्यंत संतुष्ट होते थे । इस प्रकार हर समय पुत्र का मुख देखते रहने से उनसे कुछ काम ही नहीं हो पाता था ।[2]

भक्ति उपास्य सुखापेक्षी है

भक्ति हमेशा उपास्य को सुख पहुँचानेवाली होती है । उस प्रियतम के सुख में अपना सुख मानने का भाव इसमें निहित है । इसे "तत्सुखसुखित्वम्" भी कहा जाता है । माखन चोरी के प्रसंग में जब यशोदा मैया कन्हैया को डाँटती है तो गोपियाँ उसे रोकती है । वे श्रीकृष्ण को संतुष्ट करने के लिए अपना नुकसान भी भूल जाती है । यह प्रसंग सूरदास, तुलसीदास, नारायण कवि आदि ने अच्छी तरह उकेरा है । जयदेव कवि की राधा अपने प्रियतम कृष्ण को खुश करने के लिए अपना अपमान भी भूल जाती है ।

सुकुमार कवि की यशोदा तथा नन्द हर वक्त अपने पुत्र कृष्ण की सुख की चिंता में रात-दिन बिताते हैं । शकटासुर के वध के बाद यशोदा शीघ्रता से दौड आकर कृष्ण के पाव,जो स्वाभाविक ही लाल थे,

----

1. गीतगोविन्द - 4/5

2. श्रीकृष्णविलास काव्यं - श्लोक 27

अपने आँचल से पोंछने लगती हैं; यह सोचकर कि उनके पाँव से रक्त बह रहा हो । कृष्ण को कोई दर्द न हो, कोई तकलीफ़ न हो यही सोचती रहती है । कृष्ण हमेशा खुश रहे, यही सयशोदा की कामना है ।

भक्ति निष्काम रूपा है

भक्ति लौकिक कामनाओं से रहित होती है । भक्त भगवान से प्रतिग्रह के रूप में कुछ नहीं चाहता । वह तो सिर्फ भगवान का भजन करना चाहता है । भक्त के मन में कामनाओं का नितांत अभाव रहता है । अगर भगवान भक्त की ओर ध्यान देता भी प्रतीत नहीं होता तो भी कोई बात नहीं । भक्त कुछ भी गौर किए बिना भगवान को भजता और स्मरण करता ही रहता है क्योंकि भगवान उसे अच्छे लगते हैं ।

भगवान कृष्ण मथुरा चले जाते हैं । जाते समय एक बार भी गोपियों की ओर वे मुड़के भी नहीं देखते । जिन गोपियों के संग वे इतने दिन तक रहे, बड़े हुए, खेले, हँसे, विविध लीलाएँ की, उनको देखे बिना ही चले गये । फिर भी गोपियों ने उन्हें छोड़ा नहीं । वे उन्हें भजती ही रहती हैं । सूरदास, तुलसीदास, रसखान, नारायण कवि आदि ने इसका वर्णन अपने काव्य में किया है । मीरा और बिल्वमंगल स्वामी कृष्ण का दर्शन पाने के लिए निरंतर भजते ही रहते हैं । वे ऐसा नहीं करते कि एक दो बार दर्शन के लिए अनुरोध किया, कृष्ण ने दर्शन नहीं दिया इसलिए उदास होकर उनसे अनुरोध करना ही छोड़ दिया । सभी कठिनाइओं को झेलकर वे निरंतर कृष्ण की सेवा में लगे रहते हैं । यही उनकी निष्काम भक्ति का प्रमाण है ।

---

1. श्रीकृष्णविलास काव्यं - श्लोक 3/36

भक्ति शांति तथा अमृत स्वरूपा है

भक्ति से मन एकाग्र होता है, शांति मिलती है । मानसिक शांति भक्ति का लक्षण है । भक्ति अमृत स्वरूपा भी है । सूरदास का कहना है कि भगवान की लीला तथा गुण गान में अमृत रस भरा पड़ा है जिसे पीना ही चाहिए -

"लीला गुन अमृत रस स्रवननि पुट पीजै ।"[1]

तुलसीदास कहते हैं कि कृष्ण चरित का गान करके उन्होंने अमृत रस पाया है -

गाइ जो अमिय रस तुलसिहूँ पियो है ।[2]

रसखान ने भी कृष्ण लीला गान में अमृत रस चखा है -

रसखानि सरूप सुधारस छ्कयौ ।[3]

मीरा के अनुसार उनके कृष्ण को बजने से सुख तथा शांति मिलती है । वह संत तथा भक्तों को सुख शांति प्रदान करनेवाले हैं -

मीराँ प्रभु संतन सुखदायाँ ।[4]

बिल्वमंगल स्वामी का कहना है कि कृष्ण की प्रमुख विशेषता उनकी रसिकता है । जो लोग रसिक प्रिय है उनके मनों को मुग्ध कर कृष्ण अमृत रस का पान करा देता है ।[5]

भक्ति परमानन्द स्वरूपा है

भक्ति परम आनन्द प्रदान करती है । भक्ति विषय भोग से प्राप्त आनन्द से भिन्न है । विषय भोग का आनन्द क्षणिक होता है ।

1. सूरसागर - 1/72
2. कृष्णगीतावली - 16
3. रसखान रचनावली - 24
4. मीरा की पदावली - 3
5. कृष्ण कर्णामृत - 3/62

भक्ति का आनन्द तो परमानन्द होता है । एक बार भक्ति का आनन्द लगने पर कोई भी उसे नहीं छोड़ता । भक्ति से सब सुखों की पूर्ति होती है इसीलिए उसे परमानन्द स्वरूपा कहा गया है । सूरदास का कहना है कि भगवान का प्रेम पूर्वक सुमिरन करते करते उन्हें परमानन्द प्राप्ति हुई है ।[1] कृष्ण दीवानी मीरा भी अपने प्रियतम का यश गाते गाते परमानन्द में लीन हो गयी । तुलसी की गोपियाँ भी कृष्ण का स्मरण करते करते परमानन्द में लीन हो जाती हैं । नारायण कवि का कहना है कि कृष्ण ने गोपिकाओं को रासक्रीडा के ज़रिए पूर्णानन्द रसामृतसागर का पान कराया ।

कामिनीरिति हि यामिनीषु खलु कामनीयकनिधे भवान्
पूर्णसम्मदरसार्णवं कमपि योगिगम्यमनुभावयन् ।[2]

बिल्वमंगल स्वामी के अनुसार कृष्ण साक्षात् मूर्तिमान ब्रह्मानंद है ।[3] जो उनका सेवन करते हैं उन्हें परमानन्द की प्राप्ति होती है ।

भक्ति सगुण से ही संभव है, निर्गुण से नहीं । गोपियाँ श्रीकृष्ण की भक्ति में इतनी डूबी हुई हैं कि वे श्रीकृष्ण के निर्गुण स्वरूप को मानने के लिए तैयार ही नहीं होती । सूरदास जी का कहना है कि अव्यक्त ब्रह्म की गति का वर्णन करते नहीं बनता । वह मन और वाणी के लिए अगम्य एवं इन्द्रियों के लिए अग्राह्य है । ऐसा ब्रह्म का ध्यान करते नहीं बनता । ऐसे निर्गुण ब्रह्म को सभी प्रकार से अगम्य समझा जाता है, इसीलिए सूर उसके सगुण रूप का गान करते हैं ।[4] तुलसी की गोपियाँ भी निर्गुण की अपेक्षा सगुण को भजती है । मीरा, रसखान, नारायण कवि, बिल्वमंगल स्वामी, जयदेव कवि तथा सुकुमार कवि सभी कृष्ण के सगुण रूप के उपासक थे ।

इस प्रकार हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्यों और संस्कृत के कृष्ण काव्यों में भक्ति के विविध रूप देखने को मिलते हैं ।

---

1. सूरसागर - 1/83
2. नारायणीयम् - 69/11
3. कृष्णकर्णामृतम् - 3/64
4. सूरसागर - 1/2

भक्ति के प्रकार

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भक्ति को परिभाषा देते हुए कहते हैं श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है । जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों में साक्षात्कार की वासना हो तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए ।[1]

नारद भक्तिसूत्र के अनुसार भक्ति के ग्यारह प्रकार माने गये हैं । वे हैं गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, कान्तासक्ति, तन्मयासक्ति, परमविरहासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति । भक्तिकालीन कृष्ण काव्यों और संस्कृत के कृष्ण काव्यों में इन ग्यारह प्रकारों के निम्नलिखित रूप स्पष्ट देखे जा सकते हैं ।

गुण माहात्मयासक्ति:

ईश्वर के रूप को भक्ति का आलंबन बनना सरल है । इसीलिए अधिकतर ग्रंथों में सगुण की उपासना पर बल दिया गया है । व्यक्त की आराधना अव्यक्त की आराधना से कहीं अधिक श्रेयस्कर है । गुण और श्रवण-भक्ति के मूल में यही भाव अंतर्हित है । सत्कर्मों का लक्ष्य भी भगवत् गुणों का कीर्तन कहा गया है ।

गुण और माहात्म्य की ओर आकर्षित होकर को जानेवाली भक्ति गुण माहात्म्यासक्ति के अंतर्गत आती है । इससे मुक्ति तक संभव है । इसका उदाहरण यज्ञ पत्नियाँ है । एक बार कुछ ब्राह्मण मिलकर यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे । उनकी पत्नियों ने कृष्ण के गुण और माहात्म्य सुन रखे थे । एक दिन कृष्ण गोचारण के लिए वन चले गये थे । दुपहर के समय गोप बालों को यज्ञ पत्नियों के पास भेजकर भोजन मँगा लिया । कुछ यज्ञ पत्नियाँ

---

1. चिन्तामणि - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 32

कृष्ण दर्शन की लालसा से उनसे मिलने के लिए चली आयी । लेकिन कुछ यज्ञ पत्नियाँ उनके पति के न भेजने से कृष्ण दर्शन का लाभ उठा नहीं पायी । उन्होंने तत्काल कृष्ण विरह में अपने प्राण छोड दिये ।

इसका वर्णन सूरदास और नारायण कवि ने किया है । सूर ने पद 800 - पद 808 तक इसका वर्णन किया है । नारायण कवि ने 61 वें दशक में इसका वर्णन किया है ।

मीरा के आराध्य प्रभु अनन्त गुणवान हैं । वे कृपानिधान है । भक्तों का रक्षण करनेवाले हैं । वे अनन्त गुणों की राशि है । वे संतों को सुख देनेवाले हैं । उनके गुण और माहात्म्य अवर्णनीय है । बिल्वमंगल स्वामी तो सदा ही श्रीकृष्ण के गुण तथा माहात्म्य कथन में जुडे रहते हैं ।

रूपासक्ति:

भगवान का रूप मनमोहक तथा चित्ताकर्षक है । इसे देखने के लिए भक्त सदा ललायित रहते हैं । रूप दृष्टिगोचर होने पर मुग्ध हो जाते हैं ।

रूप और सौंदर्य की ओर आकर्षित होकर की जानेवाली भक्ति को रूपासक्ति कहते हैं । इसका उत्तम उदाहरण व्रज की गोपियाँ हैं । गोपियाँ श्रीकृष्ण के रूप और सौंदर्य की ओर आकर्षित होकर भगवान से भक्ति करने लगती है । वे भगवान की ओर इतनी आकर्षित हो जाती है कि अनजाने ही उनका गुणगान करने और भक्ति करने लगती है । सूरदास की एक गोपी दूसरी गोपी से इस प्रकार कृष्ण का सौंदर्य वर्णन करती है -

मैं बलि जाऊँ स्याम मुख छबि पर ।
बलि बलि जाऊँ कुटिल कच बिथुरे बलि लिलाट भृकुटी पर ।
बलि बलि जाऊँ चारु अवलोकनि बलि बलि कुंडल रबि की ।

बलि बलि जाऊँ नासिका सुललित बलिहारी वा छबि की ।।
बलि बलि जाऊँ अरुन अधरन की बिद्रुम बिंब लजावन ।
मैं बलि जाऊँ दसन चमकनि की वारौं तडितनि सावन
मैं बलि जाऊँ ललित ठोड़ी पर बलि मोतिनि कि माला ।
सूर निरखि तन मन बलिहारौं बलि बलि जसुमति लाला ।।[1]

यहाँ सूर की गोपियाँ कृष्ण के हरेक अंग और अलंकार पर बलिहारी हो जाती हैं । यहाँ तक कि उनके तन और मन भी कृष्ण पर न्योछावर कर देती है । सूर ने इस बात की ओर संकेत किया है कि भगवान का सौंदर्य इतना है कि उन पर जो भी न्योछावर किया जाय वह कम है तथा गोपियों की आसक्ति इतनी है कि वे सब कुछ कृष्ण पर लुटाती हैं ।

तुलसी की गोपियाँ श्रीकृष्ण की अलकावली लोचन, सुन्दर कपोल, श्रुतिमंडित कुंडल आदि पर अपने को वार देती है । श्रीकृष्ण के ऐसे त्रैलोक्यविमोहन रूप का वर्णन को त्रिविध ताप को मिटानेवाला है इसका वर्णन स्वयं शिवजी भी नहीं कर सकते ।[2] गोपियों के इस सौन्दर्य आस्वादन में रूपासक्ति का उदाहरण देखा जा सकता है । मीरा और रसखान कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन करते करते थकते ही नहीं । दोनों कृष्ण की रूप माधुरी पर बलिहारी जाते हैं । दोनों की भक्ति रूपासक्ति के अंतर्गत रखी जा सकती है ।

बिल्वमंगल स्वामी भी कृष्ण के रूप पर आसक्त होकर यों कह उठता है - मैं उस बालकृष्ण का ध्यान करता हूँ जो सामने कलकल बहनेवाली यमुना के किनारे एक तमाल वृक्ष की घनी छाँह में बैठकर कमल पत्रों के दोने से दही भात खा रहा है । उसने बायें हाथ में बाँसुरी रखी है । कमर के पास, बाजू में सींग रखा है और चरनेवाली गायों पर हर क्षण नज़र रखता है ।[3]

---

1. सूरसागर पद - 664
2. श्रीकृष्णगीतावली पद - 21
3. श्रीकृष्णकर्णामृत - 3/83

जयदेव कवि की राधा तो कृष्ण की रूप माधुरी पर आसक्त होकर अपना तन मन धन श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित करती है । जयदेव की राधा को रूपासक्ति का उत्तम उदाहरण माना जा सकता है ।

पूजासक्ति:

आदर भाव से प्रेरित होकर किसी के लिए किए जानेवाले सारे शारीरिक एवं मानसिक कर्म पूजा के अंतर्गत आते हैं । पूजा करते करते भगवान के प्रति आकर्षित होने को पूजासक्ति कहते हैं । भजन पूजासक्ति का एक प्रमुख अंग है । इसमें अर्चन, सेवन और वंदन आदि भी सम्मिलित हैं ।

श्रीकृष्ण मथुरा चले जाते हैं । सूर की गोपियाँ उनकी पूजा करती ही रहती हैं । वे भगवान की पूजा-भजन में इतनी व्यस्त रहती हैं कि उन्हें बाहरी दुनिया का कोई ज्ञान ही नहीं है । गोपियाँ चौबीसों घंटे, कृष्ण की पूजा ही करती रहती हैं । तुलसीदास की गोपियों का भी यही हाल है । मीरा सदा कृष्ण के सामने नमन करती थीं । मंदिर में जाकर कृष्ण का दर्शन करती थी । गोविन्द के गुणगान करती थीं । वे "अधम उद्धारण, भव-भय तारण" हरि की असीम भक्तवत्सलता और सहज कृपालुता की गाथाएँ गाया करती थी । बिल्वमंगल स्वामी की गोपियाँ भी कृष्ण की पूजा करती रहती हैं, जिनका कृष्ण नित्य गायों के झुण्डों और गोपों के समूहों से घिरा रहता है -

गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसङ्घावृतं
गोविन्दं कलवेणुनादनिरतं दिव्याङ्गभूषं भजे ।।[1]

सुकुमार कवि ने कृष्ण की पूजा करने का उल्लेख दिया है । यमलार्जुन उद्धार के समय जब कृष्ण वृक्षों को गिराते हैं तो उसमें से दो दिव्य पुरुष निकलते हैं और कृष्ण का नमन करते हैं ।[2] यह पूजासक्ति के अंतर्गत आता है ।

---

1. श्रीकृष्णकर्णामृत - 3/84
2. प्रणम्य भक्त्या पुरुषं पुरातनं । श्रीकृष्णविलास - 3/66

स्मरणासक्ति :

भगवान के नाम, उसके गुण, माहात्म्य, उसकी सर्वव्यापकता, लीला आदि का हमेशा ध्यान रखना तथा उसी की याद में लीन रहना स्मरणासक्ति है । भक्ति के सारे भेदों में स्मरण का अंश पाया जाता है । इसका उत्तम उदाहरण मीरा है । बचपन से ही मीरा कृष्ण का स्मरण करती रहती थी । स्मरण करते करते वे उनपर आसक्त होकर कृष्ण का रूप सौंदर्य का मन ही मन वे आस्वादन करने लगी। मीरा किस प्रकार कृष्ण के सौंदर्य वर्णन के ज़रिए कृष्ण से अपने आँखों में बसने का अनुरोध करती है ज़रा देखिए -

बसो मोरे नैयननि में नन्दलाल ।
मोहन मूरति साँवरि सूरति, नैना बने बिसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजयन्ती माल ।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सब्द रसाल ।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्तवछल गोपाल ।।[1]

यहाँ मीरा ने कृष्ण के रूप सौंदर्य के वर्णन के साथ ही इस बात की ओर इंगित किया है कि उनके प्रभु संतन को सुख देनेवाले हैं तथा भक्तवत्सल है ।

बिल्वमंगल स्वामी भी हमेशा कृष्ण का स्मरण करते रहते हैं । वे कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन करके कहते हैं कि अमुक दृश्य का अमुक समय पर स्मरण करना है । स्वामी जी कहते हैं कि प्रात: काल उस गोपशिशु का स्मरण करना चाहिए, जो अपने कान के आभूषणों और घुंघराले बालों के कारण अत्यन्त मनोरम दीखता है । घुटनों और हाथों के बल जब वह रेंगता है, तब तो वह मन को बरबस खींच लेता है ।

जानुभ्यामभिधावन्तं
पाणिभ्यामति सुन्दरम् ।
सुकुण्डलालकं बालं
गोपालं चिन्तयेदुष: ।।[2]

---

1. मीरा की पदावली - 3
2. श्रीकृष्ण कर्णामृत - 3/93

इसको स्मरण भक्ति का उत्तम उदाहरण माना जा सकता है ।

सुकुमार कवि का नन्द गोप हर वक्त कृष्ण के स्मरण में डूबे रहते थे । नन्द कृष्ण के रूप सौंदर्य का ध्यान हर वक्त किया करते थे ।[1] इसे स्मरणासक्ति का उदाहरण माना जा सकता है ।

सख्यासक्ति:

भगवान को अपना सखा मानकर उनकी भक्ति करना सख्यासक्ति कहलाता है । जीवात्मा और परमात्मा को सखा मानने की प्रथा भारत में प्राचीन काल से ही है । इसमें भगवान और भक्त का संबंध घनिष्ट हो जाता है । गोपों की भक्ति को सख्यासक्ति का उत्तम उदाहरण माना जा सकता है । गोप बालक कृष्ण को अपना सखा मानते हैं । वे कृष्ण के लिए सब कुछ करने को तैयार रहते हैं । गोप बालक कृष्ण के साथ खेलते हैं, कूदते हैं, हँसी मज़ाक करते हैं, गो चराते हैं आदि । सूरसागर और श्रीकृष्णगीतावली के छाक लीला प्रसंग के अंतर्गत हम देखते हैं कि कृष्ण और गोप बालक मिलकर किस प्रकार खेलते कूदते हैं और गो चराते हैं । वे कृष्ण के साथ मिलकर अपनी छाक बांटकर खाते हैं । इस प्रकार कृष्ण के साथ वे इतने घुलमिल जाते हैं कि कृष्ण का विरह उन्हें असह्य प्रतीत होता है । खेल-खेल में गोप बालक कृष्ण से भक्ति करने लगते हैं । गोप बालकों की इस भक्ति को सख्यासक्ति कहा जा सकता है ।[2]

---

1. श्यामकः कमलपत्रलोचनो, नीलकुन्तकभरश्शुचिस्मितः ।
   ध्यायतो मनसि तस्य सन्निधि, पुत्र एव विदधे पुनः ।।
   श्रीकृष्णविलास काव्यं श्लोक - 55
2. सूरसागर पद - 463-470

वात्सल्यासक्ति

भगवान को अपना पुत्र मानकर की जानेवाली भक्ति को वात्सल्यासक्ति कहते हैं । वासनारहित शुद्ध अनुराग, अनुभूति की गंभीरता तथा भावसंकुलता वात्सल्यासक्ति की विशेषता है । यशोदा और नन्द की श्रीकृष्ण के प्रति जो भक्ति है उसे वात्सल्यासक्ति कह सकते हैं । यह भक्ति का शुद्ध भाव है क्योंकि इसमें इष्टदेव के नाम, रूप, गुण आदि बाह्य परिस्थितियों की अपेक्षा नहीं रहती । सूरदास ने सूरसागर में वात्सल्यासक्ति का अत्यंत विस्तृत वर्णन किया है । उन्होंने माता यशोदा के अंतकरण में जाकर कृष्ण के प्रति उनकी एक-एक भावना को पैठ निकाला है । माता यशोदा अपने कृष्ण के सौंदर्य पर बलिहारी जाती है । कृष्ण की घुँघराली लटों, उनकी हँसी, सुन्दर नेत्र, टेढ़ी भौंहें, उनकी दन्तुलियाँ, केशों की लट आदि पर वह अपने आप को वार देती है । सूरदास का वर्णन देखिए - यशोदा मैया कहती है -

लाल हौं वारी तेरे मुख पर ।
कुटिल अलक मोहनि मन बिहँसनि भृकुटी बिकट ललित नैननि पर ।।
दमकति दूध दँतुलियाँ बिहसत मनु सीपज घर कियो बारिज पर ।
लघु लघु लट सिर घूँघरवारी लटकन लटकि रह्यो माथें पर ।।
यह उपमा कापै कहि आवै कछुक कहौं सकुचति हौं जिय पर ।
नव तन चंद्ररेख मधि राजत सुरगुरु सुक्र उदोत परसपर ।।
लोचन लाल कपोल ललित अति नासा कौं मुकता रदछद पर ।
सूर कहा न्योछावर करियै अपने लाल ललित लट ऊपर ।।[1]

वात्सल्य भक्ति श्रीकृष्णगीतावली में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है । माता यशोदा कृष्ण को अपने गोद में बिठाकर उनका सुन्दर मुख निहार रही है । उनका मुख देखकर माता को अति आनंद प्राप्त होता है ।

---

1. सूरसागर - पद 93

माता ले उछंग गोविन्दमुख बार-बार निरखै ।
पुलकित तनु आनन्द घर छन छन मन हरखै ।[1]

नारायण कवि ने भी नारायणीयम् में वात्सल्य भक्ति का वर्णन किया है । वे कहते हैं जब यशोदा कृष्ण को गोद में लेकर दूध पिलाती थी, तो उन्हें वात्सल्य स्नेह की स्तम्भ, स्वेद, रोमांच आदि सभी अवस्थाएँ क्रमश: उनके अंगों में प्रकट होती थीं ।[2]

बिल्वमंगल स्वामी ने भी अपने कृष्णकर्णामृत में यशोदा की वात्सल्य भक्ति का वर्णन किया है । यशोदा माँ से कृष्ण दूध माँग रहा है । माँ कहती है कि दूध रात को पिया जाता है । कृष्ण पूछता है कि रात क्या होती है । तब माता कहती है कि अंधेरा छा जाने से रात होती है । तब एकाएक कृष्ण आँखें बंद कर देता है और कहता है कि रात हो गई । यह देखकर माता यशोदा अत्यंत संतुष्ट हो जाती है ।[3] कृष्ण की तोतली बोली और चेष्टाएँ देखकर यशोदा के आनन्दित होने में यशोदा की वात्सल्यासक्ति देखी जा सकती है ।

सुकुमार कवि ने भी एकाध श्लोकों में वात्सल्य भक्ति को दर्शित किया है । कवि कहते हैं कि पुत्र जन्म का समाचार सुनकर नन्द इतने खुश हुए जितना एक गरीब आदमी अपार धन मिलने पर भी खुश नहीं होता, पंगु पाँव मिलने पर तथा अंधा आँखों को रोशनी लौटने पर खुश नहीं होता । यहाँ नन्द का पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव का दर्शन मिलता है ।[4]

---

1. श्रीकृष्णगीतावली पद - ।
2. नारायणीयम् - 41/10
3. कृष्णकर्णामृतम् - 2/59
4. श्रीकृष्णविलास श्लोक - 3/18

ज्यादातर कवियों ने वात्सल्य का भाव स्त्रियों या माताओं की ओर से अधिक दिखाया है। लेकिन सुकुमार कवि ने पिता का वात्सल्य भाव अधिक उजागर किया है। यह कवि की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

कान्तासक्ति

भगवान को अपना पति मानकर की जानेवाली भक्ति को कान्तासक्ति कहते हैं। लौकिक प्रेम के जितने रूप हो सकते हैं वे सभी कान्ता भक्ति में आ जाते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि लोक से होकर उन्हें ईश्वर से जोड दिया जाता है। लौकिक रूप में जिसे हम श्रृंगार कहते हैं भक्ति में उसे मधुरा भक्ति या कान्तासक्ति कहते हैं। पत्नी जिस प्रकार अपना सब कुछ पति के लिए अर्पण करती है, उसी प्रकार कान्तासक्ति में भक्त अपने प्रियतम भगवान के लिए अपना सब कुछ अर्पित करता है। उदाहरण के लिए गोपियों को लीजिए। श्रीकृष्ण यमुना तट पर मुरली बजाते हैं। यह सुनकर गोपियाँ भागती हुई आती हैं। अपना घर-बार, माता, पिता, भाई-बंधु, पति-पुत्र सब कुछ छोडकर यहाँ तक कि ठीक ढंग से वस्त्र पहने बिना ही मुरलीवादन सुनने के लिए भागती हुई आती है। गोपियाँ कृष्ण को अपना सब कुछ मानती हैं। इसीलिए सब कुछ छोडकर भगवान के पास चली आती है। सूरदास, तुलसीदास, नारायण कवि आदि ने इसका सुन्दर वर्णन अपने काव्यों में किया है।[1] मीरा भी कृष्ण को अपना पति मानती है। वे कहती है - "मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।"[2] जयदेव कवि की राधा भी कृष्ण को अपना पति समझती है और एक पत्नी की तरह अपना सब कुछ कृष्ण पर अर्पण करती है। ये सब कान्तासक्ति के उदाहरण हैं। जयदेव कवि की राधा को कृष्ण के प्रति जो भाव है उसे कान्तासक्ति के अंतर्गत रखा जा सकता है।

---

1. सूरसागर पद - 180, श्रीकृष्णगीतावली - पद 20,22

   नारायणीयम् - 65/6

2. मीरा की पदावली - पद 18

तन्मयासक्ति

भगवान का स्मरण करते अपनी सुध बुध भूल जाना तथा उसी भगवान में तन्मय होने को तन्मयासक्ति कहते हैं । भक्त को भगवान के सिवा अन्य किसी बात की चिंता नहीं रहती । इसमें अहं का भाव मिट जाता है और भक्त भगवान के निकट पहुँचता है । यह भक्ति की उच्चावस्था है । कृष्ण मथुरा चले जाते हैं । राधा कृष्ण के विरह में तड़पती रहती है । तड़पते-तड़पते वह सदा कृष्ण का स्मरण करती रहती है । स्मरण करते करते वह कृष्ण की यादों में इतनी तन्मय हो जाती है कि वह कृष्ण का अनुकरण करने लगती है । कृष्ण की तरह चलती है, हँसती है, गाती है, चेष्टाएँ करती हैं । वह कृष्ण प्रेम में इतनी तन्मय होकर स्वयं अपने को भूल जाती है । राधा का अहं पूर्णत: मिट जाता है और वह अपने को कृष्ण समझने लगती है । राधा की इस तन्मयता में तन्मयासक्ति का उदाहरण मिलता है । सूर ने इसका अच्छा खासा वर्णन किया है । गीतगोविन्द में भी इसी बात का उल्लेख मिलता है । राधा स्वयं अपने को भूल जाती है और अपने को कृष्ण समझती है ।

मुहुरवलोकितमण्डनलीला
मधुरिपुरहमिति भावनशीला ।।[1]

यह तन्मयासक्ति का उत्तम उदाहरण है ।

सुकुमार कवि की गोपियाँ कृष्ण का नाच देखकर अत्यंत खुश हो जाती हैं । वे नाच में इतनी तन्मय हो जाती है कि कृष्ण को देने के लिए निकाला हुआ माखन उनके हाथ में ही रह जाता है । कुछ गोपियों के हाथों से तो माखन गिर जाता है लेकिन वे यह बात जान ही नहीं पाती । वे कृष्ण का नाच और गान देखने में इतनी तन्मय हो जाती हैं कि और किसी भी बात का ज्ञान उन्हें नहीं होता ।[2] यह तन्मयासक्ति का उदाहरण माना जा सकता है ।

---

1. गीतगोविन्द - 6/4
2. श्रीकृष्णविलास काव्य श्लोक - 3/84

परमविरहासक्ति

यह अत्युत्तम प्रकार की भक्ति है । ऐसा भक्त भगवान से एक पल के लिए भी जुदा नहीं हो सकता । जुदा होते ही वह व्याकुल होने लगता है और विरहाग्नि में तड़पने लगता है । इसमें भगवान के विरह से उत्पन्न पीडा के कारण भगवत् स्तुति अधिक तीव्र हो जाती है । इस प्रकार की भक्ति में भक्त के मन में उत्कट प्रेम और मिलनाकांक्षा होती है । भगवान कृष्ण के मथुरा चले जाने पर परम व्याकुल गोपियाँ विरहाग्नि में तड़पने लगती हैं । संयोग के समय जो सुख देने वाले थे वियोग के समय सब दुःखदायी हो गये । गोपियाँ श्रीकृष्ण के विरह में किस प्रकार तड़प तड़प कर जीती हैं, सूरदास का वर्णन देखिए -

बिनु गोपाल बैरिन भईं कुंजें ।
तब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजें ।।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं ।।
पवन, पानि, घनसार सजीवनि, दधिसुत किरन भानु भई भुंजें ।।
ये ऊधो कहियो माधव सों विरह करद कर मारत लुंजें ।।
सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बैरन ज्यों गुंजें ।।[1]

तुलसीदास की गोपियों का हाल देखिए -

ससि ते सीतल मोको लागै माई री । तरनि ।
याके उए बरति अधिक अंग अंग दव, वाके उए मिटति रजनि जनित जरनि
सब विपरीत भये माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि ।
तुलसीदास स्याम सुन्दर, विरह की दुसह दसा सो मो पै परति नहीं बरनि ।।[2]

रसखान की गोपियाँ भी विरह में तडपती रहती है ।

---

1. सूरपंचरत्न - 5/34
2. श्रीकृष्णगीतावली - पद 30

विरहा की जु आँच लगी तन में तब जाय परी जमुना जल में ।
विरहानल तें जल सूखि गयो मछली वहीं छाँडि गई तल में ।
जब रेत फटी स पताल गई तब सेस जर्यो धरती-तल में ।
रसखान तबै इहि आँच मिटै जब आय कै स्याम लगे गल में ।।[1]

मीरा भी अपने प्रियतम कृष्ण के विरह में तड़पती रहती है । कृष्ण के बिना तो उससे जिया ही नहीं जाता । वह अपनी सखी से कहती है -

कैसे जिऊँ री माई, हरि बिन कैसे जिऊँ री ।
उदक दादुर पीनवत है, जल से उपजाई ।
पल एक जल कूँ मीन बिसरे, तलफत मर जाई ।
पिया बिन पीली भई रे, ज्यों काठ घुन खाय ।
औषध मूल न संचरै, रे बाला बैद फिरि जाय
उदासी होय बन बन फिरूँ, रे बिथा तन छाई ।
दासी मीरां लाल गिरिधर, मिल्या है सुखदाई ।।[2]

जयदेव की राधा भी कृष्ण के विरह में अत्यन्त व्याकुल है । कृष्ण विरह के कारण राधा को भवन वन के समान, प्रिय सखियों का साथ जाल के समान लगता है । दीर्घनिश्वास से प्रदीप्त विरहाग्नि उसे सताती रहती है । कामदेव तो राधा के लिए यमराज बना हुआ है । राधा की स्थिति इतनी शोचनीय है कि लगता है उसी अन्तावस्था है ।[3]

बिल्वमंगल स्वामी कृष्ण का दर्शन न पाने के कारण दिन काटने में असमर्थ होकर तड़पते हैं ।[4] भगवत्स्मृति में ही उन्हें एक मात्र सहारा मिलता है ।[5] यह सब परम विरहासक्ति के उदाहरण हैं ।

---

1. रसखान रचनावली - पद 226
2. मीरा की पदावली - पद 210
3. गीतगोविन्द - 4/1
4. श्रीकृष्णकर्णामृत - 1.41
5. वही - 1.40

आत्मनिवेदनासक्ति

अपने को भगवान के लिए पूर्णतः समर्पित करना आत्मनिवेदनासक्ति है । यह शरणागति है । भक्त भगवान के समक्ष सब कुछ अर्पित करता है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में मुमुक्षुर्वैशरणामहं प्रपद्ये[1] कहकर इसका उल्लेख मिलता है ।

इसका उदाहरण व्रज की गोपियाँ हैं । नारायण भट्टत्तिरी ने इसको अपने नारायणीयम् काव्य में दर्शाया है ।

कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद गोपियाँ अपने आप को अपना सब कुछ भगवान को अर्पित करके जीती हैं । गोपियाँ सर्वत्र कृष्ण के गानों समेत गृहकार्य कर रही थीं । आपस में कृष्ण के बारे में बातचीत करती थीं । यहाँ तक कि स्वप्न में भी कोई कुछ बोल उठता तो कृष्ण के बारे में था । गोपियों की चेष्टाएँ तो कृष्ण की कृतियों की अनुकृतियाँ थीं । सारे व्रज में कृष्ण ही कृष्ण छाये रहे थे । इस प्रकार व्रज प्रदेश गोपिकाओं के आत्मसमर्पण से कृष्णमय हो गया ।[2]

आर्त भक्ति

आर्त भक्ति एक विशेष प्रकार की भक्ति है जिसमें भक्त भगवान से अपने हृदय की बात कहता है । कभी कभी भक्त हृदय की बात प्रलापों में परिणत होती है । भक्त भगवान को पुकारता है, रोता है, चिल्लाता है । अपनी रक्षा करने का अनुरोध करता है । उसके लिए भगवान सर्वशक्ति-संपन्न है, जो शरणागत को सबकुछ प्रदान कर सकता है । इस प्रकार की

---

1. श्वेताश्वतरोपनिषद् - 3.6.18
2. नारायणीयम् - 76.8

भक्ति में एक प्रकार की निश्छलता, सच्चाई, गहराई तथा प्रभावात्मकता देखी जाती है ।

नारायण कवि तथा सुकुमार कवि दोनों को आर्त भक्तों के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

नारायण कवि नारायणीयम् में भगवान से अपनी रक्षा करने का अनुरोध करते रहते हैं । हर दशक के अंत में वे अपनी प्रार्थना दोहराते रहते हैं ।

सुकुमार कवि भी एक आर्त भक्त हैं । उन्होंने कृष्ण लीला का अंकन करते समय इसका बार बार उल्लेख किया है । उनके पात्र जैसे यशोदा, नन्द, गोप, गोपी सभी श्रीकृष्ण को रक्षा करने के लिए भगवान से प्रार्थना करते रहते हैं । इसका एक उदाहरण तो देखिए -

गोवर्द्धन धारण के समय यशोदा के मन में डर लगा रहता है कि उनका बालक एक बड़ा सा पहाड़ उँगली पर कैसे उठा सकता है । उस वक्त यशोदा देवादिदेव नारायण को पुकार कर अत्यंत दीन होकर अपने लाडले बेटे की रक्षा करने के लिए भगवान से कहती है ।

नाथ । नारायण । श्रीमन् ।
अनाथजनबान्धव ।
पाहि मे पुत्रमापन्न
मित्यरोदियशोदया ।।[1] यह आर्त भक्ति का एक उत्तम उदाहरण माना जा सकता है ।

यही नहीं सुकुमार कवि ने अपने काव्य में जहाँ जहाँ हो सके वहाँ सब आर्त भक्ति पर बल दिया है ।

---

1. श्रीकृष्णविलास - 6/57

श्रीमद् भागवत की नवधा भक्ति और चैतन्य संप्रदाय की पंचधा भक्ति भी हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्यों और संस्कृत के कृष्ण काव्यों में मिलती है । ऊपर किए गए विश्लेषण में इनका भी वर्णन आता है । इसलिए यहाँ उसका विश्लेषण करना कही हुई बात को दुहराना होगा ।

इस प्रकार हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों और संस्कृत के कवियों ने अपने काव्यों में भक्ति को प्रधानता देते हुए अपने भक्त रूप को अक्षुण्ण बनाये रखने का सफल प्रयास किया है ।

भारतीय दर्शन और भक्तिकाल

दर्शन शब्द का अर्थ है - दृश्यते जनेन इति दर्शनम् अर्थात् वस्तु का तात्त्विक स्वरूप जिसके द्वारा देखा जाय । भारतीय दर्शन वैदिक साहित्य पर आधारित है । भारतीय दर्शन के अंतर्गत षड्दर्शन परंपरा में पूर्वमीमांसा को छोडकर सभी का लक्ष्य मोक्ष रहा है । मोक्ष क्या है ? कैसे प्राप्त होता है, इन बातों का विस्तृत विवरण उपनिषदों तथा अन्य दार्शनिक ग्रंथों में प्राप्त होता है । ब्रह्म, जीव एवं इनके बीच का संबंध उपनिषदों का मुख्य विषय रहा है । यहाँ पर ब्रह्म संबंधी व्याख्याएँ भी प्राप्त होती है । उपनिषदों के बाद विभिन्न आचार्यों ने अपने अपने ढंग से उपनिषद् और ब्रह्म-सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की । शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य जैसे आचार्यों ने अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत सिद्धान्तों की स्थापना की ।

हिन्दी के कृष्ण काव्यों और संस्कृत के कृष्ण काव्यों में दर्शन

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास प्रमुख रहे हैं । वे मूलतः भक्त थे । लेकिन भक्ति के दार्शनिक स्वरूप की ओर भी उनका ध्यान बराबर बना रहा । सूरदास वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत दर्शन का पालन करते थे । उन्होंने अपने काव्य के ज़रिए ब्रह्म, जीव, ईश्वर, माया, जगत आदि का विशद विवेचन किया है । भ्रमर गीत के ज़रिए उन्होंने ज्ञान पर भक्ति की विजय दिखाई है ।

मीरा के काव्य में यहाँ-तहाँ दार्शनिक सिद्धान्त की छटा प्राप्त होती है । मीरा पहले भक्त थी । फिर और कोई । इसलिए भक्ति के बीच बीच में ही दर्शन दिखाई देता है । कहते हैं वे भी सूर की तरह शुद्धाद्वैत को मानती थी । उनके काव्य में ब्रह्म, जीव और जगत का निरूपण मिलता है । रसखान ने वैसे दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण नहीं किया, लेकिन एक-आध सवैये में दर्शन की झलक तो ज़रूर मिलती है ।

तुलसीदास भक्तिमान दार्शनिक कवि थे । उन्होंने आध्यात्मिक अनुभूति को रसात्मक वाङ्मय के माध्यम से प्रस्तुत किया । जीवन के मूलभूत प्रश्नों पर विचार करके उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया । जिस प्रकार उनका काव्य "नानापुराण निगमागम सम्मत" है उसी प्रकार उनका दर्शन भी । उन्होंने बिखरे हुए भारतीय दर्शन के विचारों को एक सूत्र में पिरोने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है । रामानन्दीय संप्रदाय के होने के कारण तुलसी पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत का प्रभाव देखा जा सकता है । तुलसी ने वेदान्त के अंतर्गत आनेवाले अद्वैत को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । ब्रह्म, जीव, माया, जगत्, मोक्ष, आदि का निरूपण उनकी रचनाओं में मिलता है ।

नारायण कवि ने भी अपनी रचना में दर्शन का विवेचन किया है । उन पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव देखा जा सकता है । उन्होंने शास्त्रीय रूप में मोक्ष, ब्रह्म, जीव, जगत, माया आदि का निरूपण किया है । वेदों और उपनिषदों में बिखरे तत्वों को अपनी रचना में उतारने का प्रयास उन्होंने किया है । दर्शन का जितना निरूपण उन्होंने नारायणीयम् में किया, उतना और किसी कवि ने नहीं किया ।

बिल्वमंगल स्वामी ने भी अपनी रचना में भक्ति स्वरूप के अंतर्गत दर्शन की झलक दिखाई है । मोक्ष, ब्रह्म, जीव, जगत आदि का विवेचन कृष्ण लीला के ज़रिए किया है । सुकुमार कवि ने अपने श्रीकृष्णविलास काव्य में यत्र तत्र दर्शन की छटा बिखेरी है । उन पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव देखा जा सकता है । उन्होंने कृष्ण लीला का वर्णन करते-करते दर्शन की ओर भी इशारा किया है । जयदेव कवि ने भी कृष्ण की श्रृंगार लीला के अंतर्गत दार्शनिक सिद्धांत निरूपित करने का प्रयास किया है । इस प्रकार हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों और संस्कृत के कवियों ने अपनी अपनी इच्छानुसार काव्यों में दार्शनिक सिद्धांतों का निरूपण किया है । नीचे इस दार्शनिक सिद्धांतों का विश्लेषण देखा जा सकता है ।

ब्रह्म

सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म का जो रूप सूरदास ने चित्रित किया है उसमें महानता, कर्तव्य, प्रेम, सौन्दर्य आदि की पराकाष्ठा है । सूरदास ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना है । इस पर कृष्णोपनिषद का प्रभाव पड़ा है ।[1] उनका कृष्ण सृष्टि का आदि कारण है, सनातन है, अविनाशी है, घट-घटवासी है, ब्रह्मा, शंकर, वेद भी उनका अंत नहीं जान पाते हैं ।[2] वे भक्तवत्सल भी हैं अनाथों के नाथ भी ।[3]

---

1. कृष्णोपनिषद् - 12
2. सूरसागर - 10/3
3. वही - 1/249

सूरदास के कृष्ण सगुण भी है निर्गुण भी ।[1] निर्गुण और सगुण होते हुए भी गुणों से परे भी है ।[2] वे अनासक्त भाव से क्रीड़ा करते हैं । भगवान पर गुण अपना रंग नहीं चढ़ाते । गीता में भी यही बात बताई गई है ।[3] इसी बात की ओर तुलसी ने श्रीकृष्णगीतावली के अंतर्गत गोपियों के वचनों के ज़रिए संकेत किया है ।[4] ब्रह्म सर्वव्यापी है, अक्षय है, शरीर रहित है । फिर भी सत्वादिगुणों द्वारा उत्पत्यादि में लीन रहता है ।[5] सूरसागर में भी इस बात का उल्लेख मिलता है ।[6] श्रीकृष्णगीतावली में भी यही भाव देखा गया है -

तेहि उस ज्यों समान विराट वपु स्यों महि सरिता सिंधु भिरि भारे ।[7]
यहाँ निर्गुणत्व यह है कि सत्वादि गुणों के द्वारा भगवान उत्पत्ति करते हैं, उनके आधार हैं । पर भगवान स्वयं उनसे परे हैं, असंग हैं जैसे विराट रूप में सम्यक् आधारत्व के सगुणत्व है और वे भगवान अपने आधेय रूप जगत से निर्लिप्त हैं, यह उनमें निर्गुणत्व है । नारायणीयम् में नारायण कवि ने भी इसी से मिलते जुलते भाव का उल्लेख किया है ।[8]

सूरसागर में कृष्ण परब्रह्म अनश्वर, अविनाश तथा अंतर्यामी कहा है ।[9] श्रीकृष्णगीतावली में ब्रह्म को निर्गुण एवं बरीक कहा है ।[10]

---

1. सूरसागर - 1/2
2. त्रिगुण रहित निज रूप - सूरसागर - पद 1175
3. मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
   मत्स्थानि सर्व भूतानि न चाहं तषु अवस्थितः ।। गीता - 9/4-6
4. श्रीकृष्णगीतावली - पद 38
5. सत्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृतागुणाः ।
   स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतुः ।। विष्णुपुराण - 1/9/44
6. सूरसागर - पद 1175, 972
7. श्रीकृष्णगीतावली पद - 57
8. नारायणीयम् - 98/2
9. सूरसागर पद - 966, 1086
10. श्रीकृष्णगीतावली - पद 41

मीरा ने भगवान को "अविनाशी" कहा है । रसखान ने कृष्ण को ढूँढने पर भी न मिलनेवाला बताया है ।[1] नारायण कवि ने कृष्ण को परब्रह्म तथा सभी में व्याप्त बताया है ।[2] सुकुमार कवि का कृष्ण भी परब्रह्म है ।[3] बिल्वमंगल स्वामी ने कृष्ण को स्वयं ब्रह्म कहा है ।[4] इन कवियों द्वारा व्यक्त हुई यही बात कठोपनिषद् में भी बताई गई है ।[5] यह निर्गुण ब्रह्म सब की आत्मा के रूप में गूढ रूप से रहता है । वह अत्यंत सूक्ष्म है और सूक्ष्मतत्वों को समझनेवाला पुरुष ही इसे सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण बुद्धि से देख सकते हैं । निर्गुण मत में ब्रह्म के निर्लीप्त भाव के लक्ष्य से अपने अक्षर जीवात्मा के प्रकृति वियुक्त शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार किया जाता है । प्रकृति ब्रह्म के अधीन है और ब्रह्म ईक्षणमात्र से उसमें विकार उत्पन्न करता है ।[6]

वेदों ने ब्रह्म को नेति नेति कह कर पुकारा है ।[7] यही बात सूरदास ने सूरसागर में व्यक्त की है ।[8] वह मन, वाणी और इन्द्रियों

---

1. रसखान रचनावली - 27
2. नारायणीयम् - 94/1
3. श्रीकृष्णविलास - 1/46
4. श्रीकृष्णकर्णामृतम् - 2/50
5. एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।
   दृश्यते त्वरया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभि: ।। कठोपनिषद् - 1/3/12
6. प्रेक्षामात्रेण मूलप्रकृतिविकृतिकृत् ।। - नारायणीयम् - 98/5
7. ऋग्वेद
8. सूरसागर पद - 984

से परे हैं ।[1] तुलसीदास के कृष्ण को भी देखकर भी देखा नहीं जाता, सुनकर भी सुना नहीं जाता ।[2] रसखान के कृष्ण अनादि, अनन्त, अखण्ड, अछेद और अभेद हैं ।[3] यही बात नारायण कवि ने भी बतायी है ।[4] सुकुमार कवि का कृष्ण भी मन और वाणी से परे हैं ।[5] बिल्वमंगल स्वामी ने भी कृष्ण को नेति नेति कहकर पुकारा है । उनका कृष्ण "निगमवागगोचरं"[6] तथा पवित्रमाम्नायगिरामगम्यं"[7] है । यही बात गीता में बतायी गई है ।[8]

वेदों में परब्रह्म को ऊँकार युक्त बताया गया है ।[9] यही बात बिल्वमंगल स्वामी ने भी बतायी है ।[10]

सूरदास के कृष्ण सगुण ब्रह्म भी हैं । उन्होंने संकट पड़ने पर भक्तों के हित के लिए अवतार ग्रहण किया है ।[11] तुलसी के कृष्ण ने भी भक्तों के हित के लिए अवतार ग्रहण किया है ।[12] मीरा के प्रभु भी अवतारी हैं और नारायण कवि के कृष्ण भी "कारणवशात् मनुष्य रूप धारण करनेवाले"[13]

---

1. सूरसागर - पद 1170, 1175
2. श्रीकृष्णगीतावली - पद 41
3. रसखान रचनावली - 31, 5
4. नारायणीयम् - 98/3
5. गिरामिन्धियामप्यपथि स्थिताय । श्रीकृष्णविलास - 1/46/2
6. कृष्णकर्णामृत - 2/31
7. वही - 2/50
8. आश्चर्यवच्चैनमन्य कश्चिदमनाश्चर्यवद्वदति तथैवयान्य: ।
   आश्चर्यवच्चैनमन्य श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।। गीता - 2/29
9. प्रत्यगानन्दं ब्रह्म पुरुषं । प्रणवस्वरूपं । अकार उकारोऽमकार इति-अथर्ववेद
10. कृष्णकर्णामृत - 1/73
11. सूरसागर पद - 951
12. श्रीकृष्णगीतावली पद - ।
13. कारणमर्त्यरूप: - नारायणीयम् - 64/6

तथा "पृथ्वी की रक्षा रूप कार्य के लिए अवतीर्ण होनेवाले"[1] हैं । गीता में भी यही बात बताई गई है ।[2] इन सब कवियों पर गीता का प्रभाव देखा जा सकता है । बिल्वमंगल स्वामी के कृष्ण भी अवतारी हैं ।[3] जयदेव कवि के कृष्ण शृंगार के मूर्तिमान स्वरूप तथा अवतारी हैं । सुकुमार कवि के कृष्ण ने जगत का संरक्षण करने के लिए पृथ्वी पर अवतार ग्रहण किया है ।[4]

जो अवतार ग्रहण करता है, उसका एक रूप होता है । एक आकार होता है । इससे वह सगुण हो जाता है । ऐसे भगवान में दिव्य गुण नित्य हैं । कहा गया है -

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ।
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।।[5]

अर्थात् ब्रह्म की शक्ति अलौकिक है, वह विविध प्रकार की सुनी जाती है । उसमें ज्ञान, बल, क्रिया आदि स्वाभाविक हैं । हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों और संस्कृत के कवियों ने कृष्ण को सगुण ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है । उनके कृष्ण में बल है, पराक्रम, भक्तवत्सलता है, अभय देने की शक्ति है । तभी तो उनके कृष्ण ने वे सब कार्य किये जो लीलारूप में इन कवियों ने चित्रित किये हैं ।

कृष्णोपनिषद् में कृष्ण को गोपरूप धारी बताया गया है ।[6] यही बात बिल्वमंगल स्वामी ने भी स्वीकार की है ।[7] यही बात नारायण कवि[8] तथा जयदेव कवि[9] ने भी कही है ।

---

1. नारायणीयम् - 53/2
2. गीता - 4/8
3. कृष्णकर्णामृत - 2/48
4. संरक्षणाय जगतामवतीर्य पृथ्वां । - श्रीकृष्णविलास - 3/101
5. श्वेताश्वतरोपनिषद् - 6/8
6. गोपरूपो हरिः - कृष्णोपनिषद् - 10
7. गोपवेषस्य विष्णो - कृष्णकर्णामृत - 2/4
8. पशुपरूपी त्वं हि साक्षात् परात्मा - नारायणीयम् - 64/10
9. गोपतनोस्तनोतु - गीतगोविन्द - 4/5

सूरदास का सगुण ब्रह्म कृष्ण के रूप में अतीव सौन्दर्य से युक्त है । यह बात मीरा, रसखान, तुलसी, नारायण कवि, बिल्वमंगल स्वामी, सुकुमार कवि, जयदेव आदि के बारे में भी सत्य है । जिसका सौंदर्य होता है उसका रूप भी तो होता है । सूरदास के कृष्ण पर करोडों कामदेवों की शोभा बलिहारी जा सकती है -

कोटि काम छबि पर बलिहारी ।[1]

मीरा, रसखान और जयदेव तो अपने कृष्ण का सौंदर्य वर्णन करते करते थकते नहीं । वहीं तुलसी अपने कृष्णगीतावली में कहते हैं कि कृष्ण के रस रूप का, उनकी मुख छबि का वर्णन चार मुखवाले ब्रह्मा भी करोडों कल्पों तक नहीं कर सकते ।[2] और एक जगह कृष्ण के सौन्दर्य को अगणित कामों से भी बढ़कर कहा है । सोभा अगनित काम ।[3]

नारायण कवि ने कृष्ण को त्रिभुवन में एकमात्र सुन्दर पुरुष कहा है ।[4] तो बिल्वमंगल स्वामी ने कृष्ण को सौन्दर्य की चरम सीमा निर्धारित किया है ।[5]

श्रीकृष्ण अपने में ब्रह्म है । ब्रह्म का सौन्दर्य सूर्य के प्रकाश से परे हैं । वहाँ चन्द्र का प्रकाश भी तुच्छ है । तारे भी कुछ नहीं है । उस असीम प्रकाश के बारे में मुंडकोपनिषद में यों कहा गया है -

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः ।

---

1. सूरसागर - पद 951
2. श्रीकृष्णगीतावली - पद 22
3. वही - पद 28
4. नारायणीयम् - 66/8
5. कृष्णकर्णामृतम् - 1/99

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।[1]

ब्रह्म इस संसार के किसी भी प्रकाश से परे हैं । उसको प्रकाशित करने की ज़रूरत नहीं है । वह स्वयं प्रकाश है । वह अपने प्रकाश से सब को प्रकाशित करता है । यही भाव गीता में भी व्यक्त किया गया है ।[2] इसी तत्व को सूरदासादि कवियों ने श्रीकृष्ण के सौंदर्य वर्णन के प्रसंग में प्रकट किया है । ब्रह्म अवर्णनीय है । तभी तो कवि कहते हैं कि ब्रह्म श्रीकृष्ण की स्तुति, वेद, पुराण, श्रुति, स्मृति, ब्रह्मा और शिव भी नहीं कर पाते । सुकुमार कवि के अनुसार तो ब्रह्म ही अग्नि, जल, भू, आकाश, वायु आदि है ।[3] आगे वे कहते हैं कि भगवान सब कुछ है । श्रुति और स्मृति भी भगवान के रूप और आकार का बख्यान नहीं कर सकती ।[4]

श्रीकृष्ण में सौंदर्य के साथ आनन्द भी कूट-कूट कर भरा हुआ है । सौंदर्य और आनन्द एक ही सत्ता के दो पक्ष हैं और सौंदर्य की घनीभूत अनुभूति माधुर्य से होती है । इसीलिए श्रीकृष्ण के माधुर्यमय रूप को पुरूषोत्तम की चरम परिणति कहा गया है । जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म का

---

1. मुंडकोपनिषद् - 2/2/10
2. न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
   यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।। - गीता - 15/6
   यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
   यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकं । गीता - 15/12
3. त्वं ज्योतिरापस्त्वमसि त्वमुर्वी ।
   त्वं व्योम वैश्वानरसारथिस्त्वम् ।। श्रीकृष्णविलास - 1/50/1, 2
4. अलं न निर्देष्टुमियत्तया त्वा -
   मशेषनाथ श्रुतिरप्यिमाऽपि । श्रीकृष्णविलास - 1/52/1, 2

रस "मन, वाणी से अगम अगोचर है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के माधुर्य का रस भी अगम्य और अनिर्वचनीय है । माधुर्य की अनुभूति को ब्रह्म-जिज्ञासा की अंतिम सीढ़ी माना जाता है । श्रीकृष्ण का सभी कुछ मधुर है, उनका रूप, उनकी चेष्टा, उनका धाम, उनके परिकर सभी मधुराक्रान्त हैं और कृष्ण मधुराधिपति है । वल्लभाचार्य ने मधुराष्टक में यही भाव व्यक्त किया है ।[1] यही भाव बिल्वमंगल स्वामी ने अपने कृष्ण कर्णामृत में व्यक्त किया है -

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो ।
मधुरं मधुरं वदनं मधुरम् ।।
मधुगंधि मधुस्मितमेतदहो ।
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ।।[2]

सूरदास ने तो श्रीकृष्ण को आनन्द ही आनन्द बताया है ।[3]

---

1. अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
   हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।
   वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
   नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।
   गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा बीची मधुरा ।
   सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।।
   गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरं ।
   दृष्टं मधुरं शिष्टम मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।।
   मधुराष्टकम् - वल्लभाचार्य ।
2. कृष्णकर्णामृतम् - 1/91
3. सूरसागर - पद 970

जीव

सूरदासादि के काव्य में जिस प्रकार ब्रह्म के संबंध में स्थान स्थान पर संकेत मिलते हैं, वैसे ही जीव की ओर भी संकेत मिलता है । इन कवियों के अनुसार जीव चैतन्ययुक्त और कभी नाश न होनेवाला है । जीव ब्रह्म का अंश है,[1] ब्रह्म सगुण ईश्वर है तो जीव उसका सखा है उसका दास है । जीव को ईश्वर की इच्छानुसार चलना पडता है । सूरदास, तुलसीदास, नारायण कवि आदि ने श्रीकृष्ण को ब्रह्म तथा गोपियों को जीव के रूप में चित्रित किया है । मीरा ने अपने को जीव माना है । बिल्वमंगल स्वामी ने भी अपने को जीवात्मा माना है । जयदेव ने कृष्ण को ब्रह्म तथा राधा को जीवात्मा माना है । जब श्रीकृष्ण मथुरा चले जाते हैं तब सूरदासादि की गोपियाँ कृष्ण विरह में तडपती हैं । श्रीकृष्ण उनके लिए सब कुछ थे । उनसे बिछडकर वे रह ही नहीं पाती थी । उनका विरह इतना बढ गया कि जो वस्तुएँ मिलन के समय सुख देती थी, वे विरह में दुःख देने लगी । श्रीकृष्ण के बिना उनके लिए सब कुछ विपरीत हो गया । यहाँ कृष्ण परमात्मा है और गोपियाँ जीवात्मा । किस प्रकार परमात्मा से बिछुडकर जीव छटपटाता है इसका सुन्दर वर्णन सूरदासादि कवियों ने किया है । मीरा अपने को जीव तथा श्रीकृष्ण को ब्रह्म मानती थी । उनके अनुसार जीव ब्रह्म का ही अंश है ।[2] नारायण कवि के अनुसार परमात्मा ही सभी में भासित होता है ।[3] माया के मोहवश जीवात्मा और परमात्मा को अलग माना जाता है । यही बात सुकुमार कवि ने भी व्यक्त की है ।[4] बिल्वमंगल स्वामी ने अपने को जीवात्मा कहा है जो हर वक्त अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने के लिए उत्सुक है ।

---

1. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । गीता - 15/7
2. म्हारे आज्यो जी रामां, थारे आवत आस्यां सामां ।
   तुम मिलियां मैं बोही सुख पाऊँ सरैं मनोरथ कामा ।
   तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सूरज घामा ।
   मीरा के मन अवर न माने, चाहे सुन्दर स्यामां ।। मीरा की पदावली
3. नारायणीयम् - 94/5
4. त्वं जीववर्गः परमस्त्वमात्मा
   यन्नासि किंनाम जगत्पते तत् ।। श्रीकृष्णविलास -1/50/3, 4

ब्रह्म एवं जीव का संबंध

ब्रह्म स्वतंत्र है और जीव परतंत्र । ब्रह्म माया को संचालित करता है और जीव को माया के हाथों नाचना पड़ता है । जीव ब्रह्म का अंश है । जीव मायाधीश नहीं हो सकता । यही ब्रह्म से उसकी पृथकता है । जीव को ब्रह्म के द्वारा संचालित होना पड़ता है ।

सूरदास ने जीव और ब्रह्म के संबंध में सूरसागर में इस प्रकार संकेत किया है -"ज्यों सरित सिंधु बिनु कहुँ न जाई ।"[1] यहाँ सूरदास ने इस बात की ओर संकेत किया है कि जिस प्रकार सरिता सिंधु में मिल जाती है ; उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा एक दूसरे से मिलते हैं । तुलसी ने कृष्णगीतावली में कहा है - आपु मिल्यो यहि भाँति जाति तजि ।[2] इसमें तुलसी ने इस ओर संकेत किया है कि जल में नमक के समान जीव कृष्ण रूप में मिलकर फिर लौटने का नाम नहीं लेता । अर्थात् जीव परमात्मा में नमक और जल की भाँति मिल जाता है । इस प्रकार दोनों एक हो जाते हैं । नारायण कवि के अनुसार जीवात्मा परमात्मा ही है । माया के कारण बन्ध मोक्ष का निर्माण हुआ है । अतः ये दोनों स्वप्न और जागृत अवस्था के समान है । जीवात्मा और परमात्मा में अन्तर यह है कि एक विषय रूपी फलों के रस को चख रहा है तो दूसरा ऐसे ही बैठा है । वह अपनी ज्ञान शक्ति के प्रभाव से पीडा का भी अनुभव नहीं कर रहा है ।[3] यही बात भगवतगीता में भी कही गयी है ।[4] मुंडकोपनिषद् में भी यही भाव व्यक्त किया गया है -

---

1. सूरसागर - पद 1004
2. श्रीकृष्णगीतावली - पद 25
3. नारायणीयम् - 94/5
4. द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
   क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थो क्षर उच्यते ।। गीता - 15/16

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्य
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।[1]

अर्थात् दो पक्षियाँ बड़ी मित्रता से एक ही वृक्ष की शाखा पर बैठे हैं । एक वृक्ष का फल खा रहा है तो दूसरा वृथा बैठा हुआ है । फल खानेवाला पंछी जीव के प्रतीक है और दूसरा ब्रह्म के प्रतीक ।

जीवनमुक्तावस्था

जीव जब संसार में रहते हुए भी संसार से अलग रहता है, तब उसे जीवनमुक्त कहते हैं । जैसे पानी में रहते हुए भी कमल पानी से दूर रहता है उसी प्रकार जीवन्मुक्त संसार में रहते हुए भी संसार से अलग रहता है । इसे विदेहता भी कहते हैं । भागवत्[2] और गीता[3] में जीवन्मुक्त की इस अवस्था का वर्णन मिलता है ।

सूरदास ने सूरसागर में जीवन्मुक्तवस्था की ओर संकेत किया है । कपिल देवहूति संवाद में इसका लक्षण बताया है -

---

1. मुंडकोपनिषद् - अध्याय 3/1/1
2. देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतो ध्यगमत् स्वरूपं ।
   दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वसो यथा परिकृतं मदिरामदान्ध:
   देहोपि दैववश्ग: खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासु: ।
   तं सप्रपंचधिरूढसमाधियोग: स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तु: ।।
   भागवत - 11/13
3. दु:खेष्वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगत स्पृह: । वीतरागभयक्रोध:स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।
   य: सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् । नभिनन्दति न द्वेष्टि तस्यप्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।
   विहाय कामान्य: सर्वत्पुमां चरति नि:स्पृह । निर्ममो निरहंकार: स शान्तिमधिगच्छति ।। गीता - 2/56, 57, 71

चितवन चलत न चित तैं टरैं ।।
सुत तिय धन की सुधि बिसरै ।।
तब आतम घट घट दरसावै ।
मगन होई तन सुधि बिसरावै ।
भूख प्यास ताको नहीं व्यापै ।
सुख दुख तनिक न संताप ।।
जीवन मुक्त रहै या भाई ।
ज्यों जल कमल अलिप्त रहाई ।।[1]

गोपियों ने कृष्ण की महानता, सौंदर्य और गुणों पर अपना तन, मन, धन तथा प्राण न्योछावर कर दिये ।[2] गोपियों के मन में श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण बस गये । वे अपनी सुध बुध खो बैठी ।[3] और सारा वक्त कृष्ण के बारे में ही सोचने लगी । इस प्रकार संसारी विषयों के लिए उनके पास वक्त ही नहीं था । देह में रहते हुए भी वे विदेहता को प्राप्त हो गयी ।

तुलसीदास ने श्रीकृष्णगीतावली में गोपियों की जीवन्मुक्तावस्था की ओर संकेत किया है ।

तृन ज्यों तजि, पालि तनु ज्यों हम, बिधि बासल बल पेलि ।
जतेहुँ पर भावत तुलसी प्रभु गए मोहिनी मेलि ।।[4]

इससे तुलसी ने यहाँ संकेत किया है कि श्रीकृष्ण के गुण सब को भाते है । अमृत समान कृष्ण के मधुर चरित सुनते ही क्षण भर में धीरों के हृदय के राग द्वेष आदि नष्ट हो जाते हैं । इससे अंतकरण शुद्ध हो

---

1. सूरसागर - तृतीय स्कंध - पद 12
2. सूरसागर - पद 1618
3. वही - 1623
4. श्रीकृष्णगीतावली - पद 26

जाता है । कृष्ण के गुण जादू का काम करते हैं । इस प्रकार संसारी जीव जीवन्मुक्त की अवस्था प्राप्त करता है । वह संसार में रहकर भी उससे भिन्न रहता है ।

माया

जगत को मायामय कहा जाता है । माया अज्ञान और अहंकार से युक्त होती है । विषय का संग करने से मन बंधनकारी होता है । यह माया के कारण होता है । मन दसों इन्द्रियों के साथ मिलकर, संसारी होकर विषयों का भोग करने लगता है ।

सूरदास ने सूरसागर में माया का वर्णन किया है । उनका कहना है कि माया महाप्रबल है और सारे जगत को वश में कर रखा है । माया ने सब के मन को हर कर बंधन में डाल दिया है ।[1] बंधन से अहंकार और ममत्व उत्पन्न होता है और जीव अधोगति को प्राप्त करता है ।

श्रीकृष्णगीतावली में तुलसी ने कहा है -
रीतेहु तनु ऊपर नयननि की ममता अधिकाई ।।[2]

रिक्त शरीर के ऊपर आँखों की ममता अधिक होती है । शरीर पर ममता के आ जाने से मन में अहंकार उत्पन्न होता है । इससे माया का बंधन अधिक गहरा होता जाता है ।

माया के कारण मन बंधनकारी होता है ।
एहि सरीर बसि सखि वा सठ कहँ ।[3]

---

1. सूरसागर - पद 1/44
2. श्रीकृष्णगीतावली - पद 25
3. वही - पद 25

शरीर में रहकर मन विषय भोग के लिए अनुकूल रहता है। इसी के द्वारा मन ने नाना प्रकार के सांसारिक भोगों का अनुभव किया। तुलसी ने यहाँ मन किस प्रकार माया द्वारा विषय भोग करता है, इसकी ओर भी संकेत किया है। मन दसों इन्द्रियों के साथ मिलकर विषयों का भोग करता है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय मिलकर दस इन्द्रिय बनते हैं। ग्यारहवाँ इन्द्रिय मन है। मन ही दसों इन्द्रियों के साथ मिलकर भोगों का अनुभव करता है। जो मन को भोगों का अनुभव करने के लिए प्रेरित करती है वही माया है।[1]

नारायण भट्टत्तिरि का कहना है कि भगवान माया में प्रतिबिंबित होकर महत्तत्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चभूत, एकादश इन्द्रियों की सहायता से सारे संसार की सृष्टि करते हैं।[2] उनका कहना है कि माया के कारण ही जीव बंधन में पड़ता है और संसारी बन जाता है।[3] सुकुमार कवि ने श्रीकृष्णविलास काव्य में माया की ओर एक छोटा सा संकेत किया है। उनका कहना है कि जो हृदय पुत्र वासना से ऊपर नहीं उठ सकता, वह भगवान के दर्शन पाने में असमर्थ रहता है।[4] सुकुमार कवि के अनुसार ममता, वासना, आदि माया के ही विविध रूप हैं। जो मनुष्य इनसे घिरे रहता है, भगवान का साक्षात्कार करने में वह असमर्थ रहता है।

मोक्ष

जब जीव माया के आवरण के अतीत जाता है, तब मोक्ष प्राप्त करता है। फिर सांसारिकता से उसका कोई संबंध नहीं रह जाता।

---

1. मनुस्मृति - 2/92
2. नारायणीयम् - 98/4
3. वही - 94/5
4. श्रीकृष्णविलास - 3/56

मोक्ष प्राप्ति के बाद जीव संसार में लौटकर नहीं आता । मोक्ष को चार प्रकारों में बांटा गया है - सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य । मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार सालोक्य मुक्ति नाम भक्तों को मिलती है, सारूप्य मुक्ति सांख्ययोगियों को, सामीप्य मुक्ति सेवाभिलाषी भक्तों को तथा सायुज्य मुक्ति अद्वैतवेदान्ती निर्गुणोपासकों को ।[1]

सूरदास ने सूरसागर के तृतीय स्कंध में मोक्ष का संकेत किया है । यह कपिल देवहूति संवाद के अंतर्गत आता है । सूरदास जी कपिल के मुख से कहते है -

मम सरूप जो सब घट जान ।
मगन रहै तजि उद्यम आन ।।
अरु सुख दु:ख कछु मन नहिं ल्यावै ।
माता सो नर मुक्त कहावै ।।[2]

जो भगवान को सब चराचर में देखता है, किसी भी सांसारिक इच्छा को छोड भगवान में ही रमा रहता है । जिसका मन न सुख से खुश होता है न दु:ख में दु:खी होता है अर्थात् जिसके मन में विकार नहीं है, उस नर को मुक्त कहा जाता है । हरि का गुण गाते गाते, नर में भक्ति पैदा होती है । निर्मल, निष्काम भक्ति के प्राप्त होने से मुक्ति भी हाथ लगती है ।[3]

नारायण कवि ने भी यही भाव अपने नारायणीयम् में व्यक्त किया है । उन्होंने गोपियों का उदाहरण देते हुए यह सिद्ध किया कि गोपियों ने अपनी भक्ति से कृष्ण को तथा मोक्ष को प्राप्त किया है ।[4]

---

1. मुक्तिकोपनिषद् - 1/15-25
2. सूरसागर - तृतीय स्कंध - पद 12
3. वही - पद 12
4. नारायणीयम् - 59/10

बिल्वमंगल स्वामी ने भी अपने कृष्णकर्णामृत में मोक्ष की ओर संकेत किया है । वे पूछते हैं कि

कृष्णादन्य: को वा

प्रभवति गोगोपगोपिकामुक्त्यै ?[1]

अर्थात् कृष्ण के सिवा ऐसा कौन है जो सारे आत्मा को मोक्ष देने में समर्थ है ?

एक और जगह वे कहते हैं कि कृष्ण के भक्तों के पीछे मोक्ष पद भी हाथ जोड़कर सेवक हो जाता है -

मुक्ति स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान् ।[2]

श्रीकृष्णगीतावली में तुलसी ने मोक्ष की ओर संकेत किया है । श्रीकृष्णगीतावली के अठाइसवें पद में तुलसी कहते हैं -

तुलसीदास बड़े भाग मन लागेहूँ तें सब सुख पूरति ।[3]

मन जब भगवान में लगता है तब इन्द्रिय भी भगवान की ओर आकर्षित होने लगते हैं । जब संपूर्ण रूप से ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय भगवान में लगने लगता है, तब ज्ञान और भक्ति का उदय होता है । ज्ञान और भक्ति का उदय ही मनोमुक्ति है । शरीरांत मुक्तात्मा अपने भावानुसार परमात्मा में अभिन्न रूप से स्थित हो सुखी हो जाता है । इसी की ओर तुलसी ने श्रीकृष्णगीतावली में संकेत किया है ।

सुकुमार कवि के अनुसार कृष्ण के पादारविन्द का ध्यान करने से भगवान संसाररूपी अग्नि का संताप हरण करते हैं ।[4] अर्थात् मोक्ष प्रदान करते हैं । एक और जगह मोक्ष की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि

---

1. कृष्णकर्णामृत - 2/84
2. वही - 1/107
3. श्रीकृष्णगीतावली - पद 28
4. वही - 4/12

वैराग्य रूपी धन के धनी लोग आवृत्तिशून्य भगवत् पद का आग्रह करते हैं ।[1] एक और जगह पर वे अहंकार को संसार के बंधन का मूल कारण बताते हैं और कहते हैं कि इस बंधन से मुक्त होकर ज्ञान प्राप्त करनेवाले को मोक्ष मिल जाता है ।[2]

निष्कर्ष

सूरदास, मीरा, रसखान, तुलसीदास, नारायण भट्टत्तिरि, बिल्वमंगल स्वामी, सुकुमार कवि तथा जयदेव भक्त अधिक थे, दार्शनिक कम । इन कवियों ने तत्कालीन परिस्थितियों में जनता को आकर्षित करने के लिए सगुण भक्ति का प्रचार किया । उस समय जनता कोरे दर्शन से प्रभावित नहीं हो सकती थी । इन कवियों के साहित्य को भक्त साहित्य कहना अत्युक्ति नहीं होगी । इसीलिए इन कवियों ने निर्गुण के बजाय सगुण ब्रह्म को प्रमुखता प्रदान की । भक्ति के क्षेत्र में इन कवियों ने पराभक्ति और नवधा भक्ति को प्रमुखता दी । इन कवियों द्वारा चित्रित कृष्ण लीलाएँ श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति प्रदायिनी सिद्ध हुई है । इस लीला चित्रण का उद्देश्य भक्ति वर्द्धन एवं मोक्ष प्राप्ति ही रहा है । इनकी कृतियों में छुट-पुट दार्शनिकता का पुट भी मिलता है । नारायण कवि ने शास्त्रीय दृष्टि से दार्शनिकता का व्याख्यान किया है और बाकी कवियों ने कृष्ण लीला के ज़रिए ही दार्शनिकता भी व्यक्त की है । जीव, ब्रह्म के सगुण रूप से आकृष्ट होकर भक्ति के ज़रिए, उनमें तन्मय होकर सांसारिक बंधनों को तोडकर माया पर विजय प्राप्त करते हुए मुक्ति की अवस्था प्राप्त कर सकता है ।

---

1. आवृत्तिशून्यं परमं पदं ते
   वाञ्छन्ति वैराग्य धना महान्ता: ।
   श्रीकृष्णविलास - 1/53
2. वही - 5/97

छठा अध्याय

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण काव्य तथा संस्कृत कृष्ण काव्य में कला पक्ष

काव्य में कला का महत्व

जीवन-जगत् की अनुभूति में एक विशेष प्रकार का सुख, आनन्द, अप्रतिहत रुचिरता पाने की लालसा हरेक प्राणी में विद्यमान होती है । मानव मन की यह लालसा आत्माभिव्यंजना में परिणत हो जाती है । इस आत्माभिव्यंजना को व्यक्त करने का उपाय है काव्य । अग्निपुराण के अनुसार इष्ट अर्थ से व्यवच्छिन्न वाक्य को काव्य कहते हैं । आचार्य विश्वनाथ के अनुसार वही उक्ति काव्यमयी है जो रसात्मक हो । दोष उसका अपकर्षण न करते हों और गुण, अलंकार, रीति आदि उसके सौष्ठव का उत्कर्ष साधन करते हों ।[1] काव्य में कला का अपना विशिष्ट स्थान है । कला वही है जो "स्व" का कलन करती है ।[2] केवल विषय वस्तु से काव्य नहीं बनता । उसमें सम्यक् तौर पर कलात्मकता की आवश्यकता रहती है । कला अस्थिर जीवन को स्थिरता प्रदान करती है । कला का दार्शनिक लक्ष्य है आत्म स्वरूप का साक्षात्कार तथा परमात्मा तत्व की ओर उन्मुख होना । इसलिए विद्वान लोगों का कहना है कि "कला का जो भोगरूप है वह बंधन है और जो परमानन्द-प्राप्तिकारक है वही कला यथार्थ कला है ।"[3]

काव्य में कला का बड़ा महत्व है । काव्य कला के दो प्रमुख आयाम है - भाव पक्ष और कला पक्ष । भाव पक्ष के अंतर्गत स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा रस का उल्लेख होता है । कला पक्ष के अन्तर्गत छंद, अलंकार, शैली, शिल्प, ध्वनि, भाषा, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि का उल्लेख

---

1. वाक्यं रसात्मकं काव्यं दोषास्तस्यापकर्षका: ।
   उत्कर्षहेतव: प्रोक्ता गुणालङ्काररीतय: ।। विश्वनाथ - साहित्य दर्पण - 1/3
2. कलयति स्वरूपमावेशयति वस्तूनि वा यत्र-तत्र प्रमातरि कलनमेव कला - शिवसूत्रविमर्शिनी ।
3. विश्रान्तिर्यस्य संभोगे सा कला न कला मता ।
   लीयते परमानन्दे यदात्मा सा परा कला ।।

होता है । इन सब से काव्य का सौन्दर्य बढ़ता है। शिवसूत्रविमर्शिनी में कहा है - "न ब्रह्मविद्या न च राजलक्ष्मी तथा यथेयं कविता कवीनाम् ।" ब्रह्मविद्या तथा राजलक्ष्मी कवियों की कविता के समक्ष नहीं रह सकती । आनन्दवर्धन ने ध्वनि को, भामह ने अलंकार को, वामन ने रीति को और कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य में प्रमुख माना है । सब अपने में काव्य में कला की ओर ही संकेत करते हैं । बिना सुन्दर काव्य कला के काव्य नीरस बन जाता है । काव्य का आकर्षण अधिकांशत: कला में ही निहित रहता है । कला सौन्दर्य जिस काव्य में रहता है वह काव्य अमर बन जाता है और उस काव्य का प्रणेता महान बन जाता है । जयदेव, कालिदास, सूरदास, तुलसीदास आदि महान कवि इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं जिन्होंने अपने काव्य को सौन्दर्य से भर दिया है ।

रस

रस आत्मा की वह निरपेक्ष अनुभूति है जिसमें प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक अनुभव आनन्द निमज्जित लगते हैं । वह आत्मानुभूति होने के कारण बाह्य सत्ता पर आश्रित नहीं हैं, दु:ख से रहित है तथा मिलन-विरह के द्वैत से परे हैं । यथार्थ रसबोध का आधार कोई निरपेक्ष स्वयंप्रकाश तथा शाश्वत वस्तु है इसीलिए उसके भोग का स्वभाव अखण्ड, निरपेक्ष एवं शाश्वत होता है । ऐसी स्वतंत्र, निरपेक्ष, अखण्ड तथा शाश्वत वस्तु केवल एक ही है और वह है परब्रह्म पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण ।

श्रुतियों ने जिस परमात्म तत्व को "रसो वैसः" कहकर निरूपित किया है, वही तत्व श्रीकृष्ण के रूप में भूमि पर अवतरित हुआ। श्रीकृष्ण अखिल रसामृत मूर्ति हैं तथा सृष्टि में विद्यमान समस्त रसों का आधार भी । श्रीकृष्ण अपने बहुमुखी व्यक्तित्व के कारण समस्त रसों के मूलाधार हैं । उनमें सारे रस अपनी चरम सार्थकता एवं पूर्ण परितृप्ति पाते हैं ।

जैसे कि ऊपर कहा गया है कि सच्चिदानन्द का रस ही एकमात्र स्वयंसिद्ध तथा अलौकिक रस है । यह रस भक्ति द्वारा ग्राह्य हैं । किसी सांसारिक वस्तु से इसे ग्रहण नहीं किया जा सकता । भक्तों ने भक्ति को भी रस मान लिया है । क्योंकि भक्ति स्वयंसिद्ध है रसरूप है, आनन्दरूप है, अखण्डस्वरूपात्मक है । अत: वे उसे नैसर्गिक रूप से रस योग्य मानते हैं ।

स्वतंत्र रूप से भक्ति की प्रतिष्ठा मध्यकाल में हुई । उस समय तक ज्ञान और भक्ति एक दूसरे के पूरक थे । "रस" स्थापना में रागात्मक वृत्ति का पूर्ण परिपाक आवश्यक था जो भक्ति और ज्ञान के मिल जुले रूप से संभव न था । मध्यकाल में मानव मन में ज्ञान के प्रति नीरसता पैदा हुई और अपने रागात्मक वृत्ति को प्रकट करने के लिए भक्ति जैसे सरस मार्ग को उन्होंने अपनाया । भक्ति आन्दोलन ने भी भक्ति को रस रूप में प्रतिष्ठित करने का पूर्ण प्रयास किया । भक्ति की परिभाषा परम प्रेम स्वरूपा तथा अमृतस्वरूपा दी जाने लगी । प्रभु से स्वामि सेवक का भाव मिटकर सख्य-सखा भाव उभरने लगा । इस प्रकार भगवान से रागात्मक संबंध और सुदृढ बन गया । भगवत् भक्ति अब भावमात्र न रहकर उसमें अजस्र रस का संचार होने लगा । निर्गुण - निराकार रूप से सगुण साकार होते ही भगवद् रस का आलंबन विभाव स्पष्ट हो उठा, उनके मिलने के आनन्द और विरह की पीडा को उद्दीप्त करनेवाले तत्वों में उद्दीपन विभाव स्पष्ट हुआ । व्यक्ति किसी भी भाव से भगवान को भज सकता है । व्यक्ति मन में संचरण करने वाले छोटे से छोटे भाव भी आलम्बन से रति जोडकर सञ्चारी भाव बने । इस प्रकार विभाव, अनुभाव, संचारी भाव सभी के सहयोग से भक्ति भाव से रस निष्पत्ति होने लगी ।

कृष्ण भक्ति रस

लोगों का ऐसा मानना है कि कृष्ण काव्य में रस जिस रूप में वर्णित है, वह देखने में सभी प्रकार से लौकिक लगता है । उसमें सांसारी

वृत्तियों का निरूपण हुआ है । लेकिन भक्त कवियों का कहना है कि यह सिर्फ उसका बाह्य रूप है । उनका मानना है कि लौकिक रूप से निरूपण होते हुए भी कृष्ण-काव्य-रस अलौकिक है । क्योंकि मानव मन लौकिक दृष्टि से प्रमाणित वस्तु को ही अधिक ग्राह्य मानती है । कृष्ण काव्य रस भक्ति रस होने के नाते अलौकिक है । अलौकिक को अभिव्यक्त करने में मानव-मन असमर्थ है ।

रूपगोस्वामी ने कृष्ण भक्ति रस की परिभाषा अपने भक्ति रसामृत सिंधु में दी है । उनका कहना है कि विभाव, अनुभाव सात्विक संचारी भाव द्वारा श्रवणादि से भक्तजन के हृदय में आस्वादनीय होने पर कृष्णरति नामक स्थायीभाव भक्ति रस कहलाता है ।[1] रूपगोस्वामी का कहना है कि यह कृष्ण भक्ति केवल भक्तों को आस्वादनीय होती है ।

हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य में रस दो प्रकार से मिलता है §1§ भक्ति रस की दृष्टि से §2§ काव्य में प्रयोग की दृष्टि से ।

भक्ति रस की दृष्टि से कृष्ण काव्य में श्रृंगार, वात्सल्य और सख्य रस प्रमुख है ।

---

1. विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः ।
   स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः ।।
   एषा कृष्णरतिः स्थायीभावो भक्तिरसो भवेत् ।।
   भक्ति रसामृत सिंधु - दक्षिण विभाग, प्रथम लहरी - श्लोक 2

शृंगार रस

इसका स्थायी भाव प्रीति रति है । जो व्यक्ति कृष्ण से न्यून है, उसे उनका अनुग्रह पात्र कहा जाता है । ऐसे व्यक्ति की कृष्ण के प्रति प्रीति आराध्यरूपा होती है । ज्ञानस्वरूपा होती है । यह आराध्य में आसक्ति उत्पन्न करती है । इस रति को प्रीति रति कहते हैं । इस कृष्ण भक्ति शृंगार रस के विषय रूप आलंबन है श्रीकृष्ण और आश्रय रूप आलंबन है उनके भक्तगण । आलंबन की श्रेष्ठता उसके गुणों से मानी जाती है । कृष्ण भक्ति रस के उद्दीपन है श्रीकृष्ण के गुण, चेष्टा व प्रसाधन, हास्य, वंशी, शंख, पदचिह्न, तुलसी आदि । उदाहरण के लिए गोपियाँ कृष्ण का सौन्दर्य तथा गुण के कारण उनपर आसक्त हो जाती है । यह भक्तिरस के अंतर्गत शृंगार रस का लक्षण है ।

वात्सल्य रस

विभावादि द्वारा पुष्ट होकर वात्सल्य-स्थायी वत्सलभक्ति रस कहलाता है ।[1] इस रस का स्थायी भाव वत्सल रति है । अनुकम्प्य के प्रति अनुकम्पाकारी की जो सम्भ्रमशून्य रति होती है उसे वात्सल्य कहते हैं । यह वात्सल्य ही वत्सल रति का मूल भाव है । इस रस का आलंबन श्रीकृष्ण तथा उनके माता, पिता, गुरु आदि हैं । श्रीकृष्ण का श्यामसुन्दर रूप, उनका संवाद, सरलता आदि वत्सलरति के आलंबन है । लालन पालन तथा शिक्षा देने के कारण गुरुवर्ग इस वत्सलरस के आश्रय हुए रहते हैं । इस वर्ग में यशोदा, नन्द, कुन्ती, देवकी, वसुदेव, सान्दीपनी मुनि आदि आते हैं । इस रस के उद्दीपन है आयु, वेश, चंचलता, क्रीडा, हास्य, मधुरवाक्य आदि । जो चेष्टाएँ वात्सल्य विशेषकर

---

1. विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः
   एषं वत्सलतामात्र प्रोक्तो भक्तिरसो बुधैः ।।
   भ. रसामृत सिंधु - पश्चिम विभाग- तृतीय लहरी

मातृत्व में अत्यन्त स्वाभाविक हैं वे ही वत्सल रस के अनुभाव हैं । उदाहरण के लिए -

मैया मैं नहि माखन खायौ ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायौ ।
देखि तुही सींके पर भाजन, ऊँचै धरि लटकायौं ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायौं ।[1]

सख्य भक्ति रस

सख्य भक्ति जन्य रस को प्रेयभक्ति रस कहा जाता है । आत्मोचित विभावादि द्वारा स्थायी भाव सख्य जब सज्जन के चित्त में रस की पुष्टि कराता है तब उस रस को प्रेयभक्तिरस कहते हैं ।[2] समवयस्क सखाओं की विश्वासमयी रति को सख्य कहते हैं । यह सख्य रति प्रेय रस का स्थायी भाव है ।[3] इस रस का आलंबन कृष्ण एवं उनके सखा है । उद्दीपन कृष्ण की आयु, उनका रूप, वेणु, शंख, परिहास, अवतार की चेष्टाएँ आदि । उदाहरण के लिए सखाओं के साथ कृष्ण का खेलकूद, स्कन्ध पर आरोहण, पर्यङ्क में शयन, गीतनृत्यादि ।

---

1. सूरसागर - पद 952
2. स्थायीभावो विभावाद्यैः सख्यमात्मोचितैरिह
   नीतश्चिते सतां पुष्टिं रसप्रेयानुदीर्यते ।।
   भ.र.सिं. पश्चिम विभाग - तृतीय लहरी ।।
3. विमुक्त सम्भ्रमा या स्याद्विश्रम्भात्मा रतिद्वयोः ।
   प्रायः समानयोरत्र सा सख्यं स्थायिशब्दभाक् ।।
   भ.र.सिं. - पश्चिम विभाग - तृतीय लहरी - 45

प्रयोग की दृष्टि से काव्य रस

श्रृंगार रस

प्रयोग की दृष्टि से इसके दो भेद हैं - संयोग तथा वियोग । सूरदास ने अपने काव्य में दोनों का वर्णन किया है । उदाहरण के लिए रासलीला का दृश्य देखिए -

ब्रज जुवती रस रास पगीं ।
कियौ स्याम सब कौ मन भायौ निसि रति रंग जगीं ।
पूरन ब्रह्म अकल अविनासी सबनि संग सुख चीन्हौ ।
जितनी नारि भेष भए तितने भेद न काहू कीन्हौ ।
वह सुख टरत न काहूँ मन तैं पति हित साध दुराई ।
सूर स्याम दूलह सब दुलहिनि निसि भाँवरि दै आई ।[1]

इसमें स्थायी भाव प्रेम है, आलंबन श्रीकृष्ण है, उद्दीपन है रात का समय ।

वियोग श्रृंगार

कृष्ण मथुरा चले जाते हैं । राधा कृष्ण के विरह में तड़प तड़प कर जी रही है । सूर का वर्णन देखिए -

वे, हरि बातैं क्यों बिसरीं ?
आवत राधा पंथ चरण-रज हित सौं अंक भरी ।
भाँति भाँति किसलय कुसुमावलि सेज्या सोभ करी ।
निमिष वियोग होत तन तलफत, ज्यों जल बिनु मछरी ।
सुरति स्रमित स्यामा रस-रंजित सोवतिं रंग भरी ।
आपुन कुसुम-व्यंजन कर लीन्हे, करत मरूत लहरी ।

---

1. सूरसागर - पद 1/71

गोचारन मिस जात सघन बन, मुरली अधर धरी ।

नाद-प्रनालि प्रवेस घोष मैं, रिझवत तिय सिगरी ।।[1]

इसमें कृष्ण आलंबन है, राधा का विरह अनुभाव है । स्थायी भाव कृष्ण के प्रति प्रेम है ।

वात्सल्य रस

छोटे छोटे बच्चों के सौन्दर्य, उनकी तोतली बोली, उनकी चेष्टाओं, उनके कार्य-कलाप आदि को देखकर बरबस मन उनकी ओर खिंच जाता है । फलत: मन में उनके प्रति जो स्नेह उत्पन्न होता है उसी से वात्सल्य रस की निष्पत्ति होती है ।[2] इसके दो पक्ष हैं - संयोग तथा वियोग । जब बालकों की ऐसी बातों का वर्णन होता है जो माता-पिता आदि के पास उनके उपस्थित रहने की स्थिति से संबंध रखती है, तब संयोग वात्सल्य होता है । जब माता-पिता से बालकों का वियोग होता है तब उनकी दशा का वर्णन वियोग वात्सल्य होता है ।

उदाहरण देखिए -

खीझत जात माखन खात ।

अरुन लोचन भौंह टेढ़ी बार बार जँभात ।।

कबहुँ रुनझुन चलत घुटुरनि घूरि धूसर गात ।

कबहुँ झुकि कै अलक खैंचत नैन जल भरि जात ।

कबहुँ तोतर बोल बोलत कबहुँ बोलत तात ।

सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात ।।[3]

इसमें स्थायी भाव पुत्र स्नेह है । आलंबन श्रीकृष्ण है । उद्दीपन उनके घुटुरुवाँ चलना तथा तोतली बोली है । अनुभाव है यशोदा का कृष्ण को एकटक देखना ।

---

1. सूरसागर - पद 25।
2. काव्य प्रदीप - पृ. 103
3. सूरसागर - पद 100

इससे यहाँ संयोग वात्सल्य रस है ।

जिहि मुख तात कहत ब्रजपति सौं, मोहि कहत है माइ ।
तेहि मुख चलन सुनत जीवति हौं, बिधि सौं कहा बसाइ ।
को कर कमल मथानी धरिहैं, को माखन अरि खै है ।
बरषत मेघ बहुरि ब्रज ऊपर, को गिरिधर कर लैहै ।।[1]

इसमें स्थायी भाव स्नेह है आलंबन श्रीकृष्ण की यादें उद्दीपन कृष्ण की चेष्टाएँ और अनुभाव यशोदा का विलाप है । इसलिए यहाँ वात्सल्य वियोग है ।

करूण रस

प्रिय व्यक्ति के वियोग और अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने से हृदय को जो क्षोभ या क्लेश होता है उसी की व्यंजना से करूण रस की उत्पत्ति होती है । इसका स्थायी भाव शोक है । करूण रस की सी दशा विप्रलंब श्रृंगार में होती है । दोनों में भेद यह है कि विप्रलंब में मृत्यु वा किसी अन्य कारण प्रिया व प्रिय का वियोग होने पर उसके समागम की आशा बनी रहती है, परन्तु करूण में उसके मिलने की कोई आशा नहीं रहती ।[2]
उदाहरण देखिए -

अब कै राखि लेहु गोपाल ।
दसहुँ दिसा दुसह दवागिनि, उपजी है इहि काल
पटकत बाँस-काँस कुस चटकत, लटकत लाल तमाल ।
उचटत अति अंगार फटत पर, झपटत लपट कराल
धूम धुंधि बाढ़ि उर अम्बर, चमकत बिच-बिच ज्वाल ।
हरिन बराइ, मोर चातक, पिक जरत जीव बेहाल ।[3]

इसमें कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों का विरह दर्शाया गया है । इसमें

---

1. सूरसागर - 952
2. साहित्य दर्पण - 3/226
3. सूरसागर - 1233

शोक स्थायी भाव है । आलंबन कृष्ण का विरह, उद्दीपन कृष्ण की यादें, अनुभाव विषाद है । अत: इसमें करूण रस है ।

इस प्रकार सूर ने अपने काव्य में लगभग सभी रसों का प्रयोग किया तो है लेकिन श्रृंगार, वात्सल्य और करूण ही उसमें प्रमुख रहे हैं ।

बाकी के कृष्ण काव्य जैसे मीरा की पदावली, रसखान रचनावली, श्रीकृष्णगीतावली, नारायणीयम्, श्रीकृष्णकर्णामृत, गीतगोविन्द आदि स्फुट पद होने के कारण उसमें रस की गुंजाइश नहीं है ।

छंद

काव्य में छंद का प्रमुख स्थान माना जाता है । इसीलिए प्राचीन ऋषियों ने वेद के छ: प्रमुख अंगों में छन्द का स्थान सर्वोपरि रखा है । मानव मन की अनुभूतियों को कवि अपने चिन्तनानुसार आनन्दमय मूर्तरूप प्रदान करके परानुभूति को स्वानुभूति में परिणत कर देता है । इसके लिए वह छन्द का प्रयोग करता है । भाव और लय को समन्वयात्मक रूप देकर रचनाकार की कला-कुशलता का परिचय देने के लिए छंद का प्रयोग किया जाता है ।

भक्तिकाल के कृष्ण काव्यों में अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है । कृष्ण कथा को प्रबंध रूप में प्रस्तुत करनेवाले कवियों ने अपनी रूचि के अनुसार छंदों का प्रयोग किया । संप्रदाय निरपेक्ष कवियों ने अपने काव्य में अपनी इच्छा और सुविधानुसार वार्णिक और मात्रिक छंदों का प्रयोग किया ।

सूर ने अपनी काव्य रचना पद शैली में की है । इसलिए अपने काव्य में छंदों को प्रयोग कम हुआ है । फिर भी एकाध छंद देखने को मिलते हैं । उदाहरण -

सूर ने रोला छंद का प्रयोग किया है । इसमें 11-13 के विराम से चौबीस मात्राएँ होती हैं ।

सुधे गोरस माँगि, कछु लै हम पै खाहू ।
ऐसे ढीठ गँवार कान्ह, बरजत नहिं काहु ।
एहिमग गोरस लै सबै, दिन प्रति आवहि जाहिं ।
हमहिं छाप देखरावहु, दान चहत केहि पाहिं ।[1]

राधिका

इसमें बाईस मात्राएँ होती है । 13-9 पर यति होती है ।

ललिता को सुख दै चले, अपने निज धाम ।
बीच मिली चन्द्रावली, उन देखें श्याम ।।[2]

मीरा ने भी अपने काव्य में कुछ छंदों का प्रयोग किया है । उन्होंने दोहा, समान सवैया, कुण्डल, सरसी आदि छन्दों का प्रयोग किया है । लेकिन उनके प्रयुक्त सभी छंद दोषयुक्त माने जाते हैं । रसखान ने भी अपने काव्य में छंदों का प्रयोग किया है । उन्होंने अपने काव्य का अधिकांश भाग सवैयों में लिखा है । उनके सवैये मशहूर है ।

उदाहरण देखिए -

सवैया

इसमें 22 से 26 वर्ण होते हैं ।

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पशु हौं तौं कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ।

---

1. सूरसागर - 225

2. वही - 373

पाहन हों तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ।।

कवित्त

इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं । इसमें सोलहवें वर्ण पर यति होती है, अन्तिम वर्ण गुरु होता है । शेष वर्णों के लिए लघु गुरु के क्रम का कोई बंधन नहीं है ।

कदंब करीर तीर पूछत अधीर गोपी
आनन रुरवौहों रोय रोई भरौ हौं सौं ।।
चोर हौ हमारौ प्रेम चोंतरा में हार्यौ
भइरान तें निकसि भाज्यौ ह्वै कर लजोहैं सौ ।
ऐसो रूप ऐसो बेस हमें तू दिखैयौ
देखि देखत ही रसखान नैनन चुभौ हौं सौं ।।
मुकुट लुकौंहौं हार हियरा सरोहैं कटि
फेंटा पिचरौहैं अंग रंग साँवरो हौं सौं ।।

दोहा

इसमें पहले और तीसरे चरणों में 13 मात्राएँ होती है तथा दूसरे और चौथे चरणों में 11 मात्राएँ । इस प्रकार कुल 24 मात्राएँ होती हैं ।

प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान ।
जो आवत एहि ढिग बहुरि जात नाहिं रसखान ।।

सोरठा

इसके विषम चरणों में 11 और सम चरणों में 13, कुल मिलाकर 24 मात्राएँ होती हैं । इसके पहले तीसरे चरण में तुक मिलती है ।

प्रीतम नन्द किसोर, जा दिन तें नैननि लग्यौ ।
मन पावन चितचोर, पलक ओट नहिं सकि सकौ ।।

श्रीकृष्णगीतावली स्फुट पदों का संग्रह होने के कारण उसमें छंदों का प्रयोग नहीं देखा जाता ।

संस्कृत कवियों ने अपने काव्य में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है । नारायण भट्टत्तिरी ने नारायणीयम् में अनेक छन्दों का प्रयोग किया है । एक-एक अध्याय को एक-एक छंद से उन्होंने अलंकृत किया है । उन्होंने नारायणीयम् में शार्दूलविक्रीडित्, वसन्ततिलका, पृथ्वी, द्रुतविलंबित, उपजाति, वंशस्थ, गीति, मालिनी, वियोगिनी, रथोद्धता, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, हरिणी, शालिनी, तोटक, शिखरिणी, कुसुममंजरी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता आदि छंदों का प्रयोग किया है ।

वसन्ततिलका

श्रीकृष्णकर्णामृत में बिल्वमंगल ने, श्रीकृष्णविलास में सुकुमार कवि ने तथा जयदेव ने गीतगोविन्द में अनेक छन्दों का प्रयोग किया है । लेकिन नारायण कवि की तरह छंदों का प्रयोग इन कवियों ने नहीं किया । वसन्ततिलका में तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु के हिसाब से 14 वर्ण होते हैं । (उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग: ।)

गोपीजनाय कथितं नियमावसाने
मारोत्सवं त्वमथ साधयितुं प्रवृत्त: ।
सान्द्रेण चान्द्रमहसा शिशिरीकृताशे
प्रापूरयो मुरलिकं यमुनावनान्ते ।।[1]

तस्याश्शरीरमधिरुह्य विचेतनाया:
क्रीडन्तमम्बुरुहलोचनमीक्षमाणा: ।
तस्थुस्समुन्मिषितविस्मयनिर्विकारा:
नासाधिरोपितकरांगुलयो मुहूर्तम ।।[2]

यहाँ तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु के हिसाब से वसंततिलका छंद है ।

1. नारायणीयम् - 65/1
2. कृष्णविलासम् - 3/36

द्रुतविलंबितं

द्रुतविलंबितं हो न भ भा र से ।
अर्थात् नगण, दो भगण तथा रगण के 12 वर्णों का द्रुतविलंबितं छंद होता है ।
रुचिरं कम्पितकुण्डलमण्डल:
सुचिरमीश ननर्तिथ पन्नगे
अमरताडितदुन्दुभिसुन्दरम्
वियति गायति दैवतयौवते ।।[1]

नियमित श्वसितो निभृतै: पदै:
निशि कथञ्चन गर्भगृहं गत: ।
स तु भयादसमात्पमनोरथ:
निववृते नवनीतहरो हरि: ।।[2]
यहाँ 12 वर्णों का द्रुतविलंबित छंद है ।

इन्द्रवज्रा

तो तगण, जगण और दो गुरु, इस प्रकार 11 वर्णों का इन्द्रवज्रा छंद होता है ।
हा चूत, हा चंपक, कर्णिकार,
हा मल्लिके, मालति, बालवल्य:
किं वीक्षितो नो हृदयैकचोर:
इत्यादि तास्त्वत्प्रवणा विलेपु: ।।[3]

---

1. नारायणीयम् - 56/1
2. कृष्णविलास - 3/89
3. नारायणीयम् - 67/5

नूतामृतं गोकुल योषितस्तत्
कृष्णास्य नेत्राञ्जलिभिः पिबन्त्यः ।
प्रीतिप्रकर्षस्तिमितैर्मनोभिः
आलेख्ययोषित्प्रतिमा बभूवुः ।।[1]

यहाँ ग्यारह वर्णों का इन्द्रवज्रा छंद है ।

उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

इसमें ज त ज ग ग अर्थात् जगण, तगण, जगण और दो गुरु - इस प्रकार ।। वर्ण होते हैं ।

मन्दारमूले मदनाभिराम
बिम्बाधरापूरितवेणुनादम् ।
गो गोप गोपी जन मध्यसंस्थं
गोपं भजे गोकुल पूर्णचन्द्रं ।।[2]

मयूरकेकाशतलोभनीयम्
मयूखमालाशबलं मणीनाम् ।
विरिञ्चलोकस्पृशमुच्च श्रृंङ्गै-
र्गिरिञ्च गोवर्धन मै क्षथास्त्वम् ।।[3]

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य
त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्याम् ।
विमुक्तबाधां कुरुष न राधा
मुपेन्द्रवज्रादपि दारूणोसि ।।[4]

---

1. कृष्णविलासम् - 3/83
2. कृष्णकर्णामृतम् - दूसरा आश्वास
3. नारायणीयम् - 49/8
4. गीतगोविन्द

इनमें जगण, तगण, जगण और दो गुरू होने से यह उपेन्द्रवज्रा छंद है ।

शार्दूलविक्रीडितम्

मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और गुरू इस प्रकार प्रत्येक चरण में 19 वर्णो का शार्दूलविक्रीडित छंद होता है ।

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त। हरिणीं रूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्छार्दूलविक्रीडितम् ।।[1]

सान्द्रानन्दतनो, हरे, ननु पुरा दैवासुरे सङ्गरे
त्वत्कृत्ता अपि कर्मशेषवशतो ये ते न याता गतिम्
तेषां भूतलजन्मनां दितिभुवां भारेण दूरार्दिता
भूमिः प्राप विरिञ्चमाश्रितपदं देवैः पुरैवागतैः ।।[2]

यहाँ मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और गुरू होने से शार्दूलविक्रीडित छंद है ।

शिखरिणी

यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरू इस प्रकार प्रति चरण में 17 वर्णो का शिखरिणी छंद होता है ।

दुरालोकस्ताकस्तबकनवकाशोकेलतिका-
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ।
अपि भ्राम्यद् भृङ्गीरणितरमणीयानमुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि । शिखरिणीयं सुखयति ।।[3]

---

1. गीतगोविन्द - 4/1
2. नारायणीयम् - 37/1
3. गीतगोविन्द

कदाचित् गोपालान् विहितमखसम्भारविभवान्
निरीक्ष्यत्वं, शौरे, मघवमदमुद्ध्वंसितुमनाः
विजानन्नप्येतान् विनयमृदु नन्दादि पशुपा-
नपृच्छः कोवाऽयं जनक, भवतामुद्यम इति ।[1]

यहाँ प्रति चरण 17 वर्ण होने से शिखरिणी छंद है ।

स्रग्धरा

मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण के हिसाब से 21 वर्णों का स्रग्धरा छंद होता है ।

व्यालोल: केशपाशस्तरलितमलकै: स्वेदलोलौ कपोलौ
स्पष्टा-दष्टाधरश्री: कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टि:
काञ्ची कञ्चिद्गताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्य:
पश्यन्ती चात्मरूपं तदपि विलुलितं स्रग्धरेयं धुनोति ।।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी इच्छा और भावों के अनुसार छंदों का प्रयोग अपनी रचना में किया है ।

अलंकार

काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते ।

काव्य का उत्कर्ष बढ़ाने के लिए प्रयुक्त होनेवाले धर्मों को अलंकार कहते हैं ।

सौन्दर्य अलंकार: । अर्थात् सौन्दर्य ही अलंकार है । अलंकार भावों की उत्कृष्ट व्यंजना में सहायक होते हैं । अग्निपुराण में काव्य में अलंकारों के महत्व पर बल दिया है ।[2]

---

1. नारायणीयम् - 62/1

2. अलंकरणमर्थानामर्थालंकार इष्यते ।
तं बिना शब्दसौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् ।। अग्निपुराण

अलंकार दो प्रकार के होते हैं - शब्दालंकार और अर्थालंकार । शब्दों के कारण जहाँ चमत्कार होता है वहाँ शब्दालंकार है और अर्थ के कारण जहाँ चमत्कार होता है वहाँ अर्थालंकार है । व्यासजी के अनुसार अर्थालंकार के बिना शब्द सौन्दर्य भी मनोहर नहीं होता ।

भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियों और संस्कृत के कवियों ने शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया है ।

अनुप्रास

जहाँ व्यंजनों की समता हो वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है ।

अधर मधुर धर वंशी बजावां, रीझ रिझावां व्रजनारी जी ।

यहाँ धर और रीझ व्यंजनों की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है ।

गावै गुनी गनिका गन्धरब औ सारद सेस सबै गुन गावत ।

यहाँ ग और न व्यंजन की आवृत्ति हुई है ।

सखि सखा सब सुबल सुदामा, देखि धौं बूझि बोलि बलदाऊ ।

यहाँ स और ब की आवृत्ति हुई है ।

दोउ भैया मैया पै माँगत दै री मैया माखन रोटी ।

यहाँ "या" की आवृत्ति हुई है ।

वेणुरन्ध्र तरलाङ्गुलीदलं ताल सञ्चलितपादपल्लवं ।

यहाँ ल की आवृत्ति हुई है ।

चित्रं चित्रमहो विचित्रमहहो चित्रं विचित्रं महः ।

यहाँ चि, त्र, म, ह आदि की आवृत्ति हुई है ।

ललितलवङ्ग लतापरिशीलन कोमल मलय समीरे ।

यहाँ ल की आवृत्ति हुई है ।

<u>पुनरुक्ति</u>

जहाँ एक ही शब्द का उत्कर्ष बढ़ाने के लिए एक से अधिक बार प्रयोग होता है, वहाँ पुनरुक्ति अलंकार होता है ।

धन्य धन्य गोवर्धन पर्वत करत प्रसंसा सुर मुनि पुनि पुनि ।
यहाँ शब्द का उत्कर्ष बढ़ाने के लिए धन्य का तथा पुनि का दो दो बार प्रयोग हुआ है ।

जोगी मत जा मत जा मत जा, पाँव परूँ मैं तेरी ।
यहाँ मत जा का तीन बार प्रयोग हुआ है । इससे यहाँ पुनरुक्ति अलंकार है ।

पै कहा करौ वा रसखानि विलोकि हियो हुलसै हुलसै हुलसै ।
यहाँ हुलसै का तीन बार आवृत्ति हुई है ।

कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढे ठाढे खात ।
यहाँ कूदि, किलकि और ठाढे का दो दो बार आवृत्ति हुई है ।

किं किं जातो हर्षवर्षातिरेक: ।
यहाँ किं की पुनरुक्ति हुई है ।

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो-
मधुरं मधुरं वदनं मधुरं ।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदहो
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम् ।।[1]

यहाँ मधुरं शब्द की आठ बार आवृत्ति हुई है । इसलिए यहाँ पुनरुक्ति अलंकार है ।

---

1. कृष्णकर्णामृतम् - 1/91

प्रिये चारुशीले प्रिये चारुशीले
मुञ्च मयि मानमनिदानम् ।[1]

यहाँ प्रिये चारुशीले का दो बार प्रयोग हुआ है । इसलिए यहाँ पुनरुक्ति अलंकार है ।

उपमा

दो पदार्थों में उपमान-उपमेय भाव से समान धर्म के कथन करने को उपमा अलंकार कहते हैं ।

पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस, ज्यौं जल में कांची गागरी गरी ।

इसमें सुमुखी को कृष्ण प्रेम में उसी प्रकार डूबी हुई दिखाया गया है जिस प्रकार कांच की गागरी जल में डूबी रहती है । यहाँ उपमा अलंकार है ।

ज्यू चातक धणकूँ रहै, मछली ज्यूँ पाणी हो ।
मीरा आकुल विरहिणी सुध बुध बिसराणी हो ।[2]

पहली पंक्ति में चातक को धन के लिए और मछली को पानी के लिए व्याकुल दिखाया गया है । दूसरी में मीरा को चातक और मछली के समान ही व्याकुल दिखाया गया है । इसलिए यहाँ उपमा अलंकार है ।

किंजल्क बसन किसोर मूरति भूरि गुन करुणाकरं
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयंक समाननं ।।[3]

यहाँ पहली पंक्ति में वस्त्र को उपमा कमल के केसर से की गयी है । दूसरी में मुख को शरत काल के पूनो की रात के चन्द्रमा के समान कहा गया है । इसलिए यहाँ उपमा अलंकार है ।

रूपक

उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं ।

---

1. गीतगोविन्द
2. मीरा सुधा सिंधु - 1/67 - पृ. 183
3. कृष्ण गीतावली - पद 19

सोभा सिन्धु न अंत रही री ।

नंद भवन भरि पूरि उमंगि चलि, व्रज की वीथिन फिरति बही री ।

यहाँ सोभा पर सिन्धु पर आरोप किया गया है । यहाँ रूपक अलंकार है ।

असुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई ।

यहाँ आँसुओं पर जल का तथा प्रेम पर बेल का आरोप होने से रूपक अलंकार ।

चित चकोर मन मोर, कुमुद मुद सकल विकल अधिकाई ।

तनु तडाग बल बारि सुखन लग्यो परी करूपता काई ।

प्रान मीन दिन दीन दूबरे दसा दुसह अब आई ।।

यहाँ चित्त पर चकोर के आरोप से, मन पर मोर के आरोप से तन पर तडाग के आरोप से, बल पर जल के आरोप से, प्राण पर मछली के आरोप से रूपक अलंकार है ।

नीलनलिनाभमपि तन्वि ! तव लोचनं धारयति कोकनदरूपम् ।

यहाँ नील नलिन का आरोप आँखों पर होने से यहाँ रूपक अलंकार है ।

मधुसूदन वदनसरोजम् - कृष्ण के मुख को अरविन्द कहा गया है ।

उत्प्रेक्षा

जहाँ प्रस्तुत की अप्रस्तुत में संभावना की जाए वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है ।

नील बसन तनु सजल जलद मनु दामिनि विवि भुज दंड चलावति ।

चंद्रबदन लट लटकि छबीली मनहुँ अमृत रस ब्यालि चुरावति ।।

कृष्ण के शरीर पर नीले वस्त्र ऐसे सुशोभित है मानो जल से भरे मेघ हो, उनके भुजयुगल विद्युत के समान चल रहे हैं । उनके चन्द्रमुख पर सुन्दर अलकें ऐसी लटक रही हैं मानो नागिनें अमृत-रस की चोरी कर रही हों । यहाँ प्रस्तुत की अप्रस्तुत में संभावना दिखाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

धरती रूप नवा-नवा धरिया, इन्द्र मिलण के काज ।

यहाँ प्रस्तुत धरती पर अप्रस्तुत इन्द्र मिलन की संभावना दिखाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

मैन मनोहर बैन बजै सु सजे तन सोहत पीत पटा है ।
यों दमकै चमकै झमकै दुति दामिनी की मनो स्याम छटा है ।

यहाँ भी प्रस्तुत की अप्रस्तुत में संभावना दिखाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

आलसंवत सुभग लोचन सखि ।
छिन मुदत छिन देत उघारी ।।
मनहुँ इन्दु पर खंजरीट द्वै
कछुक अरुण निधि रचे सँवारी ।।

अलसाये नेत्र एक क्षण के लिए खुलते हैं फिर बन्द हो जाते हैं । नींद न आने से आँखें कुछ लाल हो गयी है । यह ऐसा लगता है मानो ब्रह्म ने चन्द्र पर कुछ लाल रंग के दो खंजन सँवारकर बनाये हैं । यहाँ प्रस्तुत की अप्रस्तुत में संभावना दिखाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

वेणीमुले विरचितघनश्यामपि छावचूडो ।
विद्युल्लेखावलयित इव स्निग्धपीताम्बरेण ।।[1]

यहाँ बालों पर नीलमेघ के तथा पीले वस्त्र पर बिजली की संभावना दिखाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति ।।[2]

यहाँ कृष्ण के मुख को मानों अमृत कहा गया है । इसलिए यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

---

1. कृष्णकर्णामृतम् - 2/7
2. गीतगोविन्द - 1/3

अहिमरुचि रसातलं प्रविष्टे
भयचकितस्स्वविनाशमाकलय्य
तत इव तरसोत्वतन्नसीमा
तिमिर भरः पृथिवीतलं प्रपेदे ।।[1]

जब सूर्य समुद्र में डूब गया, तब अंधेरा इस डर से कि सूर्य उसे नष्ट कर देगा, धरती पर फैल गया । यहाँ प्रस्तुत की अप्रस्तुत में संभावना दिखाने से उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

प्रतीप

जब उपमेय के द्वारा उपमान का अपमान किया जाता है, तब प्रतीप अलंकार होता है ।

मुख छबि कहा कहौं बनाइ ।
निरखि निसि पति बदन सोभा, गयो गगन दुराइ ।।

यहाँ उपमेय के द्वारा उपमान का अपमान होने से प्रतीप अलंकार है ।

सन्देह अलंकार

जब उपमेय या उपमान में रूप आकार आदि की समता देखकर यह निश्चय नहीं हो पाता कि उपमान वास्तव में उपमेय है या नहीं, दुविधा बनी ही रहती है, तब सन्देह अलंकार होता है ।

कंधर की धर मेरु सखी री ।
की बग पंगति की सूक सीपज, मोर कि पीड परती री ।
की सुर चाप किधौं बनमाला, तड़ित किधौ पट पीत
किधौ मंद गरजनि जलधर की, पग नूपुर रव नीता

---

1. कृष्णविलास - 3/41

की जलधर की स्याम सुभग तनु, यहै भोर तै सोचति

सूरस्याम रस भरी राधिका, उमंगि उमंगि रस मोचति ।[1]

यहाँ यह निश्चय नहीं हो पाता कि उपमान वास्तव में उपमेय है या नहीं, इससे यहाँ सन्देह अलंकार है ।

उदाहरण

जिन दो वाक्यों का साधारणधर्म भिन्न हो उनमें वाचक शब्द द्वारा समता दिखाने पर उदाहरण अलंकार माना जाता है ।

तुम बिच हम बिच अन्तर नाहिं, जैसे सूरज छाया ।

यहाँ साधारण धर्म भिन्न होते हुए भी सूरज और छाया की तरह अभिन्नता दोनों के बीच दिखाया गया है । इसलिए यहाँ उदाहरण अलंकार है ।

असंगति

विरोध के आभास सहित कारण-कार्य की स्वाभाविक संगति के त्याग को असंगति अलंकार कहते हैं ।

लाज गाज उन बनि कुचाल कलि

परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी ।[2]

कलियुग रूपी दुर्योधन की कुचाल रूपी मेघघटा का घेरना और उसके द्वारा लज्जा-हरण रूपी वज्राघात की आपत्ति डंका पीटकर कहीं पर पड़ी परन्तु उसने कहीं अन्यत्र ही जाकर गर्जन के साथ आघात किया । यहाँ पर कार्य कारण की स्वाभाविक संगति का त्याग और विरोध का आभास होने के कारण असंगति अलंकार है ।

---

1. सूरसागर - पद 2675 (ना.प्र.स.)
2. श्रीकृष्णगीतावली - पद 60

वक्रोक्ति

जहाँ किसी उक्ति में वक्ता के अभिप्रेत आशय से भिन्न अर्थ की कल्पना की जाय वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है ।

अङ्गुल्या कः कवाटं प्रहरति ? कुटिले माधवः किं वसन्तो ?
नो चक्री, किं कुलालो ? नहि धरणिधरः, किं द्विजिहः फणीन्द्रः ?
नाहं घोराहिमर्दी, किमसि खगपतिर्नोहरिः किं कपीन्द्रः ?[1]

यहाँ कृष्ण के अभिप्रेत आशय से भिन्न अर्थ की कल्पना के कारण वक्रोक्ति अलंकार है ।

वर्णन परंपरा

वर्णन परंपरा प्रायः महाकाव्यों में देखी जाती है । फिर भी सूरदास, मीरा, तुलसीदास, नारायण कवि, बिल्वमंगल, जयदेव आदि ने अपनी रचनाओं में इसका प्रयोग किया है । वर्णन परंपरा के अंतर्गत कई प्रकार के वर्णन आते हैं जैसे नगर वर्णन, ऋतु वर्णन, प्रकृति वर्णन, संयोग वर्णन, वियोग वर्णन, रूप और सौन्दर्य वर्णन आदि ।

सूरदास, मीरा, रसखान, तुलसीदास, नारायण कवि, बिल्वमंगल और जयदेव कवि सभी के काव्यों में रूप और सौन्दर्य वर्णन तथा वियोग वर्णन मिलता है । मीरा और जयदेव कवि ने ऋतु वर्णन भी किया है । सूरदास और जयदेव कवि ने संयोग वर्णन भी किया है । इन कवियों के ये वर्णन बहुत ही प्रभावात्मक बने हैं । एक एक कवि का वर्णन अपने ढंग का अलग है । उसकी अपनी अपनी विशेषता निखरकर सामने आयी है ।

---

1. कृष्णकर्णामृत - 3/105

रूप तथा सौंदर्य वर्णन

सभी कृष्ण काव्यों की यह विशेषता रही है कि उनमें कृष्ण का रूप तथा सौंदर्य का वर्णन मिलता है । इन कवियों ने लौकिक और अलौकिक कल्पनाओं से इन वर्णनों को सजीव तथा मनोमुग्धकारी बनाया है । इन कवियों का वर्णन पाठकों को भाव-विभोर करने में अत्यंत सफल हुए हैं ।

सूरदास अपने इष्टदेव कृष्ण का वर्णन करने में अत्यंत सफल हुए हैं । उन्होंने बाल कृष्ण का जो चित्र खींचा वो इस प्रकार है -

बरनौ बाल बेष मुरारि । थकित जित तित अमर मुनि गण नंदलाल निहारि ।।
केस सिर बिन बपन के चहुँ दिसा छिटके झारी ।
सीस पर धरि जटा मनु सिसु रूप कियौ त्रिपुरारि ।।
तिलक ललित ललाट केसरि बिन्दु सोभाकारी ।
रोष अरून तृतीय लोचन रह्यौ जनु रिपु जारि ।।
कंठ कठुला नील मनि अंभोज मालि सँवारि ।
गरल ग्रीव कपाल उर इहिं भाइ भए मदनारि ।।
कुटिल हर निख हिऐ हरि के हरणि निरखति बरि ।
ईस जनु रजनीस राक्यौ भाल तै जु उतारि ।।
सदन रज तन स्याम सोभित सुभग इहि अनुहारि ।
मनहुँ अंग बिभूति राजति संभु सो मधुहारि ।।[1]

देखिए कितना मनोहर वर्णन है बालरूप श्रीकृष्ण का ।

सूरदास के किशोर कृष्ण का रूप वर्णन देखिए -

साँवरौ मनमोहन माई । देखि सखी बन तै व्रज आवत सुन्दर नंद कुमार कन्हाई ।

---

1. सूरसागर - दशक स्कंध पद - 169

मोर पंख सिर मुकुट विराजत मुख मुरली धुनि सुभग सुहाई ।
कुंडल लोल कपोलनि की छबि मधुरी बोलनि बरनि न जाई ।।
लोचन ललित ललाट भृकुटि बिच तकि मृगमद की रेख बनाई ।
मनु मरजाद उल्लंघि अधिक बल उमँगि चली अति सुंदरताई ।।
कुंचित केस सुदेस कमल पर मनु मधुपनि माला पहिराई ।
मंद मंद मुसुक्यानि मनौ घन दामिनि दुरि दुरि देति दिखाई ।।
सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई ।
मनुँ सुक सुरँग बिलोकि बिंब फल चाखन कारन चोंच चलाई ।।[1]

गोपियों के मुँह से किशोर कृष्ण का मनोमुग्धकारी वर्णन करने सूर अत्यंत सफल हुए हैं । कृष्ण के एक एक अंग का वर्णन करते हुए मानों सूर की वाणी थकती ही नहीं, सूर को जहाँ कहीं भी कृष्ण के रूप-सौंदर्य वर्णन करने का मौका मिला, उन्होंने उसे अच्छी तरह इस्तेमाल किया । हम यों भी कह सकते हैं कि सूरसागर में कृष्ण का रूप-सौंदर्य वर्णन भरा पडा है ।

सूर की तरह ही मीरा ने भी अपने प्रिय कृष्ण का रूप सौंदर्य का वर्णन किया है । मीरा ने कृष्ण का चित्र इस प्रकार खींचा है -

जब से मोहिं नंदनंदन, दृष्टि पडयो माई ।
तबसे परलोक लोक, कछु ना सोहाई ।।
मोरन की चन्द्रकला, सीस मुकुट सोहै ।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहैं ।।
कुँडल की अलक झलक, कपोलन पर धाई ।
मनो मीन सखर तजि, मकर मिलन आई ।।
कुटिल भृकुटि तिलक भाल चितवन में टोना ।
खंजन अरू मधुप मीन, भूले मृग छौना ।।

---

1. सूरसागर - दशम स्कंध - पद 616

सुन्दर अति नासिका, सुग्रीव तीन रेखा ।
नटवर प्रभु भेष धरे, रूप अति विसेषा ।।
अधर बिंब अरुण नैन, मधुर मंद हाँसी ।
दसन दमक दाडिम दुति, चमके चपलासी ।।
छुद्र घंट किंकिनी, अनूप धुनि सोहाई ।
गिरिधर के अंग अंग, मीराँ बलि जाई ।।[1]

मीरा के कृष्ण का रूप सौन्दर्य वर्णन अत्यंत स्वाभाविक दीख पडता है । श्रीकृष्ण के अंग प्रत्यंग का वर्णन मीरा के हाथों सजीव बन गया है । ऐसा लगता है मानों मीरा आँखें देखा हाल बयान कर रही है ।

रसखान के कृष्ण का रूप सौन्दर्य वर्णन देखिए -

दमकै रवि कुंडल दामिनि से धुखा जिमि गोरज राजत है ।
मुकताहल-वारन गोपन के सु तौं बूँदन की छबि छाजत है ।
ब्रजबाल नदी उमही रसखानी मयंकबधु-दुति लाजत है ।
यह आवन श्री मनभावन की बरषा जिमि आज बिराजत है ।।[2]

एक दूसरा दृष्टांत देखिए -

मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं गुंज की माल गरें पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी ।।
भावतो वोहि मेरो रसखानि सों तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी ।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी ।।[3]

रसखान ने कृष्ण का चित्र स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया है ।

---

1. मीराँ सुधा-सिन्धु - दर्शनान्द के पद - 6
2. रसखान रचनावली सवैया - 166
3. वही - सवैया -3

नारायणीयम् में नारायण कवि भट्टत्तिरि ने बालकृष्ण का रूप सौन्दर्य इस प्रकार वर्णित किया है -

श्रीकृष्ण घुटनों पर चल रहे हैं । दखिए उनका वर्णन -

मृदु मृदु विहसन्तावुन्मिषद्दन्तवन्तौ
वदन पतितकेशौ दृश्यपादाब्जदेशौ ।
भुजगलितकरान्तव्यालगत्कङ्कणाङ्कौ
मतिमहरतमुच्चैः पश्यतां विश्वनृणाम् ।।[1]

अर्थात् बीच बीच में मन्द मन्द मुसकरा देते थे जिससे नयी-नयी निकलती आपकी दंतुलियाँ दीख पडती थीं । भागने के कारण आप के मुख पर घुँघराली अलकें बिखर जाती थीं । घुटने के बल चलने से आपके चरण कमल के तलपे स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते थे । भुजाओं के ऊपरी भाग से खिसककर मणिबन्ध में सटे हुए कङ्कणों से आप की अनोखी शोभा हो रही थी । इस प्रकार आप अपने को निहारनेवाले सभी मनुष्यों के मन को हठात् हर लेते थे ।

नारायण कवि का वर्णन अत्यंत मनोरम हुआ है ।

बिल्वमंगल स्वामी ने अपने कृष्ण कर्णामृत में कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन कुछ अनोखे और निराले ढंग से किया है । उनके अनुसार कृष्ण में सौंदर्य अपनी चरम सीमा प्राप्त कर लेता है ।[2] बिल्वमंगल स्वामी ने कृष्ण का नख शिख वर्णन तो किया ही है । रूप और सौंदर्य के वर्णन में उनकी सबसे बडी विशेषता उसकी प्रभावपूर्णता है । उनके ये वर्णन अपने ढंग के अलग है । उनका पूरा काव्य कृष्ण के रूप और सौंदर्य वर्णन से भरा पडा है । कृष्ण के रूप सौंदर्य के बारे में उनका प्रसिद्ध श्लोक है -

---

1. नारायणीयम् - 45/2
2. रमणीयतापरिणतिस्त्वय्येव पारंगता ।
   कृष्णकर्णामृत - पद 99 - पहला आश्वास

कस्तूरीतिलकं ललाटफलके वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे नवमौक्तिकं करतले वेणुं करे कङ्कणम् ।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं च कलयन् कण्ठे च मुक्तावलीं
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ।।[1]

अर्थात् वह गोपियों से घिरा हुआ, गोपालों का ललामभूत श्रीकृष्ण, नित्य विजयी है, जिसने अपने विशाल भाल पर कस्तूरी का तिलक लगाया है, जिसकी छाती पर कौस्तुभमणि झलकती है, जिसके नासिकाग्र में नवमौक्तिक है, जिसके हाथों में मुरली तथा कलाई में कंगन है । उनके पूरे देह पर हरिचंदन का लेप लगाया हुआ है और गले में मोतियों का हार है ।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवि कृष्ण का रूप सौंदर्य खींचने में सफल हुए हैं । उनका सौंदर्य चित्रण पाठकों के मन में अत्यंत हर्ष जगाने में तथा उन्हें भाव-विभोर करने में अत्यंत सफल रहा है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी श्रीकृष्णगीतावली में कृष्ण का रूप-सौंदर्य वर्णन प्रस्तुत किया है जिसमें उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं की अनूठी कल्पना है । श्रीकृष्ण यमुना तट पर मुरली बजा रहे हैं । गोपियाँ अपना सब कुछ त्याग कर कृष्ण का मुरली वादन सुनने को भागती हुई आती हैं । वहाँ आकर गोपियाँ कृष्ण का सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो जाती हैं । तुलसीदास यहाँ तक कहते हैं कि कृष्ण का रूप सौंदर्य तीनों तापों को हरनेवाला है । एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है -

देखु सखि हरि बदन-इंदु पर ।
चिक्कन कुटिल अलक-अवली-छबि, कहि न जाइ सोभा अनूप वर ।।
बाल भुअंगिनि-निकट मनहुँ मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर ।

---

1. श्रीकृष्णकर्णामृत - दूसरा आश्वास श्लोक - 108

तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन बिचारि डरहिं डर ।।
अरुन वनज-लोचन, कपोल सुभ-श्रुति मंडित कुंडल अति सुन्दर ।
मनहुँ सिंधु निज सुतहि मनावन पठये जुगल बसीठ बारिचर ।।
नंदनंदन मुख की सुन्दरता कहिं न सकत श्रुति सेष उमावर ।
तुलसीदास त्रैलोक्यविमोहन रूप कपट नर त्रिविध सूलहर ।।[1]

तुलसी का रूप सौंदर्य वर्णन देखिए । देखते ही बनता है । उनके सौंदर्य वर्णन में भव्यता और मनोमुग्धकारिता कूट कूट कर भरी हुई है ।

विरह वर्णन

अनादिकाल से ही विरह कवियों का प्रिय विषय रहा है । विशेष कर कृष्ण भक्त कवियों का । कहते हैं विरह की ग्यारह दशाएँ होती हैं । सूरदास जैसे कवियों ने गोपियों के विरह वर्णन के ज़रिए इन ग्यारह दशाओं का वर्णन किया है ।

एक उदाहरण देखिए - रास लीला के वक्त गोपियों के बीच से कृष्ण एकदम ओझल हो जाते हैं । गोपियाँ कृष्ण को ढूँढती फिरती हैं । कृष्ण को देखे बिना वे अत्यंत व्याकुल हो जाती है । वे वन के पेड पौधों से पूछती फिरती हैं । सूरदास का वर्णन देखिए -

अति व्याकुल भई गोपिका ढूँढत गिरिधारी ।
बूझति हैं बन बेलि कौं देखे बनवारी ।।
पाही जूहि सेवती करना कनियारी ।
बेलि चमेली मालती बूझति द्रुम डारी ।।
कूजा मरुआ कुंद सौं कहैं गोद पसारी ।
बकुल बहुलि बट कदम पै ठाढ़ी ब्रजनारी ।।

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 2।

बार बार हा हा करैं कहूँ हौ गिरिधारी ।
सूर स्याम कौ नाम लै लोचन जल ढारी ।।[1]

देखिए कितना मार्मिक वर्णन है । वे कृष्ण को खोजते खोजते बेहाल हो गयी है । कृष्ण के बिना उनका विरह जंजाल बन गया है ।

सूरदास ने यही नहीं अन्य कई जगह पर भी गोपी विरह का वर्णन किया है जिसमें मुख्य है कृष्ण के मथुरा जाने के बाद का गोपी विरह । उसका वर्णन भी अत्यंत मार्मिक और हृदयस्पर्शी बन गया है । ऐसा लगता है मानों विरह के आँसुओं से पदों की पंक्तियाँ गीली हो गई है ।

मीरा ने भी कृष्ण विरह का वर्णन अपनी पदावली में किया है ।

मीरा का सारा जीवन अपने प्रियतम के विरह में व्यतीत हुआ । उनके पद के एक एक पंक्ति में विरह मुखरित होता दिखाई देता है ।

देख्या कोई नंद के लाला, बतावौं बंसरी वाला ।
मेरो मन लेगयो हेली, लगी तन मैं तालाबेली ।।
लगो कोई कान थैं दूती, तजी मोहि सेज में सूती ।
विरह का बाण भर मारया, कलेजा छेद कर डारया ।।
देख्यां बिन जीव अति तरसै, नैनों में नीत अति बरसै ।
जहाँ ऊ कान्ह कारो री, मुझे ले जाय डारो री ।।
तज्या सब खान पान री, नहीं मेरी पीड जानी री ।
मोहन मोहन पुकारू री, सोवन सिर केस सँवारूँ री ।।
ढूँढया बन बाग सारो री, मिल्या नहीं प्राण प्यारा री ।
हेली हरि[illegible]न मिलावौ री, मीराँ के प्राण बचावै री ।।[2]

---

1. सूरसागर - दशम स्कंध - पद 1095
2. मीरा सुधा सिन्धु - पद 144

देखिए विरह का कितना स्वानुभूत और भव्य चित्रण है । मीरा के विरह की विशेषता यह है कि उनका विरह स्वानुभूति पर आधारित है ।

रसखान की गोपियों का विरह वर्णन देखिए -

कृष्ण के विरह में गोपियाँ तप रही हैं । जब विरह की अग्नि लगी तो यमुना में स्नान करने गयी थी लेकिन विरहाग्नि के कारण यमुना का जल भी सूख गया ।

बिरहा की जु आँच लगी तन में तब जाय परी जमुना जल में ।
बिरहानल में जल सूखि गयौ मछली बहीं छाँडि गई तल में ।
जब रेत फटी रु पताल गई तब सेस जर्‌यौ धरती तल में ।
रसखान तबै इहि आँच मिटै जब आय कै स्याम लगैं गल में ।।[1]

रसखान ने विरह को प्रभावात्मक ढंग से चित्रित किया है । इतना मार्मिक वर्णन केवल रसखान से ही हो सकता है ।

तुलसीदास ने अपनी श्रीकृष्णगीतावली में विरह का मार्मिक वर्णन किया है । कृष्णगीतावली में अधिकांश पद विरह वर्णन के ही मिलते हैं । श्रीकृष्ण मथुरा चले जाते हैं । कृष्ण के विरह में गोपियाँ विरहाग्नि में जल रही है । गोपियों की विरहावस्था का वर्णन ज़रा देखिए -

जब ते व्रज तजि गये कन्हाई ।
तब तें विरह रबि उदित एक रस सखि बिछुरनि वृष पाई ।।
घटत न तेज, चलत नाहिन रथ, रह्यो उर नभ पर छाई ।
इन्द्रिय रूप रासि सोचहिं सुठि, सुधि सबकी बिसराई ।

---

1. रसखान रचनावली - सवैया - 226

भयो सोक-भय-कोक-कोकनद भ्रम-भ्रमरनि सुखदाई ।
चित चकोर, मन मोर, कुमुद मुद, सकल विकल, अधिकाई ।।
तनु तडाग बल-बारि सूखन लग्यो, परी कुरूपता काई ।
प्रान मीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई ।।
तुलसीदास मनोरथ-मन-मृग मरत जहाँ तहँ धाई ।
राम-स्याम सावन-भादौं बिनु जिय की जरनि न जाई ।।[1]

कितना सुन्दर वर्णन है । लगता है तुलसी ने एक एक शब्द में अनुभूत विरहानुभूति को चित्रित किया है । श्रीकृष्णगीतावली में तुलसी श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर वियोगिनी गोपियों का हृदयस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत करने में अत्यंत सफल हुए हैं । वियोग श्रृंगार के अंतर्गत लिखे गये गीतों में कवि ने वियोग की विभिन्न अन्तर्दशाओं का चित्रण भी किया है ।

नारायण कवि ने अपने नारायणीयम् में गोपियों की विरह दशा का वर्णन किया है । रास लीला के मध्य से कृष्ण अचानक अन्तर्धान हो जाते हैं । गोपियाँ कृष्ण को ढूँढती फिरती है । ज़रा देखिए -

हा चूत हा चम्पक कर्णिकार हा मल्लिके मालति बालवल्ल्य:
किं वीक्षितो नो हृदयैकचोर इत्यादि तारत्वत्प्रवणा विलेपु: ।।[2]

अर्थात् गोपस्त्रियाँ हा चूत, हा चम्पक, हा कर्णिकार, हा मल्लिके, हा मालती, हा नूतन वल्लरियो ! क्या तुम ने हमारे एकमात्र चित्तचोर नन्दकिशोर को देखा है - ऐसा कहकर विलाप करने लगीं ।

देखिए कृष्ण के न मिलने से गोपियाँ कितनी व्याकुल हो उठती है । प्रिय वस्तु के न मिलने से मन जितना व्याकुल हो उठता है, मन

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 29
2. नारायणीयम् - 65/5

उसे उतना ही अधिक चाहता है । यही प्रेम का रहस्य है । नारायण कवि का यह विरह सूरदास के विरह वर्णन से मिलता जुलता है । दोनों कवियों के वर्णन में भाव साम्य देखा जाता है ।

जयदेव कवि के गीतगोविन्द में राधा का विरह वर्णन देखा जाता है ।

श्रीकृष्ण राधा को छोडकर चले जाते हैं । राधा कृष्ण विरह में दुःखी है । इसका वर्णन राधा की सखी कृष्ण से करती हैं । कृष्ण के बिना राधा को भवन वन के समान लगने लगता है । उसको विरहाग्नि सताती रहती है । उसकी स्थिति अत्यंत शोचनीय बनी हुई है -

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त । हरिणीरूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयऽ्शार्दूल विक्रीडितम् ।।[1]

कितना हृदयस्पर्शी वर्णन है । जयदेव कवि ने मानो पाठकों के सामने राधा का हृदय खुल के रखा है ।

ऋतु वर्णन

सूरदास, मीरा और जयदेव कवि ने ऋतु वर्णन किया है । वर्ष के छः ऋतुओं में वर्षा और वसंत ऋतु को महत्व दिया गया है । कहते हैं ऋतु का असर व्यक्ति के मानस पटल पर पडता है । इन दोनों ऋतुओं में

---

1. गीतगोविन्द - चतुर्थ भाग - ।

विरह और मिलन की तीव्रता का अधिक अनुभव होता है । कहते हैं कि एक बार कृष्ण ने उद्धव से कहा था कि वर्षा ऋतु मेरा ही स्वरूप है । मेरे स्वरूप का सम्यक् रूपेण अनुभव करना हो तो वर्षा ऋतु की विचित्र लीला का अवलोकन करो ।

सूरदास ने सूरसागर में वर्षा ऋतु का वर्णन यों किया है -

गगन गरजि धहराई जुरी घटा कारी ।
पौन झकझोर, चपला चमकि चहुँ ओर,
सुवन तन चितै नन्द डर भारी ।।[1]

उनका वसंत ऋतु वर्णन देखिए -

द्वादस वन रतनारे देखियत चहुँ दिसि टेसू फूले ।
मौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले ।।[2]

सूर ने ऋतु वर्णन अत्यंत बारीकी से किया है ।

मीरा ने अपनी पदावली में वर्षा ऋतु का वर्णन किया है । मीरा ने एक रूपक के ज़रिए इसका वर्णन किया है । बादल रूपी मंडप के नीचे श्रावण मास रूपी वर का चार्तुमास काल में विवाह महोत्सव होता है । अर्थात् आकाश और पृथ्वी के बीच वर्षा काल में अनेकानेक भाव और आनन्द मय हृदय उपस्थित होते हैं जिसमें श्रावण मास की विशेषता मानी है क्योंकि उसकी शोभा सबसे अधिक मनोहारिणी और न्यारी होती है । देखिए -

सावण बनो बन आयो, आयो राज सहेल्याँ म्हारी ।
चार मास को लगन लखायो । बादल मंडप छायो ।।
कालो घटा माँहि चमके दामिनी । बिज्जू हि चमक डरायो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर । निरख निरख गुण गायो ।।[3]

---

1. सूरसागर - पद 1302
2. वही - पद 3472
3. मीरा सुधा सिन्धु - वर्षा 2

मीरा का यह रूपक वर्षा ऋतु का चित्र खींचने में अत्यंत सफल रहा है ।

जयदेव कवि ने वसंत ऋतु का वर्णन किया है । कहते हैं वसंत ऋतु प्रेमियों के मिलन का समय है । गीतगोविन्द में सखि राधा से प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि वसन्त में मलय पर्वत का पवन मानो चन्दन वृक्षों पर स्थित सर्पों के मुख में जाने के कारण पीडित होकर बरफ में स्नान करने के लिए हिमालय की ओर जा रहा है तथा कोमल कोमल आम एवं बकुल की मंजरियों को देख कर कोकिलाएँ आनन्दविह्वल होकर "कुहू-कुहू" का मधुर एवं मनोहर गीत गा रही है ।

अद्योत्सङ्गवसद् भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचल-
म्प्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः ।
किञ्चिग्धरसालमौलिकुसुमान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति मुहूस्ताराः पिकानां गिरः ।।[1]

देखिए जयदेव कवि ने कितना भव्य चित्रण किया है । वसंत ऋतु के आड में प्रकृति वर्णन भी किया है ।

<u>प्रकृति वर्णन</u>

प्रकृति हमेशा मानव मन को आकर्षित करती रही है । वेदों में प्रकृति को परब्रह्म की अर्धांगिनी माना गया है । संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में प्रचुर मात्रा में प्रकृति का वर्णन किया गया है ।

सूरदास ने अपने सूरसागर में प्रकृति का वर्णन किया है । व्रजभूमि अत्यंत मनोरम थी । श्रीकृष्ण की रमणीय लीलाओं के साथ साथ

---

1. गीतगोविन्द - 1/2

सूर ने व्रजभूमि के सौंदर्य का वर्णन भी किया है । सूर का वर्णन देखिए -

जागिये व्रजराज कुंवर, कमल कुसुम फूले ।
कुमुद वृन्द संकुचित भये भृंगलता भूले ।।
तमचुर खग रोर सुनहु बोलत बन राई ।
राँभति गौ खिरकन में बछरा हित धाई ।।
विधु मलीन, रवि प्रकास गावत नर-नारी ।
सूर स्याम प्रात उठौ अंबुज कर धारी ।।[1]

सूर ने यहाँ कृष्ण को जगाने के साथ साथ प्रकृति का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है । इसके अलावा उन्होंने प्रकृति का अलंकृत चित्रण, प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण, प्रकृति का कोमल चित्रण, भयंकर चित्रण आदि किया है ।

सुकुमार कवि ने श्रीकृष्णविलास में अत्यंत रमणीय ढंग से प्रकृति का वर्णन किया है । उन्होंने प्रकृति का स्वाभाविक, अलंकृत, कोमल तथा अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण किया है । एक उदाहरण देखिए -

परितस्फुरता नवेन सन्ध्या-
महसा पल्लवपाटलेन लिप्ता: ।
पतिता इव पावके विरेजु:
ककुभो दुस्सहभानुविप्रयोगात् ।।[2]

सुकुमार कवि ने सन्ध्या का भव्य चित्रण किया है । उनका कहना है कि सान्ध्या की किरणों के फैलने से चारों दिशाएँ ऐसा लगने लगी मानो सूर्य से विरही होने के कारण वे आग में जल रही हो । कवि ने यहाँ अपनी काव्य प्रतिभा का तथा कल्पना के सहारे नया दृश्य उत्पन्न किया है जो सचमुच सराहनीय है ।

---

1. सूरसागर - पद 820
2. श्रीकृष्णविलास - 3/39

भाषा

भाषा के माध्यम से कवि अपनी अनुभूतियों को प्रेक्षणीय बनाता है । ज़्यादातर कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य के लिए व्रजभाषा को चुना है । कोई भी रचना तभी सुन्दर और प्रभावात्मक बनती है जब वह अपनी स्थानीय शैली में प्रस्तुत होती है । इसीलिए कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की क्रीडा स्थली व्रजमंडल की भाषा का प्रयोग अपने काव्य में किया । डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार "कृष्ण भक्ति का साहित्यिक श्रृंगार इसी व्रज भाषा में हुआ और व्रजभाषा का चरमोत्कर्ष कृष्ण भक्ति में हुआ । दोनों ने एक दूसरे को पा लिया । कृष्ण भक्ति को व्रजभाषा से अच्छी भाषा नहीं मिल सकती थीं और व्रजभाषा को कृष्ण साहित्य से बढ़कर विषय नहीं मिल सकता था ।"[1] व्रजभाषा अपने में अत्यंत कोमल भाव समेटने के लिए सक्षम है ।

सूरदास ने अपने काव्य के लिए व्रजभाषा का प्रयोग किया है । उनके पद गेय होने के कारण उन्होंने माधुर्य और लालित्य से भरपूर व्रजभाषा का प्रयोग किया है । उनकी भाषा माधुर्य तथा प्रसाद गुण से संपन्न है । व्रजभाषा की एक सबसे बडी विशेषता है कि उसमें आवश्यकतानुसार बडी आसानी से शब्दों की कटुता तो दूर करने की शक्ति है । जैसे प्रिय से पिय ।

सूरदास ने अपनी भाषा में तत्सम, अर्द्धतत्सम, देशी तथा विदेशी शब्दों का अपनी भाषा में प्रयोग किया है । जैसे -

तत्सम और अर्द्धतत्सम

मुखारविन्द पद्म, लोचन, नयन, अन्तर्यामी, करुणामय, मुद्रिका, करपल्लव, यूथ, नीलाम्बर, आच्छादित, परितोष, पीयूष, कृपासिंधु, गर्व, श्रृंगार, चतुर्दश, भुवन, त्रिवली, नूपुर, रंक, चरण, अगोचर, सुगन्ध, असुरनिकंदन, संताप, अष्टादश, पंगु, सिद्धान्त आदि ।

---

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

तद्भव शब्द

दूत, बच्छ, पूत, गुनी, मथनि, मोहन, फागुन, आँसू, नैन, पानि, पाँति, बेनि, मार्दों, मोती, निठूर, दाँत, भगत बच्छल, ओंठ, अकास, तीरथ, जूथ आदि ।

देशी

चिकनियाँ गांस, ठालीबैठी, फोकट, झूखी, छोहरा, खरिक, साट, चाँडिले, अचगरी, टकटोरना, अजगुन, अपुनपौं, सेंत, टटपैकी, उहकाना, खुटक, अलकलडैते आदि ।

विदेशी

परवाह, ज़ोर, जहाज, आखिर, कसूर, कैद, गुंजाइस, जमा-खर्च, जवाब, फरद, गुलाम, निसान, लोनहरामी, मुसाहिब, नकली आदि ।

भाषा को असरदार एवं सजीव बनाने के लिए सूर ने मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है । इन शब्द समूहों में प्रभावात्मक व्यंजना, मार्मिकता, अर्थ गंभीरता और वैचित्र्य का समावेश होता है । मुहावरा वही है जो शब्द और क्रियाओं के माध्यम से बनती हैं । लोकोक्ति में एक पूरे वाक्य के ज़रिए लोकानुभव का सामान्यीकरण किया जाता है । कृष्ण की विविध लीलाओं में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग चमत्कारिक अभिव्यंजना, व्यावहारिकता और भावाभिव्यक्ति के लिए कुशलता से किया जाता है ।

मुहावरे

दूध दूध पानी सो पानी, बिन दामन को चोटी, कपि ज्यों नाच नचावै, डारि गए उर फाँसी, मूँड चढ़ायो, दाई आगे पेट दुरावति, पाँच की सात लगायो, है कछु लेन न देन, साने के पानी मढ़ौं चोंच अरु पाँखि, तुम संग रहै बलाइ, जैसे को तैसा, मीडत हाथ मीजि कर पछिताहिं, निधनी को धन, दाधे पर लोन लगावै ।

लोकोक्ति

सूरदास जाको मन जासों सोई ताइ सुहात, दुरत नहिं नेह अरु सुगंध चोरी, बीस बिरियाँ, चोर की तौ कबहुँ मिलिहै साहु, लिखि मेटै कौन करै करता जौन सोइ ह्वैहै जु होनहारि करनी, सूर मिलै मन जाहि जाहि सों ताको कहा करै काजी, जैसो बीज बोइए तैसो, लुनिये, खाटी मही कहा रुचि मानै सूर खवैया घी को ।

सूर ने अपने काव्य के लिए पद शैली को अपनाया है । उनके सभी पद गेय हैं । उनकी शैली की बहुत बड़ी विशेषता "कथन की विशेषता है ।" जो कुछ कहेंगे इतना स्पष्ट कर देंगे कि कोई जिज्ञासा ही नहीं रहने पायेगी । प्रत्येक बात को वे साफ-साफ खुलासा करके कह देते हैं ।

मीरा की भाषा

मीरा का काव्य तीव्र अनुभूति का काव्य है । उनका मुख्य उद्देश्य भावानुभूति को व्यक्त करना था । इसके लिए उन्होंने अपनी रचना में व्रजभाषा, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं का प्रयोग किया है । लेकिन उनकी भाषा में सबसे अधिक प्रयोग मीरा की मातृभाषा राजस्थानी का हुआ है । उनकी भाषा तदभव शब्द बहुला है ।

तत्सम तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है । देशी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । मीरा ने अपने काव्य का उत्कर्ष बढाने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग किया है । मीरा की व्रजभाषा का उदाहरण देखिए -

गली तो चारों बंद हुई,
मैं हरि से मिलूँ कैसे जाय ।
ऊँची नीची राह रपटीली,
पाँव नहीं ठहराय ।
सोच सोच पग धरूँ जतन से,
बार बार डिग जाय ।।[1]

राजस्थानी:

घडी एक नहिं आवडे, तुम दरसण बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय ।।
धान न भावै नींद न, विरह सतावै माय ।
घायल सी घूमत फिरूँ रे मेरो दरद न जाणै कोय ।।[2]

गुजराती :

क्यारे आवशो घेर कान रे, जोसीडा जोस जुओ ने ।
देही ओ अमारी वाला दुर्बक थर छे दे,
थइ गई थाकेलो प्राण रे ।।[3]

जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है मीरा ने तत्सम, तद्भव, देशी तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है ।

तत्सम

चरण, हरण, कमल, प्रेम, दीपक, अमर, मुनी, मुख, प्रीत, कुण्डल, जग, श्रवण, उरग, जल, पुराण, भानु आदि ।

---

1. मीरा सुधा सिन्धु - विरह - 34

2. वही - 61

3. वही - 63

तद्भव

जोगी, स्याम, गाँव, दूध, मथत, बिन, शरण, बेद, पीर, बलिहारी, दरसन, कुसुम, बन, निसि, बासर, वण आदि ।

देशी

अपणाँ, त्यूँ, नाहीं, ज्यूँ, राख्याँ, जाण्याँ, णा, तरयाँ, थारो, सुनियत, गउवन, भयो, बोलत, सबै, जमेणा, म्हा आदि ।

विदेशी

फंदा, रिसैल, अरैल, फींका आदि ।

मुहावरे

हाथ बिकाणी, रंग राँचा, हरिसूँ, सैन लगाती, भजन बिना नर फीकों, करेजो, खाय, लागी मोहिं, राम खुमारी हो ।

मीरा ने अपने काव्य में भावानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है । उनके काव्य में भावों की प्रवणता के साथ साथ भाषा का निर्बाध प्रवाह भी बना हुआ है । उनके पदों में संगीतात्मकता का पूरा निर्वाह भी हुआ है । उन्होंने भावानुकूल राग-रागिनियों का प्रयोग किया है ।

मीरा मूलत: एक भक्त थी । इसीलिए सीधे से सरल शब्दों के भीतर अथाह प्रेरणाशक्ति छिपी हुई है । उनका प्रत्येक शब्द बाण की तरह सहृदय के अन्तस में चुभ जाता है ।

रसखान की भाषा

रसखान ने अपना काव्य व्रजभाषा में लिखा । उनकी भाषा सरल, सहज, सुबोध, स्वच्छ, संगीतमय, सुकोमल और मधुर हैं ।

उनकी जैसी भाषा का प्रयोग बहुत कम कवियों ने किया है । सरलता और स्पष्टता का जो गुण रसखान की भाषा में पाया जाता है, वह अन्यत्र नहीं मिलता । उनकी भाषा इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि सरल से सरल शब्दावली भी गूढ़ भावों की व्यंजना में पूर्ण सहायक सिद्ध होती है ।

रसखान ने बोलचाल की भाषा का सामान्य रूप अपनाया । उनकी भाषा में देशज शब्दों का आधिक्य है । तद्भव तथा विदेशी शब्द बहुत कम पाये जाते हैं । उनके काव्य में पाये जानेवाले तद्भव, देशी तथा विदेशी शब्दों का उदाहरण देखिए -

तद्भव

मानुष, छार, संपत्ति, हिय, सोहत, दूध, हाथ, बानिक, प्रान, बैन, मूरति, माझ, देस, नरेस, बिदेस ।

देशज

सों, कों, करै, तातें, छाड़ि, ढोंटा, जबही, ऐंचि, तें, मै, ऐहैं, हैं, धरिवै, कूदावो, अबही, बाजै, बधैया, चितवै, कितहूँ, देरेहौं, कहयौ, छुडावही, पटवारौ, बैरिन, बँसरी, बसिबोई, नेकु, कुलकानि ।

विदेशी

अचानक, फंदन, नेजा, महबूब, जाँबाजी, ताक ।

तत्सम

लोचन, कदम्ब, वनमाली, तनुजा, क्रोध, कुण्डल, कपोल, नैन, दधि ।

रसखान की भाषा सर्वत्र भावाभिव्यंजक तथा भावानुरूपिणी रही है । उनकी भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रधानता है ।

रसखान की शब्द योजना अत्यन्त अनूठी रही है । उनकी भाषा में चित्रात्मकता का भी अभाव नहीं है । रसखान ने बाँसुरी के प्रभाव का वर्णन बिंबात्मक रूप में किया है । कृष्ण की बाँसुरी सुनकर गोपियों की क्या दशा होती है, इन पंक्तियों में देखिए -

जल की न घट भरैं, मग की न पग धरैं
घर की न कछु करैं बैठी भरैं साँसु री ।
एकै पुनि लोट गई एकै लोट-पोट भई
एकनि के दृगन निकसि आये आँसु री ।।[1]

रसखान की सानुप्रासिक व्रजभाषा संगीतात्मक नाद सौंदर्य उत्पन्न करता है । भाषा में माधुर्य भी है प्रवाह भी है ।
उदाहरण देखिए -

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुबेद बतावै ।।
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ।।[2]

रसखान ने अपनी भाषा को सजीव बनाने के लिए मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है । इस वजह से भाषा में सहजता, स्वाभाविकता और प्रभावात्मकता आ गयी है । मुहावरे और लोकोक्तियों का उदाहरण देखिए -

मुहावरे

मोहन जोहन में चित्त चोरत है, बजी व्रज मंडल मांह दुहाई, लोचन दुरावहीं, हास के पानि परे हैं, यह कहा पाटी पढ़ी, डीठि सों डीठि मिली, कोउ नांव धरो, कौन भटू जो लटू नहिं कीनि ।

---

1. रसखान रचनावली - 140
2. वही - 31

लोकोक्तियाँ

मोल छला के लला न बिकेहौं, नेम कहा जब प्रेम कियो, नाहिं उपजैगो बोस नाहिं बाजे फेरि बाँसुरी ।

कृष्णगीतावली में भाषा

तुलसीदास को भाषा पर पूर्ण अधिकार था । उन्होंने कृष्णगीतावली की रचना ब्रजभाषा में की । तुलसी विषय और भाव के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं । यह कृति कृष्ण परक होने के नाते तुलसी ने इसकी रचना पश्चिमी ब्रज में की । कृष्ण कथा तो अपने में अत्यंत कोमल है ही और ब्रजभाषा कोमल भाव समेटने के लिए सक्षम है ही । इसीलिए तुलसीदास ने कृष्ण गीतावली के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया है ।

श्रीकृष्णगीतावली में तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग मिलता है - संस्कृत गर्भित भाषा, तद्भव प्रधान भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषा । संस्कृत गर्भित भाषा का उदाहरण है -

गोपाल गोसुत वल्ल भी प्रिय गोप गोसुत वल्लभे ।
चरणारविन्दमहं भजे भजनीय सुर मुनि दुर्लभं ।।[1]

तद्भव प्रधान भाषा का उदाहरण है -

मोर चंदा चारु सिर मंजु गुंजा पुंज धरे
बनि बन-धातु तन ओढे पीत पट हैं ।[2]

सामान्य बोलचाल की भाषा का उदाहरण है -

छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरी के
तू दै री मैया ।

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद 23
2. वही - 20

"लै कन्हैया" "सो कब ?" अबहिं तात
सिगरि ये हौं ही खैहौं, बलदाऊ को न देहौं ।[1]

इसमें तत्सम, तद्भव, देशी तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग भी स्थान स्थान पर मिलता है जो प्रसंगानुकूल है और भाषा के सौंदर्य को बढ़ाता है । जैसे -

तत्सम शब्द - दुर्लभ, वल्लभ, कानन, मोचन, चरणारविन्द, लोचन, सुमन, नयन, नासिका ।
तद्भव शब्द - सुभ, जतन, स्याम, कान्ह, बरषत, ससि ।
देशी शब्द - छरी, पारो, गाहनी, ते, लागियै, कौनो ।
विदेशी शब्द- गरीब, दगा, बारीक, बेरख, साहिब, तकीब ।

नारायणीयम् की भाषा

नारायण कवि ने अपने नारायणीयम् में गंभीर तथा प्रौढ संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है । उनकी भाषा अत्यन्त प्रवाहमयी है । छोटे से छोटे भाव भी अत्यन्त सूक्ष्मता और सफलता के साथ व्यक्त करने में कवि सक्षम हुए हैं ।

नारायण कवि ने भावानुकूल भाषा का प्रयोग अपने काव्य में किया है । जब वे दर्शन के बारे में बताते हैं तो शैली भी अत्यन्त प्रौढ हो जाती है । उदाहरण के लिए देखिए -

मूर्ध्नामक्ष्णां पदानां वहसि खलु सहस्राणि संपूर्य विश्वं
तत्प्रोत्क्रम्यापि तिष्ठन् परिमितविवरे भासि चित्तान्तरेऽपि ।
भूतं भव्यं च सर्वं परपुरुष भवान् किं च देहेन्द्रियादि-
ष्वाविष्टो ह्युद्गतत्वादमृतसुखरसं चानुभुङ्क्षेत्वमेव ।।[2]

---

1. श्रीकृष्णगीतावली - पद ।
2. नारायणीयम् - 99/8

जब कालिय मर्दन लीला का वर्णन करते हैं तो उनकी शैली नाद-नृत्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है -

अधिरूह्य ततः फणिराजफणान्ननृते भवता मृदुपादरूचा ।
कलशिञ्जित नूपुर मञ्जुमिलत्कर कङ्कण सङ्कुल संक्वणिताम् ।।[1]

उनकी भाषा ओज, माधुर्य और प्रसाद तीनों गुणों से भूषित है । संक्षिप्तता उनकी भाषा की विशेषता है । बड़े से बड़े प्रसंग भी छोटे से श्लोक में आबद्ध कर लेते हैं । कृष्णावतार का प्रसंग उन्होंने केवल एक श्लोक में वर्णित किया है । कुल मिलाकर कह सकते हैं कि नारायण कवि ने प्रसंगानुसार भाषा का संक्षिप्तता के साथ प्रयोग किया है । इससे उनकी भाषा प्रौढ़, गंभीर एवं सुन्दर बनी हुई है ।

श्रीकृष्णकर्णामृत की भाषा

बिल्वमंगल स्वामी ने अपने कृष्ण कर्णामृत की रचना संस्कृत में की है । लीलाशुक अपने मधुर पदावली को लेके आगे बढ़ते हैं । भाषा प्रवाहपूर्ण है । स्वामीजी ने प्रसंगों के अनुसार शब्दों का चयन किया है । शब्द प्रयोग इतना बढ़िया हुआ है कि पद अपने आप में संगीतमय हो गये हैं । उदाहरण के लिए रासक्रीडा का वर्णन लीजिए । गोपियों के बीच खड़े होकर कृष्ण मुरली बजाते हैं । इसका वर्णन देखिए -

अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवो
माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना।
इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः
सञ्जगौ वेणुना देवकीनन्दनः ।।[2]

---

1. नारायणीयम् - 64/9
2. कृष्णकर्णामृत - 2/35

देखिए शब्द प्रयोग कैसे नाद उत्पन्न करता है । रासक्रीडा का संगीतमय वातावरण वर्णन में झलकता है ।

किसी भी बात का वर्णन करने में लीलाशुक बड़े चतुर हैं । छोटी सी छोटी बात को अत्यंत गंभीर विषय के रूप में वर्णित करते हैं । एक गोपी दधी बेचने के लिए जाती है । इस बात को कृष्ण भक्ति में भिगोकर कवि ने ऐसे प्रस्तुत किया है -

विक्रेतुकामा किल गोपकन्या
मुरारिपदार्पितचित्तवृत्तिः ।
दध्यादिकं मोहवशादवोच
गोविन्द दामोदर माधवेति ।।[1]

अर्थात् एक गोपी दही आदि चीज़ें बेचने के लिए निकलती है । वह कृष्ण प्रेम में डूबी हुई पागल थी । इसलिए गलियों में दूध, दही, पुकारने के बजाय गोविन्द, दामोदर, माधव आदि कृष्ण के नाम पुकारने लगी ।

देखिए कितना भव्य चित्रण हैं । एक छोटी सी बात को दूसरी बात (भक्ति) से मिलाकर, एक प्रसंग का रूप दे दिया है । यह लीलाशुक की भाषा की विशेषता है ।

लीलाशुक की भाषा का एक और विशेषता उसकी चित्रात्मकता है । एक एक वर्णन आँखों देखे हाल की तरह चित्रित करने में वे चतुर हैं । उदाहरण के लिए कृष्ण का वर्णन देखिए -

करारविन्देन पदारविन्दं
मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं
बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ।।[2]

---

1. कृष्णकर्णामृत - 2/55

2. वही - 2/57

लगता है जैसे कृष्ण हमारे आँखों के सामने वट वृक्ष पर लेटे हैं । यही उनकी भाषा का कमाल है ।

लीलाशुक ने सरल संस्कृत में अपना काव्य लिखा है । कहीं कहीं बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग किया है । देखिए -

कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मद्भक्षिता स्वेच्छया
तथ्यं कृष्ण क एवमाह मुसली मिथ्याम्ब पश्याननम् ।।[1]

अपनी बातों पर ज़ोर देने के लिए लीलाशुक ने शब्दों को दोहराया है । यह विशेषता इस कवि में अधिक पायी जाती है । जैसे

पश्यामः पंथि पंथि शैशवं मुरारेः ।

यहाँ पंथि दो बार प्रयुक्त हुआ है ।

सत्यं सत्यं दुर्लभं दैवतेषु ।।

सत्यं की आवृत्ति हुई है ।

मधुरं मधुरं मधुरं मधुरं ।

यहाँ मधुरं की चार बार आवृत्ति हुई है ।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि बिल्वमंगल की भाषा सरल सरस तथा मनोरम है ।

श्रीकृष्णविलास की भाषा

सुकुमार कवि ने अत्यंत सुकुमारता से श्रीकृष्णविलास काव्य का प्रणयन किया है । सरल संस्कृत में रचित इस काव्य की भाषा अत्यंत मनोहर है । भाषा प्रवाहपूर्ण है । विषय के अनुकूल भाषा का प्रयोग करने में सुकुमार कवि सिद्धहस्त है । उनकी बोलचाल की भाषा में ही कवित्व शक्ति उभर आती है । संक्षिप्त तथा विस्तृत रूप से वर्णन करने की उनकी कला प्रशंसनीय है ।

---

1. कृष्णकर्णामृत - 1/64

सुकुमार कवि लोकोक्तियों का प्रयोग करने में प्रवीण है । उन्होंने श्रीकृष्णविलास काव्य में अनेक लोकोक्तियों का प्रयोग किया है । एक उदाहरण के लिए - जनो हि यः कर्म करोति यादृशं
 स सर्वथा तादृशमश्नुते फलम् ।।[1]

उसी प्रकार उन्होंने कथा प्रसंगों को उतना ही विस्तृत किया है जितना आवश्यक हो । कुछ प्रसंगों को संकेतों में ही समेट लिया है । कुल मिलाकर कह सकते हैं कि सुकुमार कवि की भाषा अत्यंत सरल तथा मनोरम बनी हुई है ।

गीतगोविन्द की भाषा

जयदेव कवि ने अपने गीतगोविन्द को कोमल कान्त पदावली से युक्त किया है । उन्होंने सरल संस्कृत में इसकी रचना की है । जयदेव कवि की भाषा प्रवाहपूर्ण है । कवि ने भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है । छोटे से प्रसंग को भी विस्तारपूर्वक वर्णन करने में जयदेव कवि अति समर्थ है । उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण वसन्त में क्रीडा कर रहे हैं । यही प्रसंग है । इसका वर्णन कवि ने कैसे किया है, देखिए -

विश्वेषामनुर जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
 श्रेणीश्यामलकोमलैरूपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
 शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ।।[2]

अर्थात् प्रेम तथा अनुरागवश समस्त संसार को आनन्दित करते हुए, नीलकमलों के सदृश कोमल अङ्गों से कामदेव के उत्साह को प्रोत्साहित करते हुए एवं चारों ओर अपनी इच्छानुसार व्रजांगनाओं से आलिंगित अंगोंवाले मूर्तिमान शृंगार के समान श्रीकृष्ण वसन्त में क्रीडा कर रहे हैं ।

---

1. श्रीकृष्णविलास - 3/61
2. गीतगोविन्द - 1/1

देखिए कितना मनोहर वर्णन है । छोटी सी घटना को इतना बड़ा होकर प्रस्तुत करना कवि की लेखनी का कमाल है ।

जयदेव के गीतगोविन्द में माधुर्य तथा प्रसाद गुण देखे जाते हैं । इनके पद-विन्यास इतने अच्छे हैं कि वे देखते ही बनते हैं ।

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम् ।

कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम् ।।[1]

शब्द चयन में जयदेव कवि ने कमाल ही कर दिया हैं । शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया है कि उनमें से संगीत सुनाई पड़ता है । जैसे -

श्यामल मृदुल कलेवर मण्डल मधिगत गौरदुकूलम् ।

नीलनलिनमिव पीतरागपटल भरवलयितमूलम् ।।

देखिए कितना संगीतमय चित्रण है ।

गीतगोविन्द में चौबीस अष्टपदी देखी जाती है । सब के सब गेय है । गीतगोविन्द में संगीतात्मकता कूट कूट कर भरी हुई है । उन्होंने भावानुकूल और प्रसंगानुकूल राग-रागिनियों में इसे ढाला है ।

निष्कर्ष

भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों तथा संस्कृत के कवियों ने अत्यंत सफलता के साथ काव्य शिल्प का प्रयोग किया है । रूप वर्णन, विरह वर्णन, आदि प्रभावात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । रस, छंद, अलंकार आदि का प्रयोग बहुत ही स्वाभाविक बना हुआ है । इन कवियों की भाषा पाठकों पर स्थायी असर छोड़ने में अत्यंत सफल हुई है । उसमें सहजता, स्वाभाविकता और सौंदर्य कूट कूट कर भर गया है । सब कुछ मिलाकर कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों और संस्कृत के कवियों का काव्य शिल्प अपने ढंग का अनूठा एवं सुन्दर है ।

---

1. गीतगोविन्द - 8/5

उपसंहार

प्राचीन काल से ही भारत अपनी आध्यात्मिक जीवन दृष्टि के लिए प्रसिद्ध है । वेद काल से लेकर अपने इतिहास के समस्त काल खंडों में इस देश में ऐसे अनेक आचार्य हुए हैं, जिन्होंने परम तत्व का तथा मानव जीवन के चरम लक्ष्य का ज्ञान प्राप्त किया था । उनको रचनाओं का अध्ययन करने से इस बात का पता चलता है कि कृष्ण के प्रति उनके मन में प्रगाढ़ रुचि थी । वैदिक साहित्य से लेकर विभिन्न संप्रदाय के कवियों ने अपने अपने ढंग और अपनी अपनी रुचि के अनुसार कृष्ण लीलाओं का गान किया है । कर्म मार्ग की नीरसता तथा ज्ञान मार्ग की जटिलता से घबराकर सरल चित्तवाले आस्तिक लोगों ने भक्ति की शीतल छाया में शरण ली ।

भारत वर्ष में श्रीकृष्ण की भावना का उदय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुआ था । वैदिक काल में कृष्ण को एक ऋषि के रूप में जाना जाता था । उपनिषद् काल तक आते-आते कृष्ण को देवता की पदवी प्राप्त हुई । उन्हें पूजा जाने लगा । महाभारत काल में कृष्ण को विष्णु के अवतार रूप में ग्रहण किया जाने लगा । हरिवंश पुराण, श्रीमद् भागवत आदि में कृष्ण का गोपालरूप प्रसिद्ध हुआ ।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में कृष्ण भगवान के रूप में सुप्रतिष्ठित हो चुके थे । भक्तिकाल के विभिन्न संप्रदायों में उन्हें आराध्य देव के रूप में अपनाया । शुद्धाद्वैत सिद्धांत के प्रणेता वल्लभाचार्य, द्वैताद्वैत सिद्धांत के प्रतिपादक निम्बार्काचार्य, द्वैत सिद्धांत के प्रवर्तक मध्वाचार्य, सखि संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी, चैतन्य महाप्रभु, राधावल्लभ संप्रदाय के प्रतिपादक हितहरिवंश आदि ने श्रीकृष्ण को अपना इष्ट देव मानकर उनकी पूजा अर्चना की । इन सब आचार्यों के सिद्धांत भारत के प्राचीन परंपरा से संबद्ध होने के कारण भक्तिकाल के प्रमुख कवियों पर इन संप्रदाय के आचार्यों का तथा प्राचीन भारतीय परंपरा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।

भक्तिकाल में वल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति पद्धति का प्रचलन किया । इस पद्धति में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम तथा आत्मचिंतन की अपेक्षा आत्मसमर्पण की भावना को प्रधानता मिली । वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्गीय भक्ति का पंथ चलाया जिसके प्रमुख कवि सूरदास हुए ।

कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा के अष्टछाप के सर्वप्रथम कवि सूरदास हुए जिन्होंने श्रीकृष्ण की लीला माधुरी का गान किया है । उनकी प्रसिद्ध कृति सूरसागर है । इसमें उन्होंने भागवत के आधार पर कृष्ण लीला का गान किया है । भगवत् गीता, उपनिषद्, भागवत, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों का तथा कृष्णकर्णामृत, गीतगोविन्द आदि का प्रभाव उनकी कृतियों पर देखा जाता है ।

सूर साहित्य की भावभूमि आत्मपरक है । सूरदास ने भगवल्लीला के माध्यम से अपने अंतर्मन की बात व्यक्त की है । इसलिए आध्यात्म प्रधान भागवत का सहारा लेते हुए भी, वे भागवत के प्रतिपाद्य विषय की ओर पूर्ण रूप से उन्मुख नहीं हो सके । कृष्णेतर लीलाओं को तो उन्होंने चलते ढंग से प्रस्तुत किया है । कृष्णावतार का विशद वर्णन नहीं किया । कृष्ण की व्रज, मथुरा तथा द्वारका लीला में से सबसे अधिक व्रज लीला का वर्णन किया है । सूर की आत्मा तो कृष्ण की बाल तथा प्रणय लीला तक ही सीमित रही । वे कृष्ण के बाल्यकाल की निर्द्वन्द्व क्रीडाओं, प्रणय लीलाओं तथा विहार में ही रस-धारा प्रवाहित करते रह गये । अन्य प्रसंगों पर संकेत मात्र कर आगे बढ़े ।

सूर में लीला वर्णन ही मुख्य हैं, सिद्धान्त पक्ष बहुत कम है । उनका काव्य जगत् मौलिक उद्भावना से समुद्भूत था । सूर के लीला वर्णन में सहज मानवीय गुणों का प्राधान्य है । इसीलिए उनकी लीलाओं का

स्वरूप अधिक मनोहारी, सरस और मनोवैज्ञानिक बन सका है । उनकी लीलाओं में मानवोचित ललित वर्णन है । प्रत्येक पद के अंत में सूर के प्रभु, स्वामि आदि का संकेत लौकिक वर्णन में अलौकिकता की सत्ता विद्यमान रखता है । संयोग श्रृंगार के वर्णन की अंतिम पंक्ति में अपने प्रभु की लीला पर बलिहारी होने की आत्माभिव्यक्ति प्रस्तुत करके लौकिकता पर धार्मिकता का रंग चढ़ा देते हैं । सूरसागर में सूर ने भागवत की तरह आध्यात्मिक विश्लेषण नहीं किया, फिर भी इसमें कृष्ण लीला की धार्मिक प्रतीकात्मकता सुस्पष्ट बनी हुई है ।

सूरसागर में सूर ने राधा का चित्रण किया है । भागवत में इसका उल्लेख नहीं है । सूर ने राधा और कृष्ण की श्रृंगार लीलाओं का मनोहारी चित्र खींचा है । कृष्ण और राधा के श्रृंगारिक वर्णन में उन्होंने जयदेव के गीत गोविन्द तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण का भाव ग्रहण किया है । उनका श्रृंगार असाधारण है । उसमें वासना की गंध, भोगेच्छा की तृषा और कामातुरता की शिथिलता दिखाई नहीं देती । श्रृंगारिक लीलाओं में भले ही क्रियाविशेषणों का निस्संकोच कथन हो परन्तु वह इतना तटस्थ तथा श्रद्धा मिश्रित रसानन्द है कि किसी प्रकार की लौकिक अनुभूति उभरने नहीं देता । सख्य भाव की प्रधानता के कारण उनका लीला वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक तथा मनोरम हुआ है । योग पर प्रेम को महत्व देना सूरसागर की मौलिक विशेषता है । सूर में पंचधा एवं नवधा भक्ति का स्वरूप प्राप्त होता है । कृष्ण भक्ति की दृष्टि से उनका दृष्टिकोण सगुण रहा है । दर्शन का पुट भी यत्र-तत्र उनकी कृतियों में प्राप्त होता है ।

भाषा की दृष्टि से सूर अत्यंत उच्चकोटि के कवि हैं । उन्होंने ब्रजभाषा में मुक्त काव्य तथा गीत तत्व के सहारे कृष्ण काव्य की एक विशेष परंपरा को जन्म दिया । उन्होंने ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप

दिया । अपनी प्रतिभा के बल पर एक सर्वथा नवीन काव्य रूप का आविष्कार किया । उन्होंने मानव हृदय के सूक्ष्म भावों का सुन्दर चित्रण किया है । नये प्रसंगों की मनोरंजक तथा मौलिक उद्‌भावना की है । ब्रजभाषा के स्वरूप को स्थिर एवं समृद्ध करने के कारण कलात्मक अभिव्यंजना का विकास तथा नवीन काव्य माध्यम प्रस्तुत करने के कारण सूर का स्थान मूर्धन्य है ।

संप्रदाय निरपेक्ष रहकर काव्य रचना करनेवालों में मीरा का स्थान मुख्य है । उन्होंने किसी भी संप्रदाय विशेष का चयन नहीं किया । वह अत्यंत उदार मनोभावापन भक्त थी । जहाँ किन्हीं भी भक्ति मिली वह सरमाथे चढाकर आगे बढ़ी ।"मीरा की पदावली" उनका प्रमुख ग्रंथ है ।

पदावली में मीरा ने कृष्ण कथा प्रसंगों का संकेत मात्र किया है । अपने पसन्द की चुनी हुई लीलाओं का ही वर्णन मीरा ने प्रस्तुत किया है । उन्होंने ज़्यादात्तर अपने आत्मानुभूति के पद रचे हैं । उनके पदों में भाव विह्वलता एवं आत्मसमर्पण का भाव दृष्टिगोचर होता है । उन पर गीता, उपनिषद, पुराण आदि का असर दिखाई देता है ।

मीरा की भक्ति सहज कान्ता भक्ति थी । उनके अनुसार समस्त विश्व में एक श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं । इससे मीरा के कृष्ण का विश्वात्मा रूप ही सिद्ध होता है । उनके अनुसार उनका और कृष्ण का संबंध जीवात्मा और परमात्मा के बीच का संबंध है । उनकी भक्ति में नवधा भक्ति के नौ सोपान और प्रेम-स्वरूपा भक्ति की दस आसक्तियाँ पाई जाती हैं । अपने आराध्य कृष्ण के प्रति एकनिष्ठता, अनन्य शरण्यता, सांसारिक जीवन की विरक्ति, सत्संग, आत्मसमर्पण और परमात्म प्राप्ति की चाह उनके भक्ति भाव के मूलभूत तत्व हैं । उनकी भक्ति को कृष्ण विषयक कान्ता भक्ति का श्रेष्ठतम रूप कहा जाता है ।

भक्ति के साथ-साथ उनकी कृतियों में दर्शन की छटा भी मिलती है । उन्होंने दार्शनिक दृष्टि से रचनाएँ नहीं की है । पर दर्शन उसमें स्वयं ही आ गया है । कृष्ण से संबंधित उनके पदों में दार्शनिकता कूट-कूट कर भरी हुई है । उनके हृदय में इष्टदेव के प्रति जो अनुराग और प्रेम है, वह दृढ होकर धीरे धीरे दर्शन का रूप धारण करता है ।

गेय, तीव्रानुभूति प्रधान, सरल, आत्माभिव्यक्ति पूर्ण, स्वच्छन्द, संगीतात्मक एवं संक्षिप्त होने के नाते गीत काव्य की दृष्टि से मीरा की रचनाएँ अत्युच्चतम हैं । उनमें पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए अलंकार, छंद का प्रयोग नहीं हुआ है । जो भी आया है सहज रूप से आया है । इसलिए उनके पदों में भावुकता एवं सहजता है । उनकी भावना स्वतंत्र रूप से प्रवाहित हुई है । विविध राग-रागिनियों में उनके हृदय की दशाओं का चित्रण मिलता है । भाषा राजस्थानी मिश्रित व्रज है जिसमें यत्र तत्र गुजराती, पूर्वी और खडी बोली के रूप भी मिलते हैं । आडम्बरहीनता, मधुरता, सरलता और स्पष्टता उसकी विशेषताएँ हैं । उनकी भाषा में कोमलकांत पदावली की अनुपम छटा है । उनके काव्य में एक सरल हृदया नारी की मधुर-भक्ति अपने समस्त वैभव को लेकर मूर्तिमान हुई है ।

संप्रदाय निरपेक्ष मुस्लिम कृष्ण भक्त कवि के रूप में रसखान का स्थान सर्वोपरि है । वे इस बात के सबूत हैं कि कृष्ण भक्ति के अंतर्गत मधुर भाव ने सब प्रकार के बन्धन तोडकर अन्य धर्मावलंबियों को भी आकृष्ट किया । रसखान ने गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ली थी पर उन्होंने पुष्टिमार्ग का अनुकरण न करके स्वयं अपनी राह ढूँढी है । उनकी रचनाएँ प्रेमवाटिका और सुजान रसखान रस से भरपूर हैं । उन्होंने अपने प्रेम की अभिव्यंजना कवित्त-सवैयों में की है ।

उनका श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम एकान्तिक था । वे अपने आप को कृष्ण पर न्योछावर कर देते हैं । प्रेम-तत्व के निरूपण में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है । यह वर्णन बड़ा सूक्ष्म, व्यापक और विशद हुआ है । वे मधुरा भक्ति के उपासक थे । उन्होंने अपनी रचनाओं में कृष्ण लीला के प्रसंगों का संकेत मात्र किया है । उन्होंने रास लीला का अच्छा खासा चित्र खींचा है । कृष्ण की रूप-माधुरी पर मुग्ध राधा तथा गोपियों का चित्र उन्होंने बारीकी से खींचा है । ऐसे चित्रणों के ज़रिए उन्होंने श्रृंगार की मधुर अभिव्यंजना भी की है । उन्होंने बालकृष्ण की रूप माधुरी तथा लीलाओं के मौलिक चित्रण किये हैं । उन पर भगवत् गीता, श्रीमद् भागवत और सूर सागर का प्रभाव देखा जा सकता है ।

उनकी काव्य भाषा ब्रज है । माधुर्य और प्रसाद गुण से युक्त वह भाषा अत्यंत सरस एवं सजीव है । लाक्षणिक प्रयोगों के कारण भाषा में चुटकीलापन आ गया है जो उसकी अर्थवत्ता को और बढ़ाता है । उन्होंने अपनी कृतियों को सवैया, कवित्त एवं दोहों में रचा है । अपने समय में गीतिकाव्यों की प्रधानता होते हुए भी कवित्त सवैयों में रचना करना स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचायक है । वे परंपरा के बंधन से मुक्त थे । उन्हें स्वच्छन्द काव्य धारा का प्रवर्तक माना जाता है ।

राम भक्त कवि तुलसीदास ने अपनी सभी रचनाएँ प्रायः राम पर ही लिखी है । लेकिन उन्होंने एक पुस्तक श्रीकृष्ण पर भी लिखी है जिसका नाम श्रीकृष्णगीतावली है । हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने जिस तन्मयता से श्रीकृष्ण का गुण गान किया, तुलसीदास उससे कुछ कम नहीं रहे । उन्होंने श्रीकृष्णगीतावली में कृष्ण और गोपिकाओं का जो चित्र खींचा है वह किसी कृष्ण भक्त कवि से कुछ कम नहीं है । गीतिकाव्य की संक्षिप्तता में भी उन्होंने विषय के गौरव को बनाये रखने का खूब प्रयत्न

किया है । हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने ज़्यादातर श्रीकृष्ण के संयोग श्रृंगार पर ज़ोर दिया है पर तुलसी ने वियोग श्रृंगार पर बल दिया ।

श्रीकृष्णगीतावली में 61 पदों में चुने हुए कृष्ण कथा प्रसंगों का गान किया है । इस में वर्णित कृष्ण कथा पुराणों से ली गयी है । गीतिकाव्य होने के नाते कथा की क्षीण रेखा ही इसमें दृष्टिगोचर होती है । संपूर्ण तुलसी साहित्य की तरह श्रीकृष्णगीतावली को भी "नानापुराणनिगमागसम्मत" कहा जा सकता है । श्रीमद् भागवत, विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण, महाभारत, गीता, उपनिषद्, सूरसागर आदि का प्रभाव इस पर देखा जा सकता है । तुलसी ने इसमें भगवान के लोकरक्षक रूप पर अधिक ज़ोर दिया है । तुलसी का श्रृंगार वर्णन बहुत ही मर्यादित रहा है । यह श्रीकृष्णगीतावली की विशेषता है । उलूखल बंधन, इन्द्रकोप, गोवर्द्धन धारण, द्रौपदी चीर हरण आदि प्रसंगों को अपनी रचना में स्थान दिया है ।

तुलसी ने इसमें अपनी पसंद के प्रसंगों को ही चुना है । गीतिकाव्य होने के नाते कथा प्रवाह का निर्वाह नहीं है । भावों की अखंडता तथा आत्माभिव्यंजना देखी जाती है ।

इसमें मुख्य प्रतिपाद्य विषय भक्ति है । नवधा भक्ति के सभी प्रकार इसमें मिलते हैं । दर्शन यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है । भ्रमरगीत प्रसंग के ज़रिए उन्होंने सगुण ब्रह्म की महानता पर ज़ोर दिया ।

श्रीकृष्णगीतावली को तुलसी ने विभिन्न राग-रागिनियों में ढाला है । विषयानुकूल रागों का प्रयोग देखा जा सकता है । संगीतात्मकता भी मिलती है ।

भाषा विषयानुकूल है । इसमें पश्चिमी ब्रज भाषा का प्रयोग किया है । स्थानीय ग्रामीण शैली का प्रयोग हुआ है । शब्द शक्तियों और पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से भाषा की नीरसता कम हो गयी है । स्थान स्थान में प्रयुक्त अलंकारों तथा प्राकृतिक उपमानों के प्रयोग से भाषा-सौंदर्य निखर उठा है ।

यह एक अत्यंत सरल, सरस, मधुर तथा सुकोमल रचना है । भक्तिकालीन कृष्ण भक्ति काव्यों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है ।

हिन्दी की तरह संस्कृत में भी ऐसे कई कवि हुए हैं जिन्होंने कृष्ण काव्य की रचना की ।

मेलपत्तूर नारायण भट्टत्तिरी ने नारायणीयम् की रचना की । इसमें भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण की लीला माधुरी का गान किया गया है । इसमें वे ही प्रसंग वर्णित है जो भागवत में भी वर्णित हैं । सूरदास की तरह कवि ने मौलिक लीलाओं का कथन इसमें नहीं किया । इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि यह स्तोत्रों में रचा गया है । भागवत की तरह कृष्ण लीलाओं का विस्तृत वर्णन इसमें नहीं है । कवि ने कृष्ण की बाल क्रीडा की सूचना मात्र देकर एक दशक में उसका वर्णन किया है । अपनी लेखनी की शक्ति के बल पर उन्होंने छोटे छोटे संकेतों के सहारे कृष्ण कथा के अपार सागर को चौवन दशकों में समेट लिया ।

नारायणीयम् में कवि ने भक्ति द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है । उन्होंने इसमें भगवान को लोक रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है । हरेक दशक के अंत में नारायण कवि गुरुवायुपुरी के अधीश भगवान कृष्ण से अपनी रक्षा करने की याचना करते हैं । भागवत में भगवान के लोकरंजक रूप का निरूपण है । इस बात पर नारायणीयम् और भागवत में अंतर है ।

सूरसागर में सूर कृष्ण की बाल और श्रृंगार लीला का वर्णन करते करते थकते ही नहीं । लेकिन नारायण कवि ने संक्षिप्त रूप से इसका वर्णन किया है । पदों के अंत में समर "सूरदास के प्रभु", "सूर के स्वामि" आदि प्रकार संबोधन करके कृष्ण का स्मरण करते हैं । उसी प्रकार नारायणीयम् में भी हरेक दशक के अंत में नारायण कवि कृष्ण को संबोधित करके अपनी रक्षा करने की माँग करते हैं ।

नारायणीयम् में भागवत की ही तरह भक्ति को प्रधानता दी गयी है । भागवत में दार्शनिकता कृष्ण लीला के बीच वर्णित नहीं है । लेकिन नारायणीयम् में दार्शनिकता पद पद पर वर्णित है और वह भक्ति से भी कुछ बढ़ कर है । भागवत में किसी भी वाद का मंडन नहीं है । लेकिन नारायणीयम् में शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव देखा जाता है । सूरसागर में भक्ति का रस ज़्यादा है, दर्शन कम है । सूर शुद्धाद्वैत संप्रदाय में दीक्षित होते हुए भी, उसकी छटा मात्र उनकी कृतियों में मिलती है । सूर का अधिकत्तर साहित्य भक्ति रस में ही लीन रहा है । यह नारायणीयम् और सूरसागर का एक महत्वपूर्ण अंतर है ।

नारायणीयम् को लोग एक आशीर्वादात्मक ग्रंथ मानते हैं क्योंकि इसमें कवि ने भगवान से अपने पर आशीर्वाद बरसाने की याचना की है । लेकिन सूरसागर में ऐसा कुछ नहीं है । सूर तो बस कृष्ण की लीला माधुरी में लीन होकर ही संतुष्ट है ।

भागवत की तरह नारायणीयम् में राधा का उल्लेख तक नहीं है । लेकिन सूरसागर में कृष्ण की तरह राधा का भी प्रमुख स्थान है । वह कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है । यह दोनों में एक और अंतर है ।

नारायणीयम् में कवि ने संपूर्ण कृष्ण लीला को एक ही प्रकार से वर्णित किया है अर्थात् कुछ अधिक विस्तृत, कुछ कम विस्तृत, ऐसा नहीं है । वर्णन समान रूप से हुआ है । लेकिन सूरसागर इसका अपवाद है । सूर ने कृष्ण की बाल तथा श्रृंगार लीलाओं का बृहद् रूप से वर्णन किया है । बाकी के कथानक चलते ढंग से वर्णित किये हैं । नारायणीयम् में मौलिक लीलाओं का वर्णन नहीं है । लेकिन सूरसागर में मौलिक लीलाओं की भरमार है ।

नारायणीयम् की भाषा प्रौढ़ एवं गंभीर संस्कृत भाषा है । श्रृंगार, हास्य, वीर आदि रसों का इसमें स्थान है । नारायणीयम् की शैली संगीतात्मक है, वैदर्भी और गौडी शैली को इसमें स्थान दिया गया है । अनोखे तथा निराले छंदों का प्रयोग इस कृति में देखा जाता है । अलंकारों का भी अच्छा प्रयोग हुआ है ।

कृष्णकर्णामृत रहस्यात्मिक, श्रृंगार परक और भक्त्यात्मक गीत है जो श्रीकृष्ण की लीलाओं पर आधारित है । मुक्तक शैली में रचे गये इस ग्रंथ में अपने इष्ट देव से मिलने की एक भक्त की तड़प सर्वत्र दिखाई पड़ती है ।

कृष्णकर्णामृत में कवि ने कृष्ण का रूप सौन्दर्य, उनकी दिव्य शक्ति, भक्तवत्सलता आदि का वर्णन प्रस्तुत किया है । इसमें जगह जगह अपने इष्ट देव कृष्ण को देखने और उनकी लीलाओं का रस ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की गयी है । सरसता के साथ भक्ति के वातावरण की सृष्टि करना इस कवि की विशेषता रही है ।

कृष्णकर्णामृत में कृष्ण की बाल तथा रास लीला का वर्णन प्रमुख रूप से हुआ है । इसमें भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण का प्रभाव देखा

जा सकता है । कृष्ण की बाल लीला वर्णन में सूरसागर पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है । दोनों ग्रंथों में कुछ मौलिक लीलाओं का एक समान वर्णन हुआ है । दृष्टांत के लिए कृष्ण को राम की कहानी सुनना । कृष्णकर्णामृत में वेदों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । वेदों में कृष्ण को गोप वेष धारी बताया गया है । यही बात कृष्णकर्णामृत में भी कही गयी है ।

कृष्णकर्णामृत में कवि ने अपनी इच्छानुसार काव्य रचना की है । कुछ मौलिक लीलाएँ भी रची है । कवि ने अपने भावों एवं उद्गारों के अनुरूप काव्य रचना की है । हर वक्त कृष्ण से मिलने के लिए वे आतुर हैं । यही बात मीरा के संदर्भ में भी सच है । उनके स्तोत्रों में भक्त का रूप उभर कर आया है । वे पहले भक्त थे फिर और कुछ । दर्शन की छटा यत्र-तत्र बिखरी पडी है ।

कृष्णकर्णामृत की भाषा अत्यंत सरस एवं सरल है । रसानुकूल एवं प्रसंगानुकूल छन्दों का इसमें प्रयोग हुआ है । अलंकारों का भी इसमें प्रयोग हुआ है । मुक्तक शैली में रचा गया यह ग्रंथ पदघटना वैभव, हृदय द्रावक उल्लेख तथा वैचित्र्य के लिए प्रसिद्ध है ।

गीतगोविन्द महाकवि जयदेव की सरस रचना है । इसमें कवि ने राधा-कृष्ण की श्रृंगार लीला का ललित पद-विन्यास तथा श्रुतिमनोहर अनुप्रास छटा से निबंधित किया है । जयदेव ने इसमें सिर्फ रास लीला का वर्णन किया है । इस वर्णन में ब्रह्मवैवर्त पुराण का प्रभाव देखा जाता है । जयदेव ने सूर को भी प्रभावित किया है । सूरसागर में राधा कृष्ण की रास लीला पर जयदेव का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

जयदेव कवि श्रीकृष्ण के परम भक्त थे । वे सदा अपने प्रियतम कृष्ण से मिलना चाहते थे । यही कवि ने राधा के माध्यम से व्यक्त किया है । सच्चा भक्त हमेशा भगवान के विरह में तड़पता रहता है । जयदेव कवि की भी यही अवस्था है । इस कृति में भक्त हृदय की परवशता देखी जाती है । हर कहीं भक्ति रस झलकता रहता है । दर्शन नाम मात्र के लिए दिखाई देता है ।

शैली अत्यंत रोचक है । इसकी कोमल कान्त पदावली बड़ी सरस और मार्मिक है । भावातिरेक से भाव पुनरुक्ति भी यत्र-तत्र इसमें मिलती है । किन्तु मार्मिक अभिव्यक्ति के नाते इसमें नित्य नूतनता एवं सरसता बनी रहती है ।

सुकुमार कवि का श्रीकृष्णविलास काव्य अपने ढंग का अलग है । यह काव्य संस्कृत साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । इसका आधार भागवत पुराण रहा है । भागवत से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी कवि ने इसमें मौलिकता की छाप छोड़ी है । इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय श्रीकृष्ण की लीला ही रही है । कवि ने अपनी मन चाही, चुनी हुई लीलाओं का चित्रण इसमें किया है ।

श्रीकृष्णविलास काव्य एक अनोखा काव्य है । कवि ने कृष्ण लीलाओं को परंपरागत तरीके से हटकर इसमें चित्रण किया है । कवि ने मुख्य रूप से कृष्ण की बाल लीलाओं का अंकन किया है । इसमें कृष्ण का शिष्ट परिपालन तथा दुष्ट दलन रूप निखरा है ।

सुकुमार कवि कृष्ण के आर्त भक्त थे । आर्त भक्ति उनके काव्य में प्रतिभासित होती है । वे शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन से प्रभावित

दिखाई देते हैं । काव्य की भाषा मधुर, सरल तथा सरस है । काव्य में वीर रस की छटा दिखाई देती है । छंदों और अलंकारों का प्रयोग यथास्थान किया है । कुछ मिलाकर कह सकते हैं कि यह काव्य अत्यंत मधुर तथा सुकुमार रहा है ।

हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण कवियों और संस्कृत के कवियों ने भागवत से कथा चयन करते हुए अपने अपने ढंग से कृष्ण कथा के प्रसंगों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । सूरदास इसमें सर्वाधिक सफल माने जा सकते हैं । बाल लीला वर्णन की दृष्टि से देखे तो, बिल्वमंगल स्वामी का कृष्णकर्णामृत अपने ढंग का अकेला है । दार्शनिक ढंग से नारायणीयम् आगे बढ़ता है । जो दार्शनिकता इसमें मिलती है सच्चे अर्थों में कृष्ण कथा का प्रतिपादन करनेवाले दूसरे कवियों में नहीं मिलती । मीरा के काव्य का अधिकांश भाग माधुर्य रस में ही डूबा है । सूर ने भी माधुर्य का वर्णन किया है । लेकिन उनकी बाल लीला अधिक मनोरम बन गई है । राम भक्त होने के नाते तुलसी की कृष्ण गीतावली अपना विशिष्ट स्थान रखती है । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी तथा संस्कृत के काव्यों में कथा प्रसंग के चित्रण में साम्य भी है वैषम्य भी । संस्कृत काव्यों का प्रभाव हिन्दी पर अवश्य देखा जाता है । प्रभाव ग्रहण करते हुए भी हिन्दी का भक्तिकालीन कृष्ण काव्य अपने ढंग का अलग तथा मौलिक बना हुआ है ।

आजकल के भौतिकवादी युग में कृष्ण कथा एवं भक्तिकालीन ग्रंथों का अध्ययन बहुत प्रासंगिक है । सामाजिक दृष्टि से देखे तो भक्तिकालीन तथा संस्कृत के कवियों ने ऐसे अनेक तथ्य प्रस्तुत किए हैं जिससे आज की ज़िन्दगी सुख और शांति से गुज़र सकती है । इनके ग्रंथों में आचरण और शिष्टाचार का अंकन अच्छी तरह हुआ है । यशोदा कृष्ण को किस किस के

प्रति किस प्रकार का आचरण करना है सिखाती हैं । उस तरह किस तरीके से अतिथि सत्कार करना है, यह उद्धव का गोपियों द्वारा स्वागत सत्कार से पता चलता है ।

कहते हैं किसी चीज़ के प्रति अत्यधिक आसक्ति ठीक नहीं है । कृष्ण से बिछुड़कर गोपियों को अत्यंत दुःख भोगना पड़ा क्योंकि कृष्ण के प्रति उन्हें अत्यंत लगाव था । मनुष्य को सदा निस्वार्थ होना चाहिए । निस्वार्थता के कारण गोपियों को कृष्ण प्राप्ति हुई । गोपियों का निस्वार्थ प्रेम आज के लोगों के लिए आचरण का पाठ सिखलाता है ।

योग और ज्ञान से भी बढ़कर भक्ति ही श्रेष्ठ है । भक्ति में समर्पण होता है । आज समर्पण भाव का अभाव हम हर कहीं देख सकते हैं । इसी समर्पण भाव का उदाहरण हम गोपियों में देख सकते हैं । इससे आज कल के लोगों के लिए बहुत बड़ी सीख मिलती है ।

धार्मिक दृष्टि से भी कृष्ण कथा आज के जीवन में बहुत प्रमुखता रखती है । इसके पात्र जैसे नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी, कृष्ण, राधा, गोपियाँ आदि अपने अपने कर्तव्यों का, लोक कल्याण के लिए, पालन करते हैं ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो कृष्ण कथा बहुत सारे प्रमुख तथ्य उपस्थित करती हैं । इसमें बाल मनोविज्ञान के सहारे बच्चों का चित्रण मिलता है । व्यक्ति किस प्रकार वर्तमान के संघर्षों से घबराकर भूतकालीन स्मृतियों में खो जाता है, इसका चित्रण विरह विदग्ध गोपियों के ज़रिए किया गया है । भ्रमरगीत प्रसंग के ज़रिए आशा के क्षणों में निराशा प्राप्त होने पर मनुष्य का कुण्ठा ग्रस्त होना दिखाया गया है ।

इस प्रकार सभी दृष्टियों से कृष्ण कथा एवं भक्तिकालीन ग्रंथों का तथा संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन एवं विश्लेषण वर्तमान युग के लिए प्रासंगिक सिद्ध होता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संस्कृत

1. अमरकोष
2. अणुभाष्य
3. अग्निपुराण
4. अथर्ववेद
5. अष्टाध्यायी
6. ऋग्वेद
7. कठोपनिषद्
8. कुवलयानन्द
9. कुमारसंभव
10. कूर्मपुराण
11. कृष्णोपनिषद
12. कृष्णविलास काव्य
13. कृष्णकर्णामृत
14. गीत गोविन्द
15. गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद
16. छान्दोग्योपनिषद
17. तैतरीय आरण्यक
18. दशश्लोकी
19. नारायणीयम्
20. नारायणोपनिषद
21. नारद भक्ति सूत्र
22. निरुक्त
23. पद्म पुराण
24. ब्रह्मवैवर्त पुराण
25. ब्रह्माण्ड पुराण
26. ब्रह्म पुराण
27. भगवत् गीता
28. भागवत् महापुराण
29. भक्ति रसामृत सिंधु
30. महाभारत
31. मत्स्यपुराण
32. मनुस्मृति
33. माण्डूक्योपनिषद
34. मुंडकोपनिषद
35. मुक्तिकोपनिषद
36. यजुर्वेद
37. लघुभागवतामृत
38. वराह पुराण
39. वामन पुराण
40. वायु पुराण
41. विष्णु पुराण
42. शतपथ पुराण
43. शुद्धाद्वैत मार्तण्ड
44. शाण्डिल्य भक्ति सूत्र
45. श्वेताश्वतरोपनिषद
46. सिद्धान्त मुक्तावली
47. स्कंध पुराण
48. हरिवंश पुराण

हिन्दी

49. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - डॉ. दीनदयाल गुप्त
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग
द्वितीय संस्करण - 1970 ई.

50. काव्य दर्पण - पं. रामदहिन मिश्र
ग्रंथमाला कार्यालय
पटना
प्रथम संस्करण 1947.

51. कृष्णगीतावली - गीता प्रेस
गोरखपुर
दसवाँ संस्करण, वि.सं. 2047

52. कृष्णगीतावली - सिद्धान्त तिलक
श्रीकान्तशरण
श्रीसद्गुरु कुटी
गोलाघाट, अयोध्या

53. कृष्ण काव्य और सूर - डॉ. प्रेम शंकर
स्मृति प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1977 ई.

54. कृष्ण लीला चिंतन - हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीताप्रेस गोरखपुर
द्वितीय संस्करण, सं. 2045 वि.

55. कृष्ण लीला साहित्य - लक्ष्मीनारायण नन्दवाना
अंकुर प्रकाशन
नाइयों की तलाई
उदयपुर - 313001
प्रथम संस्करण - 1995

56. कृष्ण भक्त मुसलमान कवि - नूरजहाँ बेगम
जवाहर पुस्तकालय
मथुरा

57. कृष्ण कथा कोश - डॉ. रामशरण गौड़
विभूति प्रकाशन
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1989.

58. कृष्ण भक्ति काव्य - डॉ. जगदीश गुप्त
वसुमति
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1968

59. गीत गोविन्द - डॉ. कपिला वात्स्यायन
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद

60. गोस्वामी तुलसीदास - सं. नलिन विलोचन शर्मा
बिहार राष्ट्र परिषद
पटना, वि. सं. 2017.

61. गोस्वामी तुलसीदास: व्यक्तित्व दर्शन साहित्य - रामदत्त भरद्वाज
भारती साहित्य मंदिर
दिल्ली - 1962.

62. चौरासी वैष्णवन की वार्ता - गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस
कल्याण
मुंबई - सं. 2015 वि.

63. तुलसी काव्य मीमांसा - डॉ. उदयभानु सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन
रूप नगर
नई दिल्ली - 1966,

64. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत - डा. वचनकुमार देव
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1964.

65. तुलसी साहित्य : विवेचन और मूल्यांकन - आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा और
डा. वचनकुमार देव
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली, 1981.

66. तुलसी ग्रंथावली तृतीय खंड - नागरी प्रचारिणी सभा
वाराणसी
वि.सं. 2033

67. तुलसी की जीवन भूमि - चन्द्राबली पाँडे
नागरी प्रचारिणी सभा
वाराणसी, वि.सं. 2011.

68. तुलसी साहित्य और सिद्धांत - यज्ञदत्त शर्मा
अक्षरम्
सोनीपत, 1984.

69. तुलसी साहित्य : बदलते प्रतिमान- डा. चन्द्रभान रावत
जवाहर पुस्तकालय
मथुरा, 1971.

70. तुलसीदास : एक समालोचनात्मक अध्ययन - डा. माताप्रसाद गुप्त
प्रयाग विश्वविद्यालय
हिन्दी परिषद्
प्रयाग, 1953.

71. भक्तमाल - तेजकुमार प्रेस
लखनऊ 1939 ई.
आठवाँ संस्करण

72. भारतीय साधना और सूर साहित्य - डॉ. मुंशीराम शर्मा
आचार्य शुक्ल साधना सदन
कानपुर, सं. 1999.

73. भक्ति का विकास - डॉ. मुंशीराम शर्मा
चौखंबा सीरीज़
वाराणसी
प्रथम संस्करण - 1952.

74. भाव पुरुष श्रीकृष्ण - विद्यानिवास मिश्र
प्रभात प्रकाशन
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1999.

75. भ्रमर गीत सार - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
साहित्य सेवा सदन
वाराणसी - 1.

76. मध्यकालीन कृष्ण काव्य में रूप सौंदर्य - डॉ. पुरुषोत्तम दास अग्रवाल
रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
जयपुर - 3.

77. मध्यकालीन कृष्ण काव्य - डॉ. कृष्णदेव झारी
शारदा प्रकाशन
महरौली
नई दिल्ली
तृतीय संस्करण - 1976.

78. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ - डॉ. सावित्री सिन्हा
हिन्दी अनुसंधान परिषद्
दिल्ली.

79. मध्ययुगीन काव्य साधना - डॉ. रामचन्द्र तिवारी
विश्वविद्यालय प्रकाशन
गोरखपुर.

80. मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति - हरगुलाल
भारती साहित्य मंदिर
प्रथम संस्करण - 1967.

81. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद-डॉ. कपिल देव पांडेय
चौखम्बा प्राच्य विद्याभवन
वाराणसी
प्रथम संस्करण - 1963.

82. मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति धारा और चैतन्य संप्रदाय - डा. मीरा श्रीवास्तव
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद, 1968.

83. मध्ययुगीन धर्म साधना - डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

84. महाकवि सूरदास - डा. नन्ददुलारे वाजपेयी
राजकमल प्रकाशन
प्रथम संस्करण - 1976.

85. महाकवि सूरदास - डा. सरल शुक्ला
कल्पकार प्रकाशन
लखनऊ
प्रथम संस्करण - 1983.

86. महाकवि सूर : एक पुनश्चिन्तन - व्रजेश्वर वर्मा
स्मृति प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1983.

87. मिश्रबन्धु विनोद - मिश्रबन्धु
गंगा पुस्तकमाला
1972 ई.

88. मीरा की काव्य कला - देवराजसिंह भाटी
अशोक प्रकाशन
दिल्ली - 6.

89. मीराबाई पदावली - डॉ. कृष्णदेव शर्मा
रीगल बुक डिपो
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1974.

90. मीरा की पदावली - सं. परशुराम चतुर्वेदी
रीगल बुक डिपो
दिल्ली - 6, 1974.

91. मीरा की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन - भगवानदास तिवारी
साहित्य भवन
इलाहाबाद.

92. मीरा सुधा सिन्धु - सं. स्वामी आनन्द स्वरूप
श्री मीरा प्रकाशन समिति
भीलवाड़ा
प्रथम संस्करण - वि. सं. 2014.

93. मीरा की काव्य कला - डॉ. कृष्णदेव शर्मा
रीगल बुक डिपो
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1972.

94. मीरा का काव्य - विश्वनाथ त्रिपाठी
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1989.

95. मीरा काव्य का गीतिकाव्यात्मक-विवेचन - डा. माधुरी नाथ
सत्यम प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1990.

96. मीरा की प्रेम साधना - भुवनेश्वर नाथ मिश्र
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली.

97. मीराबाई का जीवन वृत्त एवं काव्य - कल्याणसिंह शेखावत
हिन्दी साहित्य मन्दिर
जोधपुर, 1974.

98. रसखान रचनावली - सं. विद्यानिवास मिश्र
सत्यदेव मिश्र
वाणी प्रकाशन
दिल्ली
प्रथम संस्करण 1985.

99. रसखान: जीवन और कृतित्व - देवेन्द्र प्रताप उपाध्याय
आनन्द पुस्तक भवन
वाराणसी
प्रथम संस्करण - 1962.

100. राधा माधव चिंतन - हनुमान प्रसाद पोद्दार
गीता प्रेस
गोरखपुर
प्रथम संस्करण - सं. 2018.

101. वैष्णव धर्म एवं दर्शन - पं. रघुवीर सिंह शर्मा
आभा प्रकाशन
704, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1997.

102. सुबोधिनी टीका - श्रीवल्लभ विद्यापीठ ट्रस्ट
कोल्हापुर
द्वितीय संस्करण - सं. 2046

103. संस्कृत साहित्य का इतिहास (वैदिक खण्ड) - डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल
राजस्थानी ग्रंथागार
जोद्दपुर
प्रथम संस्करण - 1999.

104. संस्कृत साहित्य का इतिहास (लौकिक खण्ड) - डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल
राजस्थानी ग्रंथागार
जोद्दपुर
प्रथम संस्करण - 1998.

105. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. विजयपाल सिंह
शिक्षा भारती
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1997.

106. संस्कृत साहित्य का इतिहास - आचार्य बलदेव उपाध्याय
वाराणसी
दसवाँ संस्करण - 1978.

107. संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला
चौखंबा विद्याभवन
वाराणसी
प्रथम संस्करण - सं. 2020.

108. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कन्हैयालाल पद्दार
स्मारक ग्रंथमाला समिति
नवलगढ़, 1938

109. संस्कृत साहित्य चिंतन - डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री
अनादि प्रकाशन
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1973.

110. सूरसागर - लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, 1991.

111. सूरसागर - नागरी प्रचारिणी सभा
काशी
तृतीय संस्करण - सं. 2015 वि.

112. सूरसागर - सं. नन्द दुलारे वाजपेयी
नागरी प्रचारिणी सभा
काशी, प्रथम खंड - सं. 2018 वि.
द्वितीय खंड - सं. 2021 वि.

113. सूरसागर - सं. धीरेन्द्र वर्मा
साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद
तृतीय संस्करण - 1977 ई.

114. सूरदास - सं. हरवंशलाल शर्मा
राधाकृष्ण प्रकाशन
दरियागंज
दिल्ली - 6.

115. सूरदास - रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा
वाराणसी
षष्ठ संस्करण - सं. 2026 वि.

116. सूर और उनका साहित्य - डा. हरवंशलाल शर्मा
भारत प्रकाशन मंदिर
अलीगढ़
चतुर्थ संस्करण - 1971.

117. सूरदास और उनका साहित्य - डा. देशराज सिंह भाटी
विनोद प्रकाशन मंदिर
आगरा
द्वितीय संस्करण - 1977.

118. सूर साहित्य - डा. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड
बंबई, 1961.

119. सूर साहित्य की भूमिका - डा. रामरतन भटनागर
रामनारायण लाल पब्लिशर्स
इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण - 1945.

120. सूर साहित्य : एक मूल्यांकन - डा. चन्द्रभान रावत
ज्ञानदीप प्रकाशन
मथुरा
प्रथम संस्करण - 1976.

121. सूरदास : जीवन और काव्य का अध्ययन - डॉ. व्रजेश्वर वर्मा
हिन्दी परिषद
विश्वविद्यालय, प्रयाग
तृतीय संस्करण - 1959.

122. सूर समीक्षा - डा. रामरतन भटनागर
मेहरचंद मुंशीराम
फौज बाज़ार, दिल्ली
प्रथम संस्करण

123. सूर ग्रंथावली - अखिल भारतीय विक्रम परिषद
काशी
प्रथम संस्करण - सं. 2031 वि.

124. सूरदास और उनका साहित्य - शांतिस्वरूप गौड
प्रभाकर पुस्तक मंदिर
आगरा

125. सूरदास:व्यक्तित्व और कृतित्व - डा. वेदप्रकाश आर्य
सुलभ प्रकाशन
17, अशोक मार्ग
लखनऊ, प्रथम संस्करण - 1983.

126. सूर साहित्य और सिद्धांत - यज्ञदत्त शर्मा
अक्षरम्
सोनीपत

127. सूर निर्णय - द्वारकादास पारीख
प्रभुदयाल मित्तल
साहित्य संस्थान, मथुरा
तृतीय संस्करण - सं. 2018 वि.

128. सूर का श्रृंगार वर्णन - रमाशंकर तिवारी
अनुसंधान प्रकाशन
आचार्य नगर, कानपुर.

129. सूर की काव्य कला - मनमोहन गौतम
भारती साहित्य मंदिर
दिल्ली
द्वितीय संस्करण - 1963.

130. सूर की भाव साधना - डा. नरेन्द्र सिंह फौजदार
गिरनार प्रकाशन
महेसाना
प्रथम संस्करण - 1989.

131. सूर मीमांसा - डा. व्रजेश्वर वर्मा
ओरियण्टल बुक डिपो
नई सडक, दिल्ली

132. सूर एवं तुलसी का बाल चित्रण - डा. अवंतिका कुलकर्णी
साहित्यागार
जयपुर
प्रथम संस्करण - 1990.

133. सूर एवं तुलसी की सौन्दर्य भावना - डा. बद्रीनारायण श्रोत्रिय
चन्द्रलोक प्रकाशन
कानपुर
प्रथम संस्करण - 1991.

134. सूर साहित्य में प्रतीक योजना - डा. लक्ष्मप्रिया शेट्ठी
रिसर्च प्रकाशन
दरियागंज
दिल्ली - 6.

135. सूरसागर और कृष्णगाथा : एक अध्ययन - डॉ. चेरियान जोर्ज
जवाहर पुस्तकालय
सदर बाज़ार, मथुरा
प्रथम संस्करण - 1993.

136. सूर साहित्य में नाट्य तत्व — डॉ. सूर्यकान्ता अजमेरा
विद्या प्रकाशन
गोविन्द नगर, कानपुर
प्रथम संस्करण - 1994.

137. सूर सौरभ — डा. मुंशीराम शर्मा
ग्रन्थम, रामबाग
कानपुर
षष्ठ संस्करण - 1980.

138. सूरदास की लालित्य चेतना — डा. परेश
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रथम संस्करण - 1972.

139. सूर काव्य में संगीत लालित्य — डेजी वालिया
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1984.

140. सूर की काव्य साधना — डॉ. गोविन्द राम शर्मा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
23, दरियागंज, दिल्ली - 6
प्रथम संस्करण - 1970.

141. सूरदास का काव्य वैभव — डा. मुंशीराम शर्मा
ग्रंथम, रामबाग
कानपुर, 1965.

142. सूर काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण — लाल बहादुर श्रीवास्तव
विद्याविहार
कानपुर, प्रथम संस्करण - 1986.

143. सूर पंचरत्न — सं. लाला भगवान दीन
रामनारायण
लाल अरुण कुमार
इलाहाबाद, सं. 1989 वि.

144. सूर की भाषा - डॉ. प्रेमनारायण टण्डन
हिन्दी साहित्य भंडार
लखनऊ, 1957.

145. सूर के कृष्ण : एक अनुशीलन - शशि तिवारी
मिलिन्द प्रकाशन
हैदराबाद
प्रथम संस्करण - 1969.

146. संस्कृत महाकाव्यों में कृष्ण चरित का विकास - मंजु तिवारी
डा. टी. आर. त्रिपाठी
कुमाऊ, 1984.

147. श्री राधा का क्रम विकास - शशिभूषण दास गुप्त
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी
प्रथम संस्करण - 1956.

148. श्रीमद्भागवत और सूरसागर का वर्ण्य विषय का तुलनात्मक अध्ययन - वेद प्रकाश शास्त्री
सरस्वती पुस्तक सदन
आगरा, प्रथम संस्करण

149. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
सरस्वती मंदिर
बनारस

150. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
1991.

151. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन - डा. रामकुमार वर्मा
रामनारायण लाल
प्रयाग, तृतीय संस्करण

152. हिन्दी साहित्य में कृष्ण - डा. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ
राज्यश्री प्रकाशन
मथुरा

153. हिन्दी साहित्य का अतीत - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली

154. हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास - डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी
दिल्ली, 1952.

155. हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव - शशि अग्रवाल
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद, सं. 2017 वि.

156. हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव - विश्वनाथ शुक्ल
भारत प्रकाशन मंदिर
अलीगढ़
प्रथम संस्करण - 1966.

157. हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव - डा. सरनाम सिंह शर्मा अरुण
रामनारायणलाल बेनिमाधव
इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1952.

158. हिन्दी साहित्य में कृष्ण चरित का भावात्मक स्वरूप विकास - डा. तपेश्वरनाथ
विजयप्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक संस्थान
वाराणसी.

159. हिन्दी कृष्ण काव्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. एन. जी. देवकी
सूर्य प्रकाशन
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1989.

160. हिन्दी कृष्ण काव्य परंपरा का स्वरूप विकास - डॉ. मुरारिलाल शर्मा "सुरस"
प्रेम प्रकाशन मन्दिर
दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1977.

161. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद
सत्रहवाँ संस्करण - 1989.

162. हिन्दी छन्द प्रकाश - रघुनन्दन शास्त्री
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली.

अंग्रेज़ी

163. A History of Sanskrit Literature - Alan Davidson Keith
Oxford University Press
Daryaganj, Delhi -6.
1st Edition - 1973.

164. Hinduism : A Religion to live by - Nirad C-Chaudhari
B.I.Publication
54, Janpath
New Delhi - 1979.

165. History of Classical Sanskrit Literature - M.Krishnamachariar
Motilal Banarasidas
Bunglow Road, Delhi
Third Edition - 1974.

166. The contribution to Kerala to Sanskrit Literature - K.Kunjunni Raja
University of Madras
1958.

167. The Modern vernacular literature of Hindustan - George Abraham Geirson Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta.

168. The Vaishnavism Saivism and other minor Religious sects. - A.G.Bhandarkar Bhandarkar Oriental Research Institute, Bombay.

169. Survey of Sanskrit Literature - O.Kunhan Raja Bharatiya Vidhya Bhavan Bombay, 1962.

170. Krishna Karnamrita - Translated by H.H.Bhakti Sadhaka Nishkichana Maharaj Sree Gaudiya Math Madras - 600014.

171. An outline of Religious Literature in India - Farquhar University of Madras Revised Edition.

172. Historical Survey of Sanskrit Mahakavyas - L.Sulochana Devi Kanishka Publishing House Delhi, 1st Edition - 1992.

173. Narayaneeyam - Sri Ramakrishna Math Madras - 600004.

174. Narayaneeyam - Edited by P.N.Menon (Palghat) Prabhakara Press Udupi 1st Edition - 1935.

175. Narayaneeyam - Deshamangalamvarier
Trivandrum Sanskrit Series
No.XVIII 1912
Ed. T.Ganapathi Sastri.

176. Narayaneeyam - Guruyayoor Devaswam Publication
Kairali Press
Trissur, 1994.

मलयालम ग्रन्थ

177. Keraliya Sanskrita Sahitya Charitam - Vadamkumkur Raja Rajavarma Vol.I
Sree Sankaracharya University of
Sanskrit, Kalady
2nd Edition - 1997.

178. Kerala Sahitya Charitam - Ullur.S.Parameswara Iyer
Vol.I, K.V.Series No.30
1st Edition - 1953 June.

पत्रिकाएँ

1. कल्याण - कृष्णांक - गीताप्रेस गोरखपुर, सन् 1931 ई.
2. सर्वेश्वर - निम्बार्क अंक - वर्ष 20, अंक 2-7
3. Saint Vilvamangala - Ullur.S.Parameshwara Iyer
Proceedings of All India Oriental
Conference, Trivandrum.
4. Quarterly journal of Mythree Society. - Bangalore XIX
5. Bhasaposhini XVII.

xxxxxxxx

৬৭ ৪৭০৪